

रसखान ग्रन्थावली सटीक

(रसखान तथा उनके काव्य का आलोचनात्मक तथा व्याख्यात्मक अध्ययन)

लेखक

प्रो० देशराजसिंह भाटी एम० ए०

प्रकाशक



अशोक प्रकाशन
नई सड़क, दिल्ली-६

प्रकाशक .

अशोक प्रकाशन,

नई सड़क, दिल्ली-६

सर्वाधिकार प्रकाशकाधीन हैं ।

प्रथम संस्करण : १९६६

मूल्य • ५.००

मुद्रक

रामश्री प्रिन्टर्स द्वारा भारती प्रेस,

दिल्ली-६

दो शब्द

हिन्दी के कृष्ण-भक्त तथा रीतिकालीन रीतिमुक्त कवियों में
रसखान का अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान है। हिन्दी में इनके
काव्य के अनेक सकलन प्रकाशित हुए हैं, किन्तु सटीक
कोई भी नहीं है, इससे सामान्य पाठक रसखान के
काव्य के रसास्वादन से वंचित रह जाता था।

प्रस्तुत कृति इसी उद्देश्य की सृष्टि
है। इसीलिए इसमें उन सभी
छन्दों को समाविष्ट कर
लिया है जो संदिग्ध
हैं, पर रसखान के
नाम से प्रचलित
हैं।

आशा है, अपने उद्देश्य में यह कृति सफल रहेगी।

—देशराजसिंह भाटी

विषय-सूची आलोचना भाग

१. रीतिकाल का परिचय	१
२. रसखान का जीवन-वृत्त	१४
३. रसखान की रचनायें	२६
४. रसखान का प्रेम दर्शन	५६
५. रसखान की भक्ति-पद्धति	६८
६. रसखान की रस-योजना	८१
७. रसखान के कृष्ण	९५
८. रसखान का सौन्दर्य-चित्रण	१०५
९. रसखान की अलंकार-योजना	११५
१०. रसखान की भाषा	१२६
११. स्वच्छन्द काव्यधारा और रसखान	१४५

व्याख्या-भाग

[पद-सूची अकारादि क्रमानुसार पृष्ठ-संख्या सहित]

अखियाँ अखियाँ सो सकाई	३०१
अगनि अग मिलाई दोऊ	२६६
अजन मजन त्यागौ	३१३
अंग अभूत लगाव	३५१
अत ते न आयौ याही	२१८
अकथ कहानी प्रेम की ✓	३०३
अति लाल गुलाल दुकूल	१२०
अति लोक की लाज ✓	२६८
अति सुन्दर री ब्रजराज	१८२
अति सूछम कोमल ✓	३०५

(VI)

अघर लगाई रस प्याइ । ✓	२६८
अवहिं खरिक गई गाइ के ✓	२००
अरपी श्रीहरि चरन	३३५
अरी अनोखी वाम	२६८
अलवेली विलोकनि वोलनि	१८४
अली पगे रगे	२४४
आइ सवै ब्रज गोप लली ✓	२४५
आई खेलि होरी ब्रज ✓	२७४
आई हौ आज नई	३३६
आज अचानक राधिका ✓	३००
आजु वरसाने वरसाने	२६६
आज गई ब्रजराज के	२०२
आज भटू मुरली-वट के ✓	२७०
आज महुँ दधि बेचन ✓	२२०
आज होरी रे मोहन	३४४
आजु गई हुती भोर ही ✓	१७८
आजु भटू इक गोप कुमार ✓	२७०
आजु भटू इक गोप वधू	२३०
आजु री नदलला निकस्यौ ✓	२६७
आजु सवारति नेकु भटू	२८२
आजु सखी नदनदन री ✓	२०८
आनद अनुभव होत ✓	३२३
आपनो सो ढोटा हम ✓	२३३
आये कहा करिकै	३०५
आयी हुती नियरे रसखानि ✓	२११
आली लला घन सो	२०१
आवत लाल गुलाल लिए ✓	२७६
आवत है वन ते मनमोहन	१८१
आवत हौ रस के चसके	३३६
अंकि अगी विनु कारनहि ✓	३२६

(VII)

कारज-कारन रूप	३३५
काल्हि परयौ मुरलि-धुनि मैं ✓	२३८
काल्हि भटू मुरली-धुनि मैं	२२६
काह कहूँ रतियाँ की कथा ✓	३०४
काह कहूँ सजनी सग की ✓	३०५
काहूँ को माखन चाखि	२२३
काहे कूँ जाति जसोमति के	२६१
कीजै कहा जु पै लोग	२७१
कु जगली मे अली निकसी	२१७
कुंजनि कु जनि गुंज के	२४१
केसरिया पट केसरि	२५७
कैसा यह देश निगोरा	३५२
कैधो रसखान रस	२७८
कैसो मनोहर वानक	१६१
काइ सौ माई कहा करिये ✓	३११
कोउ याहि फासी	३२६
कौन की आगरि रूप की	२१३
कौन को लाल सलोनी	२४३
कौन ठगोरी भरी हरि आजु ✓	२११
खंजन नैन फदे पिजरा ✓	२१७
खजन मीन सरोजन को	१६७
खेलत फाग सुहाग ✓	२७३
खेलत काग लख्यो	२७३
खेलिये फाग निसंक	३५०
खेलै अलीजन के गन मैं	२५५
गाइ दुहाई न या पै कहूँ	१६६
गारी के देवैया वनवारी	३३८
गारी खाइयो अरे गवार	२४३
गावै गुनी गनिका गघरव्व ✓	१६१
गुंज गरे सिर मोर पखा ✓	१६२
गोकुल को ग्वाल काल्हि ✓	२७५
गोरज विराजै भाल ✓	१८१
गोकुल के विछुरे को सखी	३०७
गोकुल नाथ वियोग प्रलै	३०८

(VIII)

इक ओर किरीट लसै ✓	३१७
उन्ही के सनेहन सानी ✓	२४२
एक ते एक ली कानन	२१६
एक समै इक ग्वालनि	२५७
एक समै जमुना जल-मे ✓	२३५
एक सू तीरथ डोलत	१७२
एरी कहा वृषभानपुरा की	३३७
एरी चतुर सुजान	२६६
एरी तोहूँ पहचानौ	
ए सजनी जवते	३०८
ए सजनी लोनो लला	२०६
ए सजनी मनमोहन नागर	१६५
औचक दृष्टि परे कहूँ ✓	२५०
कचन के मदिरनि दीठि ✓	१७१
कचन मदिर ऊचे बनाइ ✓	१६६
कस के क्रोध की फैलि ✓	३१२
कँस कुढ्यौ सुनि वानी	१६३
कबहुँ न जा पथ ✓	३२२
कमल ततु सो छीन ✓	३२१
कल काननि कु डल मोरपखा ✓	२२६
कहा करै रसखानि को	१५८
कहा रसखानि सुख संपति ✓	१७०
कातिग बवार के प्रात	२०४
कान परे मृदु वैन	२५६
कानन दै अगुरी रहिवो ✓	२०८
कान्ह भए बस वाँसुरी के ✓	२३१
काम क्रोध मद मोह ✓	३२४
काटे लटै की लटी लुकटी	१६०

(IX)

गोरस गाँव ही मैं बिचिबो	२६३
ग्वालिन सग जैबो वन ✓	३१६
ग्यान ध्यान विद्या ✓	३२७
ग्वालिन द्वैक भुजान गहँ	२६०
घर ही घर घैर घनो	२५२
चन्दन खोर पै बिन्दु	२४३
चद सो आनन मैं	२२५
चीर की चटक औ लटक ✓	३४७
छूट्यौ गृहराक लोक	२४६
छीर जो चाहत चीर गहँ ✓	२२२
जाको लसै मुख चन्द समान	२८४
जग मे सब जान्यौ ✓	३२५
जग मे सब ते अधिक	३२८
जदपि जसोदा-नद अरु ✓	३३१
जमना तट वीर गई	२५०
जल की न घट भरै ✓	२२४
जात हुती जमुना जल कौ ✓	१६४
जाते उपजत प्रेम सोइ ✓	३३३
जाते पलपल बढ़त ✓	३३३
जा दिन ते निरख्यौ ✓	१६४
जा दिन ते वह नन्द को ✓	२१०
जा दिन ते मुस्कान चुभी ✓	२०७
जानै कहा हम मूढ	३१०
जाहु न कोई सखी जमुना जल ✓	२६७
जेहि पाए वैकु ठ ✓	३२८
जेहि विनु जाने कछुहि	३२५
जो कवहुँ मग पाँव न देत	२८८
जोग सिखावत आवत है	३१३
जो जाते जामैं बहुरि	३३३
जो रसना रस न विलसै ✓	१५६
जोहन नन्दकुमार को	२०६

(X)

जोही मैं तिहारी ओर	३३६
डरै सदा चाहे न कुछ	३२७
डहडही वीरी मजु डार	२८८
डोरि लियौ मन मोरि	२२७
डोलिवो कु जनि कु जनि को	२१४
तट की न घट भरै	३४८
तुम चाहो सौ कहौ	२४०
तू गरवाइ कहा भगरै ✓	२८६
तू ऐसी चतुराई ठाने	३४३
तेरी गलीन मैं जा दिन तें ✓	२६६
तैं न लख्यौ जव	१८३
तीरथ भीर मे भूल परी	२४८
तोरि मानिनी तैं हियौ	३३४
तौ पहिराइ गई चुरियाँ	२६८
तोहू पहिचानीं	३३८
‘ता’ जसुदा कह्यो धेनु	१७७
दपति सुख अरु ✓	३२६
दमकै रवि कु डल दामिनी से	१८८
दान पै न कान सुने	३४०
दानी नए भए माँगत ✓	२२१
दूध दुह्यौ सीरो पर्यौ ✓	२२३
दूर ते आइ दुरे ही	२६०
दृग दूने खिचे रहै ✓	१८५
देखत सेज विछी ही अच्छी	२७२
देखन को सखी नैन भए	२३६
देखि कै रास महावन को	१८८
देखि गदर हित-साहिबी	३३४
देखिहौ आँखिन सो पिय ✓	२३६
देख्यौ रूप अपार	२१८
देस विदेस के देखे ✓	१६८
दोउ कानन कुंडल ✓	१६०

(XI)

दो मन इक होते ✓	३३०
द्रौपदी और गनिका गज ✓	१७६
नन्द की न दासी हम	३४०
नन्द को नन्दन है दुख कंदन	२४८
नद महर कै बगर	३५०
नाह बियोग बढ़्यौ रसखानि	१९६
नैन दलालनि चौहटै	१८४
नौ लख गाय सुनी	३४२
परम चतुर पुनि रसिकवर	३४२
पहिले दधि लै गई गोकुल	२२०
प्यारी की चारु सिंगार	२८२
प्यारी पै जाई कितो	२५४
पीय से तुम मान कर्यौ कत	२८७
पूरव पुन्यनि ते चितई ✓	२६७
पै एतो हूँ हम ✓	३२६
पै मिठास या मार ।	३२६
✓ प्रान वही जु रहै रीभि ✓	२३६
प्रीतम नन्दकिसोर	१९६
प्रेम अगम अनुपम ✓	३२०
प्रेम अयनि श्री राधिका ✓	३२०
प्रेम कथानि की बात चलै	२८५
प्रेम निकेतन श्री वनहि	३३४
प्रेम प्रेम सब कोऊ कहत ✓	३२०
प्रेम प्रेम सब कोऊ कहै ✓	३२७
प्रेम फास मै फंसि ✓	३२८
प्रेम बारुनि छानिकै ✓	३२१
प्रेम मरोरि उठै तबहीं	२६५
प्रम रूप दर्पन अहो ✓	३२१
प्रेम हरि को रूप है ✓	३२७
फागुन लाग्यो जवते ✓	२७४
फूलत फूल सबै वन	३०२

(XII)

वृषभान के गेह दिवारी	२५८
वक विलोचन है दुख ✓	२०५
वंसी वजावत आनि कढौ ✓	२२८
वजी है वजी रसखानि ✓	२३२
वन वाग तडागन कु ज गली	२३८
वाँक मरोर गई भृकुटीन	२८२
वाँकी धरै कलगी सिर	२१२
वाँकी बड़ी अखियाँ	१८५
वाँकी विलोकनि रगभरी ✓	२२६
वाँके कटाछ चितैवो सिख्यौ ✓	२६२
वागन मे मुरली	२६५
वार ही गोरस बेचि री ✓	२६४
वागन काहे को जाओ	३०१
वात सुनी न कहूँ हरि की	२५६
वाल गुलाब के नीर असीर	३०४
बासर तूँ जू कहूँ निकरै	२८३
विधु सागर रस इंदु	३३५
विरहा की जु आँच लगी	३०३
विनु गुन जोवन रूप ✓	३२४
विमल सरल रसखानि ✓	१५८
विहरै पिय प्यारी सनेह ✓	२६८
वेद मूल सब धर्म	३३१
वेनु वजावत आवत है नित ✓	२६३
वैद की औपद खाई ✓	३१८
वैन वही उनको गुन ✓	१५७
वैरिनि तूँ बरजी न रहै ✓	२६२
व्याही अनव्याही ब्रजमाँही ✓	२६५
ब्रज की वनिता सब धरि	२३२
ब्रह्म मैं हूँ पुरानन गानन ✓	१६३
भई बावरी हूँ कहि	२६३

(XIV)

मोहन रूप छकी वन	२०२
मोहन सो अटक्यौ मनु	२६३
मोहनी मोहन सो रसखानि	१७५
यह देखि धतूरे के पात ✓	३१८
याही तै सब मुक्ति ✓	३३०
रग भर्यौ मुस्कात लला ✓	२१६
रसमय स्वाभाविक विना ✓	३३२
रसखान सुनाय वियोग ✓	३०३
राधा माधव सखिन	३३५
लगर छैलहि गोकुल में	२२२
लाय समाधि रहे ब्रह्मादिक	१६१
लाज के लेप चढाइ कै ✓	३१४
लाडली लाल लसै ✓	१७६
लाल लसै पगिया सबके	१८६
लीने अवीर भरे पिचका ✓	२७६
लोक की लाज तज्यौ	२०३
लोक वेद मरजाद सब ✓	३२२
लोग कहै ब्रज के ✓	२३४
लाल की आज छटी	१७६
वह गोधन गावत गोवन में ✓	२६१
वह घेरनि धेनु अवेर	१८६
वह नन्द को साँवरो छैल ✓	२०१
वह सोई हुती परजंक	३००

(XVI)

सेष सुरेस दिनेस गनेस	१६६
सोई हुती पिय की छतियाँ ✓	२८६
सोई है रास में नैमुक ✓	२८६
सोहत है चन्दवा सिर ✓	४१५
स्याम सघन घन घेरि कै	४५३
स्रवन कीरतन दरसनोह	३३२
स्रुति पुरान आगम ✓	३२३
स्वारथ मूल असुद्ध त्यौ	३३२
हरि के सब आधीन ✓	३३१
हेरत कु ज भुजा धरें स्याम	३४७
हेरति वारही वार ✓	२८२
है छल की अप्रतीत की	१७४
श्री मुख यो न वखान	४७६
श्री वृष भान की छान घुजा	२४४
ज्ञान करम रु उपासना	३२३

रीतिकाल का परिचय

हिन्दी-साहित्य में रीतिकाल का आविर्भाव संवत् १७०० से १८०० तक माना जाता है। इस काल में दो साहित्यिक धाराएँ युगपद् प्रवाहित होती हुई भी एक-दूसरी से नितान्त भिन्न हैं। एक धारा है रीतिवद्धमार्गी, जो काव्य-शास्त्रीय नियमों का अनुसरण करती है। इस धारा के दो वर्ग हैं। एक वर्ग तो उन लोगों का है जिनके कवित्व के साथ आचार्यत्व का गठवधन है। केशव, जसवतसिंह, चिन्तामणि, देव, भूषण, कुलवति मिश्र आदि इसी वर्ग के अन्तर्गत आते हैं। दूसरा वर्ग उन लोगों का है जिन्होंने काव्यशास्त्रीय विवेचन तो नहीं किया, पर उसके आधार पर अपने ग्रन्थों की रचना की है। बिहारी, मधुसूदन, रसलीन, सेनापति आदि इसी वर्ग के अन्तर्गत आते हैं।

इस काल में जो काव्यशास्त्रीय विवेचन हुआ है, वह प्रायः संस्कृत काव्य-शास्त्र की सीमाओं में ही आवद्ध रहा है। रीतिकालीन आचार्यों में, इसी कारण, नगण्य मौलिकता परिलक्षित होती है। जहाँ तक उद्देश्य का प्रश्न है, रीतिकालीन आचार्यों का उद्देश्य संस्कृत-आचार्यों से भिन्न था। संस्कृत का काव्यशास्त्र समय-समय पर रसवाद, अलंकारवाद, रीतिवाद, ध्वनिवाद तथा वक्रोक्तिवाद का समर्थन एवं खंडन-मंडन प्रस्तुत करता रहा है। हिन्दी के रीतिकालीन आचार्य खंडन-मंडन के इन पचड़ों में नहीं पड़े हैं। इन आचार्यों में से कुछ आचार्यों ने नायिका-भेद निरूपण किया है, कुछ ने अलंकार ग्रंथों का निर्माण किया है और कुछ आचार्यों ने इन दोनों का सृजन किया है। नायक-नायिका-भेद के निरूपण का आधार प्रायः भानुभिश्च रहे है और अलंकारों के लिए अप्रय दीक्षित। संस्कृत के ये दोनों आचार्य भानुभिश्च और अप्रय दीक्षित किसी भी काव्यशास्त्रीय वाद से आवद्ध नहीं थे। हिन्दी के कुछ आचार्य, जो

सर्वांग निरूपक हैं, आचार्य मम्मट और आचार्य विश्वनाथ के श्रृंगी हैं। ये दोनों आचार्य काव्यशास्त्रीय वादो एव सम्प्रदायो में पूर्णतया परिचित थे, पर उन्होंने किसी वाद का वाद की दृष्टि में अनुकरण नहीं किया। हिन्दी के आचार्य अलकारवाद, रीतिवाद तथा ध्वनिवाद ने पूर्णरूपेण परिचित नहीं थे, अतः उनका किसी एक सम्प्रदाय को अपनाकर चलना असम्भव था।

रीतिकाल में जो काव्यशास्त्रीय विवेचन हुआ है, उसे देखा र यह प्रश्न उत्पन्न होता है कि ये कवि लक्षणवद् साहित्य-निर्माण की ओर क्यों आश्रित हुए? क्या इसलिये कि ये हिन्दी साहित्य में संस्कृत काव्यशास्त्र का निर्माण करना चाहते थे, अथवा उनलिये कि ये हिन्दी में संस्कृत काव्यशास्त्र का अनुवाद प्रस्तुत करना चाहते थे? इन दोनों सम्भावनाओं में से हमारी सम्भावना अधिक उचित है। क्योंकि यदि इनका उद्देश्य काव्यशास्त्र की रचना करना होता तो ये भी संस्कृत आचार्यों की भाँति किसी काव्यशास्त्रीय नियम के उदाहरण में अपने पूर्ववर्ती कवियों के उदाहरण प्रस्तुत करते। संस्कृत काव्यशास्त्र को आधार मानकर ही हिन्दी आचार्यों ने अपने विवेचन को प्रस्तुत किया है। फिर भी हिन्दी में ऐसे अनेक आचार्य हुए हैं जिन्होंने हिन्दी की विकासशील प्रवृत्तियों का भी ध्यान रखा है। आचार्य निगारीदाम ने 'तुल' का विवेचन हिन्दी-प्रवृत्तियों के आधार पर ही किया है। देव और निगारीदाम दोनों ने गी नायिका-भेद में अपनी मौलिकता का परिचय दिया है और अनेक ऐसी नायिका तथा दूतियों का उल्लेख किया है जो संस्कृत काव्यशास्त्र में नहीं मिलती। अब प्रश्न यह हो सकता है कि इन आचार्यों को संस्कृत काव्यशास्त्र के अनुवाद की क्या आवश्यकता थी? इनका उत्तर स्पष्ट है—आचार्यत्व प्राप्ति का प्रयत्न। निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि आचार्य के पद पर प्रतिष्ठित होने वाले रीतिकालीन आचार्यों में आचार्यत्व की अपेक्षा का प्रतिभा का अन्त ही अधिक है।

इसके अतिरिक्त रीतिकाल में कुछ ऐसे भी कवि हुए हैं, जिनमें आचार्यत्व का प्रयत्न जागृत नहीं हुआ। उन्होंने अपनी प्रतिभा को काव्य तत्त्व ही मौलिक रखा, अर्थात् लक्षण-ग्रन्थों की अपेक्षा लक्ष्य-ग्रन्थों का निर्माण दिया। बिहारी आदि कवि इसी वर्ग के अन्तर्गत आते हैं।

काव्य-दृष्टि से यदि रीतिकाल का मंथन किया जाए तो हमें यन्त्रि

रीतिबद्धमार्गी शाखा की निम्नलिखित विशेषताएँ परिलक्षित होती हैं—

१. शृंगारिकता
२. आलंकारिकता
३. भक्ति और नीति
४. काव्यरूप
५. ब्रजभाषा की प्रधानता
६. जीवन-दर्शन का अभाव

१. शृंगारिकता—रीतिकाल में शृंगार-वर्णन की प्रधानता रही है। इसी प्राधान्य के कारण कतिपय विद्वान् इस काल को 'शृंगार काल' कहना उपयुक्त समझते हैं। शृंगार-रस का जितना सूक्ष्म विवेचन इस काल में हुआ है, उतना किसी काल में नहीं हुआ। इस प्रवृत्ति का मुख्य कारण तत्कालीन राजनीतिक और सामाजिक परिस्थितियाँ हैं। कवियों का ध्येय अपने आश्रयदाता का मनोरंजन करना होता था और मनोरंजन के लिए शृंगार के अलावा और क्या विषय उपयुक्त हो सकता है। भक्तिकाल में माधुर्य भक्ति का जो अबाध स्रोत बहा और उसमें जिस शृंगार को अलौकिक रूप दिया गया, वही रीतिकाल में आकर लौकिक और मासल बन गया। प्रथम दर्शन से लेकर सुरतातक के चित्रों का इस काल के कवियों ने बड़े मनोयोग से चित्रण किया। इसी कारण इनकी दृष्टि में प्रेम और नारी का स्वस्थ स्वरूप न आ सका। डॉ० भागीरथ मिश्र के शब्दों में—

‘शृंगारिकता के प्रति उनका (रीतिकालीन कवियों का) दृष्टिकोण मुख्यतः भोगपरक था, इसीलिए प्रेम के उच्चतर सोपानों की ओर वे न जा सके। प्रेम की अनन्यता, एकनिष्ठता, त्याग, तपश्चर्या आदि उदात्त पक्ष भी उनकी दृष्टि में बहुत कम आए हैं। उनका विलासोन्मुख जीवन और दर्शन सामान्यतः प्रेम या शृंगार के बाह्य पक्ष शारीरिक आकर्षण तक ही सीमित रहकर रूप को मादक बनाने वाले उपकरण ही जुटाता रहा। यह प्रवृत्ति नायिका-भेद, नख-शिख वर्णन, ऋतु-वर्णन, अलंकार निरूपण सभी जगह देखी जा सकती है।’

२. आलंकारिकता—रीतिकालीन कवियों के काव्य के दो प्रमुख उद्देश्य थे—मनोरंजन और पांडित्य-प्रदर्शन। आलंकारिकता का प्राधान्य इन दोनों ही कारणों से रीतिकालीन काव्य में समाविष्ट हुआ। यह सच है कि काव्य में

अलंकारों को उसकी शोभा के आधार पर धर्म माना गया है और यदि उनका समुचित प्रयोग किया जाए तो काव्य प्रभाव एवं भावप्रेषणीयता में बहुत सीमा तक सहायक सिद्ध होते हैं। किन्तु रीतिकालीन कवियों ने अलंकारों का प्रयोग प्रायः चमत्कार-प्रदर्शन के लिए ही किया, इसलिए इस काल में ज्येष्ठ और यमक जैसे श्रमसाध्य अलंकारों का बोलवाला रहा। उन कवियों ने चमत्कार के प्रति अपना इतना गहन प्रलोभन दिखाया है कि यदि रस और चमत्कार में वे इन्हें एक को ग्रहण करने का अवसर आया है तो उन्होंने चमत्कार को ही ग्रहण किया है।

३. भक्ति और नीति — जो भक्ति भक्तिकाल में कवियों का माध्य थी, वही इस काल में आकर साधन बन गई। इन्होंने राधा और कृष्ण को लौकिक धरातल पर ला खड़ा किया और तब वे साधारण नायिका और नायक बनकर रह गए। भक्ति के प्रांत इस काल के कवियों का कोई रत्नान नहीं था और न वे ऐसे वातावरण में ही थे जो भक्ति के अनुकूल पड़ता है। फलतः राधा और कृष्ण के माध्यम से इन्होंने शृंगारिकता को ही अभिव्यक्त की है। डॉ० नरेन्द्र के शब्दों में —

‘यह भक्ति भी उनकी शृंगारिकता का अंग थी। जीवन की अनिश्चय रसिकता से जब ये लोग घबड़ा उठते होंगे तो राधा-कृष्ण का वही अनुराग उनके धर्मभोक्त मन को आश्वासन देना होगा। इस प्रकार रीतिकालीन भक्ति एक ओर सामाजिक कवच और दूसरी ओर मानसिक प्ररणाभूमि के रूप में इनकी रक्षा करती थी। तभी तो ये किसी तरह उसका अचल पाठ्य हुए थे। रीतिकाल का कोई भी कवि भक्तिभावना से हीन नहीं है — हो भी नहीं सकता था, क्योंकि भक्ति उसके लिए एक मनोवैज्ञानिक आवश्यकता थी। भक्ति रस की उपामना करते हुए उसके विलास-जर्जर मन में इतना नैतिक बल नहीं था कि भक्तिरस में अनास्था प्रकट करने का उसका सैद्धांतिक निषेध करते। इसलिए रीतिकाल के सामाजिक जीवन और काव्य में भक्ति का आभास अनिवार्यतः वर्तमान है और नायक-नायिका के लिए बार-बार हरि और राधिका शब्दों का प्रयोग किया गया है।’

जहाँ तक नीति का सम्बन्ध है, इस विषय में इन लोगों ने जो कुछ लिखा है, वह यथार्थ और व्यावहारिक है। वस्तुतः इनका वातावरण भक्ति की

अपेक्षा नीति के अधिक निकट था ।

४. काव्यरूप — इस काल का वातावरण मुक्तको के ही अधिक अनुरूप था, क्योंकि मनोरंजन इस काल के काव्य का मुख्य प्रयोजन था । ऐसे वातावरण में किसी प्रबंधकाव्य की आशा करना अनुचित ही है । काव्य का मूल्यांकन उसके चमत्कार में निहित था । अतः कवि मुक्तक पदों में ही अपनी कवि-प्रतिभा और पाण्डित्य प्रदर्शन कर सकते थे । प्रबंध और मुक्तक के स्वरूप को स्पष्ट करते हुए आचार्य शुक्ल मुक्तक के लिए उपयुक्त वातावरण का निर्देश करते हुए लिखते हैं —

‘मुक्तक में प्रबंध के समान रस की धारा नहीं रहती जिसमें कथा-प्रसंग की परिस्थिति में अपने आपको भूला हुआ पाठक मग्न हो जाता है और हृदय में एक स्थायी प्रभाव ग्रहण करता है । इसमें रस के ऐसे छीटे पड़ते हैं जिनमें हृदय-कालिका थोड़ी देर के लिए खिल उठती है । यदि प्रबंधकाव्य बनस्थली है तो मुक्तक एक चुना हुआ गुलदस्ता है । इसीसे वह सभा-समाजों के लिए अधिक उपयुक्त होता है । उसमें उत्तरोत्तर अनेक दृश्यों द्वारा सघटित पूर्ण जीवन या उसके किसी एक पूर्ण अंग का प्रदर्शन नहीं होता, कोई एक रमणीय खंडदृश्य इस प्रकार सामने ला दिया जाता है कि पाठक या श्रोता कुछ क्षणों के लिए मन्त्र-मुग्ध-सा हो जाता है । इसके लिए कवि को मनोरम वस्तुओं या व्यापारों का एक छोटा-सा स्तवक कल्पित करके उन्हें अत्यन्त सक्षिप्त और सशक्त भाषा में प्रदर्शित करना पड़ता है ।’

कहने की आवश्यकता नहीं कि शुक्ल जी का यह विवेचन रीतिकालीन काव्यरूप पर भी उतना ही फिट बैठता है जितना स्वतंत्र रूप से ।

रीतिकाल में कुछ प्रबंधकाव्य भी लिखे गये हैं, पर मुक्तक काव्यों की तुलना में उनकी संख्या नगण्य ही है ।

५. ब्रजभाषा की प्रधानता—इस काल में ब्रजभाषा के प्रयोग को ही कवियों ने अधिक महत्त्व दिया और समूचे रीति-कालीन काव्य में इसी भाषा का बोलबाला रहा । इस प्रयोगाधिक्य से ब्रजभाषा को भी नई शक्ति, नई सजीवता एवं नई प्राणवत्ता मिली ।

६. जीवन-दर्शन का अभाव—रीतिकालीन कवियों के समक्ष यथार्थ जीवन का कोई महत्त्व नहीं था और न जीवन की सम्पूर्णता ही उन्हें वाञ्छित

थी। वे तो जीवन के केवल उसी भाग को ग्रहण करते थे जिसमें कल्पनाओं की उड़ाने और वासना की थिरकनें थी, युवावस्था से युक्त जीवन ही रीतिकालीन कवियों का प्रतिपाद्य था। प्रो० भगीरथ मिश्र के शब्दों में—

‘ऐसे लगता है कि रीति कविता के रचियता जीवन और वसन्त के कवि हैं। जीवन का फूलता हुआ सुघर रूप ही उन्हें प्रिय है। पतझड़, सघर्ष और विनाश सम्भवतः स्वतः जीवन में इतने घोर रूप में विद्यमान था कि कवि काव्य में भी उसको उतारकर नैराश्य और निवृत्ति की भावना को जगाना नहीं चाहता है। वह तो फूलते-फलते जीवन का भ्रमर है। उसने जीवन का एक ही स्वरूप लिया, एक ही पक्ष लिया, यह इस धारा के कवि की संकीर्णता है, दुर्बलता है, और एकांगिता है, परन्तु जिस पक्ष को उसने लिया है उसके चित्रण में उसने कोई कसर उठा नहीं रखी। उसके समस्त वैभव और विलास के चित्रण में उसने कलम तोड़ दी है।’

यही कारण है कि रीतिकालीन कवि के पास न तो कोई स्वस्थ जीवन है और न कोई जीवन-दर्शन है।

रीतिकाल की दूसरी काव्यधारा रीतिमुक्त कवियों की है। घनानन्द, आलम, वोधा, रसखान आदि इस धारा के प्रमुख कवि हैं। ये कवि न तो किसी परम्परा से संबद्ध हैं और न किसी काव्यशास्त्रीय नियमन से। ये भावावेश के कवि हैं। इनके मन में जो भी भाव स्फुरित होता है, उसे ये अत्यन्त सबल एवं प्रभावोत्पादक अभिव्यंजना के माध्यम से प्रकट करते हैं। इनके अपने सिद्धांत, अपनी रीति और अपनी अभिव्यंजना शैली है। इनको तो वही व्यक्ति समझ सकता है जो ब्रजभाषा का अधिकारी विद्वान् होने के साथ-साथ महास्नेही हो। रसखान का सम्बन्ध इसी धारा से है, अतः इस धारा का परिचय प्राप्त करना आवश्यक है।

भक्ति के युग के पवित्र ब्रह्मद्रव की धारा को पार कर जब हिन्दी के कवियों ने तनिक सामने की ओर अपनी दृष्टि दौड़ाई तो हरे-हरे लता-कुजों, कदम्ब के घने वृक्षों तथा हरियाली से भरे फूलों वाली निर्मल जल की धारा ने उनके मन को अपनी ओर आकर्षित कर लिया, फिर क्या था, वही उनका मन “श्याम हूँ समान्यो, यमुना यमुन जल तरंग में” कवियों के लिए कविता का एक नया सुन्दर मार्ग मिल गया। यहाँ कविता की शैली में एक

नूतन परम्परा का आविष्कार हुआ। आगे चलकर इस नवीन परम्परा को रीतिकाल के नाम से अभिहित किया गया।

हिन्दी-साहित्य का यह रीतिकाल सभी दृष्टियों से ऊँचा और आदर्श माना जाता है। इस युग में कविता करने की एक ऐसी प्रणाली बन गई, जिसका अवलम्ब सभी परवर्ती कवियों ने लिया। सच पूछा जाए तो भाषा, शैली और विषय तीनों दृष्टियों से यह काल एक ऐसा राजमार्ग बना, जिस पर चलकर तत्कालीन कवियों को कविता करने में विशेष सुविधाएँ मिली। इस युग में कविता-पद्धति के हम दो विभिन्न रूप देखते हैं।

एक रीतियुक्त और दूसरा रीतिमुक्त। रीतियुक्त कवियों ने काव्य के लक्षण-ग्रन्थों के आधार पर कविताएँ लिखी पर रीतिमुक्त कवियों ने स्वतन्त्र रूप से अपनी रचनाएँ उपस्थित की। इन कवियों में से प्रमुख कवि घनानन्द थे। सच पूछा जाए तो इन कवियों की स्थिति रीतिकाल में उसी प्रकार की थी जिस प्रकार कमल की स्थिति जल में होती है। सूक्ष्म रूप से इनके काव्य का अध्ययन करने से इस बात की प्रामाणिकता स्पष्ट हो जाती है।

रीतिकालीन कविता का राजमार्ग आद्योपान्त शृंगार रस से अभिसिंचित है, इसमें संभवतः तो किसीको भी सन्देह नहीं, पर रीतिमुक्त कवियों ने इस पथ पर जहाँ तक संचरण किया भक्ति के, अगर, धूप, चन्दन से उसे पवित्र कर दिया। इनकी कविता केवल शृंगार की वशी-ध्वनि ही नहीं, अपितु भक्ति की खञ्जडी भी मुखरित सुनाई पड़ती है। इन्होंने शृंगार के साथ भक्ति का मिश्रण करके बिहारी के 'श्याम हरित द्युति होय' से कुछ कम कमाल नहीं किया। दो शब्दों में यदि हम रीतिमुक्त कवियों को रीति परम्परावादी कवियों में भक्त कवि मान ले तो अधिक युक्तिसंगत होगा। इस परम्परा के अन्तर्गत घनानन्द, बोधा, आलम, निवाज, ठाकुर आदि प्रमुख हैं। इस धारा के कवियों के काव्य की प्रमुख विशेषताएँ या सामान्य प्रवृत्तियाँ निम्नलिखित हैं—

१. काव्य-रचना का प्रेरणा स्रोत निजी जीवन :—यद्यपि इन कवियों में से कुछ का संबंध विभिन्न राजाओं के दरबार से भी रहा। किन्तु फिर भी इन्होंने केवल अपने आश्रयदाताओं को प्रसन्न करने के

लिए काव्य-रचना नहीं की। इनकी काव्य-रचना का प्रेरणा स्रोत इनका वैयक्तिक जीवन ही था। इन्होंने अपने जीवन में प्रेम और विरह की ऐसी अनुभूतियाँ प्राप्त की जिन्होंने इनको काव्य-रचना के लिए दिव्य कर दिया। यह कविता नहीं लिखते थे, अपितु कविता स्वतः ही इनकी अनुभूतियों से प्रेरित होकर उच्छ्वसित हो जाती थी। घनानन्द ने लिखा है—

“लोग है लागि कवित्त बनावत,
मोहि तो मेरे कवित्त बनावत।”

इसी प्रकार इस धारा से अन्य कवियों ने भी प्रयत्नपूर्वक कविता नहीं लिखी, अपितु उसमें उनकी भावनाओं के सहज स्वाभाविक उद्गार हैं। इनके बहुत से समकालीन कवि रीति के लक्षणों को ध्यान में रखकर कविता करते थे, जो इन्हें पसन्द न थी।

ठाकुर ने ऐसे कवियों की आलोचना करते हुए लिखा है—

“सीखि लीनो मीन मृग खजन, कमल नयन,
सीखि लीनो जस और प्रताप को कहानो है।”

इससे स्पष्ट है कि इस धारा के कवियों ने कविता के वास्तविक महत्व को समझा था। यही कारण है कि इनकी कविता में बाह्य शरीर के चित्रण के स्थान पर हृदय की सच्ची पुकार मिलती है।

२ स्वच्छन्द प्रेम:—जो प्रेम समाज की मर्यादाओं के प्रतिकूल हो, उसे स्वच्छन्द प्रेम का नाम दिया जाता है। हिन्दी के इन कवियों का प्रेम भी स्वच्छन्द प्रेम की कोटि में आता है। इन कवियों ने जाति, समाज और धर्म की अनुयायिनी ली। घनानन्द की सुजान, बोधा की मुभान, आलम की शेख, आदि नायिकाएँ जाति की मुसलमान थीं। ऐसी स्थिति में इन कवियों को प्रेम के क्षेत्र में विविध कठिनाइयों का सामना करना पड़ा। मित्रों का उपहास, समाज की निन्दा और आश्रयदाताओं के विरोध का उन्हें सामना करना पड़ा। उन्हें जीवन में अनेक कष्ट सहने पड़े, किन्तु फिर भी वे अपने प्रेम-मार्ग से पीछे नहीं हटे। उनके प्रेम में सच्चाई और एकोन्मुखता के दर्शन होते हैं। बोधा के शब्दों में वे अपनी प्रेयसी के लिए संसार के वैभव को ठुकराने के लिए सहर्ष प्रस्तुत हैं—

“एक सुभान के आनन पे, कुरवान जहाँ लगि रूप जहाँ को ।
जानि मिले तो जहान मिले, नहि जान मिले तो जहान कहाँ को ॥”

प्रेम की इसी अनन्यता के कारण इनके शृंगार वर्णन में स्वच्छता, पवित्रता और गभीरता मिलती है जिसका रीतिबद्ध कवियों में अभाव मिलता है।

३. सौन्दर्य का सूक्ष्म रूप में चित्रण जहाँ रीतिबद्ध कवियों ने अपने काव्य में नारी के स्थूल अंगों की नाप-जोख की है वहाँ इन्होंने अपनी प्रेयसियों के सौन्दर्य का वर्णन अत्यंत सूक्ष्म रूप में किया है। वह उनके नख-शिख का वर्णन न करके उसके स्थान पर सौन्दर्य की अनुभूतिपूर्ण झलक प्रस्तुत करते हैं। घनानन्द के अनुसार—

“अग अंग तरंग उठे द्युति की
परि है मनु रूप अवै घर चवै।”

अर्थात् नायिका के प्रत्येक अंग से सौन्दर्य की लहरे उठ रही हैं। अभी इसका रूप धरती पर चू पड़ेगा। इसी भाँति वे स्थूल विशेषताओं के स्थान पर सूक्ष्म सौन्दर्य का चित्रण करते हैं। नायिका के होठों की लाली की अपेक्षा इन्हे उसकी मुस्कराहट अधिक आकर्षित करती है। देखिए—

“छवि को सदन, गोरो वदन रुचिर भाल,
रस निचुरत मृदु मीठी मुस्कयानि मे।”

उसकी मीठी मुस्कराहट में रस टपक रहा है। यह वाक्य हमें छायावादी सौन्दर्य पद्धति का स्मरण कराता है। यहाँ ‘मीठी’ का प्रयोग विशेषण विपर्यय के रूप में हुआ है जो कि छायावाद की विशेषता मानी जाती है। इसी प्रकार अन्य कवियों ने भी सौन्दर्य का अंकन सूक्ष्म रूप में ही किया है।

४. शृंगार के संयोग और वियोग पक्ष का चित्रण— स्वच्छन्द धारा के कवियों को विरह और मिलन दोनों में प्रेमियों के हृदय के अन्तःस्थों को उद्घाटित करने की ही लगी रहती है। वैसे तो इन्होंने शृंगार के दोनों स्थलों का चित्रण किया है, परन्तु इनकी मनोवृत्ति वियोग-पक्ष में अधिक रमी है। प्रेम को ये लोग आन्तरिक और गोपनीय वस्तु मानते हैं। रीति मार्गीय कवियों की प्रेम-वक्रता के विरुद्ध ये लोग तो यह मानते हैं—

“अति सूघो सनेह को मारग है,
जहाँ नेक सयानप बांध नहीं।”

परन्तु संयोग में बाहरी जगत की प्रधानता होती है और उस समय कवि की अन्तर-वृत्ति भी बहिर्मुखी होती है। ऐसी स्थिति में प्रेम की सघनता व तर-

लता अभिव्यक्त नहीं हो पाती । वियोग पक्ष में कवि की दृष्टि अन्तर्मुखी होती है । वह प्रेमानुभूति को स्वयं प्रेमी बनकर प्रकट करता है । अतः उसकी विरह-उक्तियाँ हृदय के अन्तस्तल से सच्ची प्रकार से प्रकट होती हैं । वह प्रेम की अतुल गहराइयों तक बैठने को आतुर रहता है । वियोग की अमिट प्यास हृदय को सदा द्रवित रखती है । विरह में अनुभूति का स्वरूप अधिक तीव्र होता है । अतः उनकी विरह विषयक धारणा अधिक विलक्षण है । वस्तुतः इनकी प्रेम तृप्ता सदा बढ़ती ही रहती है । इनमें विरह का मार्मिक चित्रण है और निजी प्रेम की पीर का प्रदर्शन सच्चे रूप में मिलता है ।

आचार्य विश्वनाथप्रसाद मिश्र ने इन कवियों को सूफियों से प्रभावित माना है । उनका यह विश्वास है कि इनके काव्यों में वर्जित प्रेम-पीर फारसी काव्य-धारा का प्रभाव है जो कि सूफियों के माध्यम से आया है । उनके ही शब्दों में “इन स्वच्छन्द कवियों ने फारसी काव्यगत वेदना की निवृत्ति के साथ इस प्रेम-पीर का स्वागत किया । इनकी रचना में वियोग के आधिक्य का कारण यही है । लौकिक पक्ष में इनका विरह निवेदन फारसी काव्य की वेदना की निवृत्ति से प्रभावित है और अलौकिक पक्ष में सूफियों की प्रेम-पीर से ।” रीतिमुक्त कवियों ने विरह का अतिशयोक्तिपूर्ण वर्णन नहीं किया है । वह नायिका को रीतिवद्ध कवियों की तरह इतनी जलती हुई नहीं दिखाता कि “उस पर गुलाब जल की गोशी आँधा दी जाए तो वह भाप बनकर उड़ जाएगी ।” परन्तु रीतिमुक्त कवि इन सब अन्तर्दशाओं का चित्रण आन्तरिक शैली से करता है ।

इन्होंने कृष्ण के सगुण सलौने रूप को अपने काव्य का विषय बनाया है, अतः इन्होंने कृष्ण और राधा के संयोग पक्ष के प्रेम की भी बड़ी मनोहारी और मार्मिक झोंकियाँ प्रस्तुत की हैं । इनका प्रेम वासना-पकिल न होकर स्त्वच्छ चमत्कार प्रदर्शन है । संक्षेप में कहा जा सकता है कि इनका प्रेम वहिर्मुखी न होकर अन्तर्मुखी अधिक है । उसमें हृदय की मार्मिक सूक्ष्म अनुभूतियों और सौन्दर्य की महीन से महीन बारीकियाँ हैं । वस्तुतः ये प्रेम हृदय और सौन्दर्य के सच्चे पारखी हैं ।

५ भक्ति का स्वरूप—इन कवियों ने राधा और कृष्ण की लीलाओं का उन्मुक्त गान किया है, किन्तु इतने भर से इन्हें कृष्णभक्त कवि सूरदास

आदि की कोटि में नहीं रखा जा सकता। क्योंकि लगभग सभी रीतिकालीन कवियों का यह कथन है—

आगे के सुकवि रीति हैं तो कविताई,
न तु राधिका कन्हाई सुमरिन को बहानो है।'

इनको शुद्ध रूप से भक्त कवि नहीं कहा जा सकता क्योंकि इनका प्रमुख उद्देश्य शृंगार-वर्णन था। इसीलिए इन्होंने भगवद् भक्ति की ओर से अश्लील एवं असंस्कृत चित्र प्रस्तुत किए। आचार्य विश्वनाथप्रसाद के अनुसार पहले इनकी रुचि रीतिबद्ध रचना की ओर दिखाई देती है। दूसरे रूप में इन्होंने स्वच्छन्द रूप से प्रेम के पवित्र क्षेत्र में पदार्पण किया। तीसरे में इनकी रचनाएँ भक्तिपरक हो गईं।''

आगे वह लिखते हैं कि यदि भक्त कहे बिना सतोष न मिले तो इन्हें उन्मुक्त भक्त कवि मान लिया जा सकता है। इनका भक्त कवियों से पार्थक्य इनकी स्वच्छन्द प्रकृति द्वारा ही हो जाता है। दूसरा इन्होंने भक्त कवियों द्वारा त्याज्य विषयों को "प्रिय की वास्तविक कठोरता" आदि का वर्णन विस्तार से किया है। इनकी भक्ति में साम्प्रदायिकता एवं संकीर्णता की भावना नहीं है। उन्होंने अनेक देवी-देवताओं के प्रति उदार आस्था प्रदर्शित की है। रसखान और घनानन्द को ही इस भक्त कोटि में रखा जा सकता है।

६. प्रकृति चित्रण—प्रायः सभी कवियों ने हिन्दी-साहित्य के प्रथम तीन कालों में प्रकृति-चित्रण को उपेक्षित रखा है। परन्तु रीतिकाल में दृष्टि शृंगारपरक होने के कारण शृंगारिक चित्रण में अधिक रमी इसलिए उनकी दृष्टि भी इसके वर्णन से दूर हट गई। रीतिकाल में प्रकृति का चित्रण उद्दीपन रूप में हुआ है। सेनापति की रचना से प्रकृति कही-कही उद्दीपन के वधन से मुक्त अवश्य मिल जाती है। विरह वारीश में बोधा में प्रकृति वर्णन कुछ तो नास्त्र वद्ध और कुछ स्वच्छन्द रीतिबद्ध रखा है।

७. लोक-जीवन का ग्रहण — स्वच्छन्दमार्गी कवियों ने लोक-जीवन के मगल मोद पक्ष को भी लिया है। प्रसिद्ध पर्व त्यौहारों पर रीतिमुक्त शैली में उत्तम रचनाएँ की हैं। अखतीज, हरियाली तीज, भूला, बट पूजन आदि अनेक त्यौहार ठाकुर के काव्य में वर्णित हुए हैं।

८. काव्य पद्धति:—स्वच्छन्द कवियों ने रीति का निर्वाह आरम्भ में स्वीकृत

करके बाद में त्याग दिया। रीतियुक्त, रीतिवद्ध सभी कवियों में नेत्र व्यापार सम्बन्धी सभी उक्तियाँ समान रूप से पाई जाती हैं। राजाश्रित कवि ने तो उर्दू या फारसी के काव्यरचना के रकीबों और माशूकों की जोड़-तोड़ में खण्डिता को पेश किया। यहाँ पर ये कुछ रीतिवद्ध कवियों के समीप आ जाते हैं। स्वच्छन्द कवियों ने खण्डिता नायिका के द्योतक चिन्हों के वशोरे प्रस्तुत न करके उसके हृदय को दिखलाने का प्रयत्न किया। सुरतात या विपरीत रति के द्युत्सित चित्र प्रायः इन कवियों में नहीं मिलते हैं। जो मिलते हैं वह भी उस समय के जब इन कवियों ने इस मैदान प्रवेश किया था। बोधा में कहीं-कहीं वाजारु टंग अवश्य मिलता है।

९. मुक्तक शैली :—वैसे तो समूचे रीतिकाल में मुक्तक शैली की ही प्रधानता पाई जाती है। परन्तु फिर भी कभी-कभी फुटकल रूप में प्रबन्ध काव्यों की रचना होती रही। आलम ने ‘भाववानल’ ‘कामकदला’ ‘नुदामा चरित्र’ और श्याम स्नेही, बोधा ने ‘विरह वारीश’ नामक प्रबन्ध काव्य प्रस्तुत किए।

१०. छन्दालंकार :—इस धारा में अधिकांशतः कवित्त, सवैया और दोहा जैसे छन्दों का प्रयोग किया गया। यद्यपि बीच-बीच में छप्पय, व रवं हरिपद आदि छन्दों का प्रयोग किया गया है किन्तु सभी रीति-कवियों की वृत्ति अधिकतर दोहा-सवैया और कवित्त में रमी है। रीतिमुक्त धारा के कवियों ने अलंकारों का प्रयोग अपने प्रकृत रूप में किया है। इनके यहाँ अलंकार साधन रूप में आए हैं न कि साध्य के रूप में।

११ भाषा :—भाषा का परिमार्जन और व्यवस्थापन भी इन स्वच्छन्द कवियों के द्वारा ही हुआ है। क्योंकि रीतिवद्ध कवियों के पास इतना अवकाश होते हुए भी उन्होंने भाषा को व्यवस्थित करने का प्रयास नहीं किया। मति-राम और पद्माकर को छोड़कर दूसरे कवियों में भाषा की सफाई के दर्शन नहीं होते। भूपण और देव आदि ने स्वेच्छा से शब्दों को तोड़ा-मरोड़ा है। इनकी भाषा में प्रादेशिकता की पुट भी बनी रही। परन्तु रीतिमुक्त कवियों में न तो भाषा के अंग भंग की प्रवृत्ति और न ही प्रादेशिकता का ही पुट है। रसखान और घनानन्द ने तो बज भाषा का ऐसा प्रयोग किया है जिसमें बज भाषा

का साहित्यिक परिनिष्ठित रूप स्वीकृत और मुहावरो का भी सुन्दर प्रयोग हुआ है ।

अन्त में हम कह सकते हैं कि इनकी कविता सच्ची अनुभूति से पूर्ण है । भावपक्ष और कलापक्ष दोनों की दृष्टि से इनका काव्य प्रौढ़ है । यदि हम इस काव्यधारा के सर्वश्रेष्ठ कवि घनानन्द को हिन्दी शृंगारी कवियों में सर्वश्रेष्ठ मानें तो अनुचित नहीं होगा ।

: २ :

रसखान का जीवन-वृत्त

रीतिकालीन स्वच्छन्द काव्यधारा के विशिष्ट कवि रसखान का न तो जीवन-वृत्त ही निर्विवाद है और न इनकी रचनाएँ । इनके जीवन-वृत्त को जानने की जो सामग्री उपलब्ध है, उसे दो भागों में विभाजित किया जा सकता है—अन्तःसाक्ष्य और बाह्य साक्ष्य । अन्तःसाक्ष्य में वे तथ्य होते हैं जो सम्बद्ध कवि की रचना अथवा रचनाओं में मिलते हैं । बाह्य साक्ष्य में अन्य विद्वानों द्वारा अन्वेषित तथ्यों का विवेचन होता है । इन्हीं दो आधारों पर हम यहाँ पर रसखान का जीवन-वृत्त प्रस्तुत कर रहे हैं ।

अन्तःसाक्ष्य—जहाँ तक अंतःसाक्ष्य का सम्बन्ध है, अन्य भक्त-कवियों की भाँति रसखान भी अपने विषय में प्रायः मौन रहे, चाहे शालीनतावश अथवा राजनीतिक कारणों से । प्रेम-वाटिका में अपने विषय में इन्होंने निम्नलिखित केवल चार दोहे लिखे हैं —

१. देखि गदर हित-साहिबी, दिल्ली नगर मसान ।
छिनहि वादसा-बस की, ठसक छोरि रसखान ॥
२. प्रेम-निकेतन श्रीबनहि, आड गोवर्धन-धाम ।
लह्यौ सरन चित माहिकै, जुगल-सरूप ललाम ॥
३. तोरि मानिनी ते हियो, फोरि मोहिनी मान ।
प्रेमदेव की छबिहि लखि, भए मियाँ रसखान ॥
४. विधु सागर रस इन्दु सुभ, बरस सरस रसखान ।
प्रेमवाटिका रचि रुचिर, चिर हिम हरषि बखान ॥

इन दोहों से यह ज्ञात होता है कि जब दिल्ली में शासन-लिप्सा के कारण गदर हुआ और दिल्ली नगर शमशान की भाँति कुरूप एवं भयानक हो गया तो रसखान शाही वश का तुरंत गर्व छोड़कर, तथा अपनी मानिनी प्रिया मान की चिन्ता न करते हुए ब्रज में आए, जहाँ इन्होंने सन् १६७१ में प्रेमवाटिका की रचना की ।

यह कथन समस्या का सरल समाधान नहीं, वरन् समस्या को और उलझा देने वाला है। इस कथन से उपस्थित समस्याये ये हैं—

१. रसखान का अभिप्राय किस गदर से है ? यह गदर कब हुआ ?
२. रसखान ब्रज में कब आये ?
३. रसखान की प्रेयसी कौन थी जिसे ये ठुकराकर ब्रज आये ?
४. 'प्रेमवाटिका' की रचना करते समय रसखान की आयु क्या थी ?

हिन्दी-विद्वान् उपर्युक्त प्रथम दो प्रश्नों को तो प्रायः उपेक्षित कर गए हैं। 'प्रेमवाटिका' के रचना-काल को सर्वाधिक महत्त्व देकर इसके आधार पर रसखान के जो विभिन्न काल निर्णीत किए गए हैं, वे इस प्रकार हैं—

१. 'शिवसिंह-सरोज' के लेखक शिवसिंह ने इनका जन्म संवत् १६३० माना है।

२. 'शिवसिंह-सरोज' के मत को आधार मानकर ही बाबू राधाकृष्णदास ने 'सूरसागर' की भूमिका में रसखान का जन्म संवत् १६३१ स्वीकार किया है।

३. पं० किशोरीलाल गोस्वामी ने स्व-सम्पादित 'प्रेमवाटिका' के द्वितीय संस्करण में रसखान का समय सोलहवीं शताब्दी निश्चित किया है।

४. 'रसखान और घनानंद' नामक कृति के सम्पादक बाबू अमीरसिंह ने पं० किशोरीलाल गोस्वामी के मत को ही मान्यता प्रदान की है।

५. मिश्रबन्धुओं ने 'मिश्रबन्धु-विनोद' में रसखान का जन्म संवत् १६१५ में और देहावसान संवत् १६८५ में माना है।

६. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने रसखान के केवल कविता काल का उल्लेख किया है जो संवत् १६४० के उपरांत है।

७. डॉ० रामकुमार वर्मा ने संवत् १६७१ को ही रसखान का कविता-काल माना है।

ये मत मुख्यतः 'प्रेमवाटिका' के रचना काल पर ही आधृत हैं।

कुछ विद्वानों ने 'दिल्ली के गदर' के आधार पर रसखान के समय का निर्णय करने के प्रयास किये हैं। श्री अमृतलाल शील ने दिल्ली की इस दुर्घटना को नादिरशाह के भीषण आक्रमण से जोड़कर रसखान का समय गोस्वामी विट्ठलनाथ से १५० वर्ष पश्चात् माना है। पर शील जी अपने मत

की स्थापना करते समय ये भूल गये हैं कि गोस्वामी विठ्ठलनाथ रसखान के दीक्षा-गुरु थे। हिन्दी के कुछ अन्य विद्वानों की भाँति आचार्य चन्द्रवली पाडेय ने भी जहाँगीर (सलीम) के पुत्र खुसरू (जन्म संवत् १६४२, मरणकाल संवत् १६७६) द्वारा राज्य हड़पने की संवत् १६६२-६३ वाली विकल घटना को रसखान द्वारा उल्लिखित “दिल्ली का गदर” स्वीकार किया है। कुछ अन्य विद्वानों ने अकबर की काबुल-विजय को ही दिल्ली का गदर मान लिया है। डॉ० भवानीशंकर याज्ञिक ने इन सभी मान्यताओं को अमान्य ठहराते हुए इस विषय पर विस्तार से, इतिहास के परिवेश में, विचार किया है। ये इस घटना को अकबरकालीन मानते हैं—

‘ठीक इसी समय सं० १६४२ (२३ जनवरी, १५५६ ई०) में अपने पुस्तकालय की सीढ़ी से गिर पड़ने से हुमायूँ की अचानक मृत्यु हो गई और अकबर संवत् १६१२ (१४ फरवरी, १५५६ ई०) को गद्दी पर बैठा। उसने पठानों को खदेड़-खदेड़ कर अशकन कर दिया। और थोड़े समय में सक्का दमन कर सूरवंश का नाम मिटा दिया। मिकदरशाह सूर अकबर से प्राणी की भिक्षा पाकर शेष जीवन वगाल में व्यतीत करने लगा और तीन वर्ष बाद मर गया। महमूदशाह आदिल को, जो मुनारगढ़ में था, महमूदखाँ के पुत्र खिजिरखाँ ने अपने पिता के वध का बदला लेने के लिए विहार में सूरजगढ़ में परास्त कर सं० १६१७ में मरवा डाला। इब्राहीमचाँ जो सभल भाग गया था, हेमू से बार-बार पराजित होकर बुन्देलखंड और फिर उड़ीसा भाग गया और कुछ वर्षों बाद मारा गया। हुमायूँ की मृत्यु का समाचार मिलते ही हेमू मुगल-सेना से लड़ने गया और सितम्बर १५५६ ई० में दिल्ली पर अधिकार कर लिया, किन्तु ५ नवम्बर, सन् १५५६ ई० को युद्ध में तीर की ओट में जँचा होने पर वन्दी हुआ और चैरमखाँ द्वारा मारा गया।

उपरोक्त इतिहास-प्रसिद्ध गृहकलह को ही रसखान ने गदर का नाम दिया है। इसी गृहकलह ने दिल्ली को शमशानवत् कर दिया था। यह राज्यलिप्सा-जन्य परस्पर का कलह रसखान के निकट सम्बन्धियों के बीच ही हुआ था। वे स्वयं बादशाह-वश के पठान थे और सम्बन्धियों में मारकाट मची देखकर व्याकुल हो गये थे। संवत् १६०२ में इस कलह का बीजारोपण सलीमशाह द्वारा बड़े भाई का राज्य हड़पने के कारण हुआ और संवत् १६११-१२ में

भयकर रूप से फैल गया, जिसकी लपेट में सूरवश के पठानों का सर्वनाश हो गया था। इस लगातार दो वर्षों के युद्ध के कारण दिल्ली नगर शमशानवत् हो गया था। कहने का तात्पर्य यह है कि रसखान ने संवत् १६१२ की घटना से अस्त होकर अपने प्राण रक्षणार्थ या ससार से एकदम विरक्त होकर दिल्ली छोड़ ब्रजवास किया। इस तथ्य में सन्देह का कोई कारण नहीं है।

इस आधार पर कहा जा सकता है कि रसखान का जन्म संवत् १५६० ई० के आसपास हुआ होगा, क्योंकि दिल्ली छोड़ते समय इसकी अवस्था बीस-बाईस वर्ष की होगी।

रसखान ब्रज में कब आये ? यहाँ पर यह प्रश्न भी विचारणीय है। डॉ० याज्ञिक के अनुसार वे संवत् १६१२ में दिल्ली छोड़कर तुरत ब्रज में आ गये थे, परन्तु तत्कालीन राजनीतिक परिस्थितियों को देखते हुए यह मत शुद्ध प्रतीत नहीं होता। 'मूल गुसाई चरित' के अनुसार रसखान ने संवत् १६१४ से १६३७ तक अर्थात् तीन वर्ष तक यमुना तट पर राम-कथा का श्रवण किया। इसका अभिप्राय यह है कि इस समय तक इनमें कृष्णभक्ति का प्रभाव प्रसृत्युटित नहीं हुआ था। रसखान के दीक्षा-गुरु श्री विठ्ठलनाथ जी का गोलोकवास-काल संवत् १६४२ है। इसका अर्थ यह हुआ कि संवत् १६३७ से १६४२ के अन्तराल में ही रसखान कृष्णभक्ति में दीक्षित हुए और तभी वे ब्रज में जाकर बसे।

जिस मानवती के मान की उपेक्षा करके रसखान ब्रज में आकर बसे, यह मानिनी कौन है ? इस प्रश्न के उत्तर में रसखान से सम्बद्ध सभी साधन मौखिक हैं। कुछ विद्वानों का अनुमान है कि यह मानवती रसखान की कोई प्रेमिका होगी। केवल अनुमान का आधार लेकर इस विषय में इससे अधिक कुछ नहीं कहा जा सकता।

रसखान का जन्म-समय निर्धारित करने के उपरांत अब यह कहना कठिन नहीं कि जब इन्होंने 'प्रेमवाटिका' की रचना की, तब इनकी आयु ८१ वर्ष की थी, अर्थात् वे काफी लम्बी आयु तक जीवित रहे। अतः अनेक विद्वानों की यह मान्यता भी असंगत प्रतीत नहीं होती कि ये लगभग ८५ वर्ष तक जीवित रहे। इस आधार पर इनका देहावसान संवत् १६७५ के लगभग माना जा सकता है।

बाह्य साक्ष्य

रसखान से सम्बन्धित बाह्य साक्ष्य के आधार पर तीन कृतियाँ विशेष रूप से उल्लेख्य हैं—दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता, मूल गुसाईं चरित और भक्तमाल ।

१. दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता—इस कृति में वैष्णव-सम्प्रदाय के २५२ प्रमुख कवियों का परिचय है । यद्यपि यह परिचय पूर्ण तथा इतिहास-सगत नहीं है, फिर भी उसे एकदम निराधार अथवा काल्पनिक नहीं कहा जा सकता । इसमें ऐसे अनेक तथ्य मिलते हैं जिससे सम्बद्ध कवि के विषय में बहुत-कुछ ज्ञातव्य बातों का बोध हो जाता है । इस कृति की २१८ वीं वार्ता रसखान से सम्बन्धित है, जो इस प्रकार है—

‘अब श्री गुसाईं जी के सेवक रसखान पठान दिल्ली में रहते तिनकी वार्ता । सो दिल्ली में एक साहूकार रहतो हतो । सो वा साहूकार को बेटा बहुत सुन्दर हतो । वा छोरा सो रसखान को मन बहुत लग गयो । वाही के पाछे फिर्यो करै और वाको भूँठो खाय और आठ पहर वाही की नौकरी करै । पगार कछु लैवे नहीं, दिन रात वाही में आसक्त रहै । दूसरे बड़ी जात के रसखान की निन्दा बहुत-बहुत करते हते । पर रसखान काहू की सुनते नहीं हते और आठ पहर वा साहूकार के बेटा में चित्त लग्यो रहतो । एक दिना चार वैस्नव मिलकै भगवत-वार्ता करते हते । करते-करते ऐसी बात निकसी जो प्रभु में ऐसी चित्त लगावनो जैसी रसखान को चित्त साहूकार के बेटा में लग्यो है । इतने में रसखान वा रस्ता निकस्ये, विनने यह बात सुनी । तब रसखान ने कही जो तुम मेरी कहा बात करो ही । तब वैस्नव ने जो बात हती सो कही । तब रसखान बोले, प्रभु को सरूप दीखै तो चित्त लगाइये । तब वा वैस्नव न श्रीनाथ जी को चित्र दिखायो । सो देखत ही रसखान ने वो चित्र ले लिया, और मन में ऐसी संकल्प कर्यो जो ऐसी सरूप देखनो जब अन्न खाना और उहाँ सूँ घोडा पै बैँकै एक रात में वृन्दावन आयो और सबरे दिन सब मंदिरन में भेष बदल कै फिर्यो और सब मंदिरन में दरसन किये पर वैसे दरसन नहीं भये । तब गुपालपुर में गयो और भेष बदलकै श्रीनाथ जी के दरसन करने कूँगयो । तब सिधमौरिया ने भगवदिच्छा सूँवाके चिन्ह बड़ी जातवारे के पहिचाने । तब वाकू धक्का मार निकास दियो,

भीतर पैठन न दियो । सो जइके गोविंदकुंड पर रह्यौ । तीन दिने ताईं पर्यौ रह्यौ । खायवे पीवे की कछु अपेक्षा राखी नाही । तब श्रीनाथ जी ने जानी यह जीव दैवी है और शुद्ध है, और सात्विक है और मेरो भक्त है, या कूँ दरसन देऊँ तो ठीक है । तब श्रीनाथ जी ने दरसन दिए । तब वो उठिकै श्रीनाथ जी कूँ पकरिबे दौर्यो । सो श्रीनाथ जी भाज गये । फेर श्रीनाथ जी ने गुसाईं जी सूँ कही, ये जीव दैवी है और म्लेच्छ योनि कूँ पायो है, जासूँ याके ऊपर कृपा कगो, या कूँ सरन लेओ । जहाँ ताईं तुम्हारो सम्बंध जीव कूँ नाही हावै तहाँ ताईं मै जीव कूँ स्पर्श नाही करत हूँ और वाके हाथ को खाऊँ नाही, जासूँ अब याको अंगीकार करो । तब श्री गुसाईं जी श्रीनाथ जी के वचन सुनिकै गोविंद कुंड पै पधारे और वाकूँ नाम सुनायो और साक्षात् श्रीनाथ जी के दरसन श्री गुसाईं जी के सरूप मे वाकूँ भए । तब श्री गुसाईं जी विनकूँ संग लै पधारे और उत्थापन के दरसन कराए । महाप्रसाद लिवायो । तब रसखान जी श्रीनाथ जी के सरूप मे आमक्त भए । तब रसखान ने अनेक कीर्तन और कविता और दोहा बहुत प्रकार के बनाये । जैसे-जैसे लीला के दरसन विनकूँ भए, वैसे ही वरनन किये । सो वे रसखान श्री गुसाईं जी के ऐसे कृपापात्र हते जिनकूँ चित्र के दरसन करत मात्र ही संसार सूँ चित्त विच के श्रीनाथ जी मे लग्यौ । इनके भाग्य की कहा बडाई करनी । वार्ता सम्पूर्ण ।'

२. मूल गुसाईं चरित — इस कृति के लेखक बाबा बेणीमाधवदास है । इसमे बताया गया है कि जब 'रामचरितमानस' की रचना पूर्ण हो गई तो सबसे पहले उसे मिथिला के रूपारण्य स्वामी ने अयोध्या मे सुना । तत्पश्चात् स्वामी नंदलाल के शिष्य दयालदास (अथवा दलालदास) ने 'मानस' की प्रतिलिपि करके उसे यमुना-तट पर अपने गुरु नंदलाल और रसखान को सुनाया—

‘मिथिला के सुसंत सुजान हते । मिथिलाधिप भाव पगेर हते ॥

सुचि काम रूपारुन स्वामी जुतो । तिहि औसर औध मे आयो हुतो ॥

प्रथमै यह मानस तेई सुने । तिनही अधिकारि गुसाईं गुने ॥

स्वामी नंद (सु) लाल को सिप्य पुनी । तिसु नाम दलाल सुदास गुनी ॥

लिखि के सोइ पोथी स्वठाम गयो । गुरु के ढिग जाइ सुनाम दयो ॥

जमुना-तट पै त्रय वत्सर लौ । रसखानहि जाइ सुनावत भौ ॥

इस उद्धरण से यह ज्ञात होता है कि रसखान ने तीन वर्ष तक, अर्थात् सवत् १६३४ से १६३७ तक, यमुना किनारे 'रामचरितमानस' की कथा का श्रवण किया था। चाहे 'मूल गुसाई' चरित' प्रामाणिक हो, अथवा अप्रामाणिक, पर यह कहना अनुपयुक्त नहीं कि इससे रसखान की धर्म के प्रति उदारता का पता चलता है। यद्यपि ये मूलतः कृष्ण-भक्त है, पर आम धार्मिक सम्प्रदायों के प्रति, तुलसी की भाँति, इनकी पूज्य दृष्टि है। तभी तो ये जिस श्रद्धा से कृष्ण की स्तुति करते हैं, उसी श्रद्धा से शिव और गंगा की महिमा का भी गुणगान करते हैं।

३. भक्तमाल—वार्ता-साहित्य में भक्तमाल का जितना संवर्द्धन हुआ है इतना और किसी कृति का नहीं हुआ। यही कारण है कि समय-समय पर अनेक कवियों ने भक्तमाल की रचना की है, जैसे-भक्तमाल प्रसंग, भक्तमाल प्रदीपन, भक्तमाल उत्तरार्द्ध, नवभक्तमाल आदि। भक्तमाल के सर्वप्रथम लेखक नाभादास माने जाते हैं। नाभादासकृत 'भक्तमाल' में सवत् १५४३ तक के कृष्ण-भक्तों का ही उल्लेख है, पर रसखान के विषय में कुछ नहीं कहा गया है। इसका कारण यह हो सकता है कि जब तक रसखान राजनीतिक कारणों से गुप्त जीवन यापन कर रहे होंगे और इसीलिए कृष्ण-भक्तों से इन्हे इतनी स्मृति प्राप्त न हुई होगी कि ये 'भक्तमाल' में स्थान पा सकें। 'भक्तमाल' पर अनेक टीकाएँ भी लिखी गई हैं। वस्तुतः ये टीकाएँ न होकर ग्रन्थ का संवर्द्धन ही कही जा सकती हैं, क्योंकि जैसे-जैसे कृष्ण-भक्तों की संख्या बढ़ती गई, वैसे ही टीका के नाम पर उस कृति में कृष्ण-भक्तों का समावेश होता गया। सवत् १५४४ में प्रियादास जी के पौत्र वैष्णवदास ने 'भक्तमाल-प्रसंग' नामक टीका के द्वारा इस कृति का संवर्द्धन किया और तब उन्होंने रसखान को भी कृष्ण-भक्तों में सम्मिलित कर लिया। 'भक्तमाल-प्रसंग' में रसखान-विषयक कमाण इस प्रकार है—

'पातस्याह न देखी तुरक कठी पैहरन लगे। तब रसखान बुलाए। देखे तो सौ कंठी नार में परी है। तब पूछी रसखान, कठी क्यों राखे है? तब ये बोले—हजरत! काठ की नाव पै पत्थर तिरै याते मैं राखी है। ये काठ है, मैं पत्थर हूँ। तब कही—भले राखो, परन्तु इतक तो हिन्दू हूँ नाहीं राखे। तब रसखान बोले—वे हलके हैं। मैं भारी पत्थर हूँ।'

यद्यपि इस कथा का कोई ऐतिहासिक प्रमाण नहीं मिलता, परन्तु यह जरूर मिलता है कि मुगल राजाओं ने कंठी-माला धारण पर रोक लगाई हुई थी। यह रोक गोस्वामी गोकुलनाथ जी के प्रयास से जहाँगीर ने समाप्त की। इस विषय पर तत्कालीन अनेक कवियों की उक्तियाँ मिलती हैं।

१. 'जयति विठ्ठल मुवन, प्रगट बल्लभ बली,
प्रवल पन करि तिलक माल राखी।'

—हरिराम जी

२ 'माला तिलक न तजी कबहू, परी जदपि पुकार।'

—कल्याणदास

३. 'विठ्ठलेस के सपूत गोकुलेस के हुलास,
माल राखि सौ कलेस काहु मे न राख्यो है।'

—प्रसिद्धि कवि

प्रसिद्धि कवि ने तो इस विषय पर एक प्रबधकाव्य की ही रचना कर डाली थी।

इन उक्तियों से यह निष्कर्ष निकालना कठिन नहीं कि तत्कालीन मुगल उस मुगल को हीन दृष्टि से देखते थे जो हिन्दुओं की भाँति माला-तिलक धारण करता था। यह भी संभव है, हिन्दू भी सार्वजनिक स्थानों पर तिलक और माला धारण करके न जा सकते हैं। इसीलिए तो गोस्वामी गोकुलनाथ जी को उक्त आज्ञा को हटवाने के लिए काफी प्रयत्न करना पड़ा। इस पृष्ठभूमि में यह अनुमान लगाना भी असंगत नहीं है कि कंठी धारण करने के कारण रसखान को भी अनेक यातनाओं का सामना करना पड़ा होगा। वे यातनायें चाहे राजा की ओर से हो, या कट्टर पथी मुसलमानों की ओर से।

'भक्तमाल-प्रदीपन' में रसखान से सम्बद्ध जहाँ अनेक अन्य कथाओं का उल्लेख है, वहाँ यह कंठी वाली वार्ता भी पाई जाती है। 'भक्तमाल प्रदीपन' की कथा इस प्रकार है—

'रसखान जी परम भक्त भगवत के हुए। पहिले मुसलमान थे। बगरज तवाफ़ (परिक्रमा की इच्छासे) फावः (मक्का-स्थित एक मंदिर जिसे मुसलमान ईश्वर का कर मानते हैं।) जो विदरावन में पहुँचे तो पहले जन्मों के

सवावो (पुण्यकर्मों का फल) ने जहूर (प्रत्यक्षीकरण) किया। यानी (अर्थात्) ब्रिज चंद महाराज ने उस सुरूप सोभायमान ब्रिज सुंदर से कि मोर मुकुट सर पर, वनमाला पहने हुए, जेवरात (आभूषण) हरेक उजू (प्रत्येक अंग) में विराजमान, फूल जा वजा (जहाँ तहाँ) गुँथे हुए, लिबास (पहिचान) जक बर्क (तडक भडक वाला) का शोभित, एक हाथ में मुरली और दूसरे हाथ में घड़ी, गो चराते हैं, दरसन हुए। बमूजिव (अनुसार) देखने इस रूप माधुरी और दिलरुबा (चितचोर, प्रेमपात्र) के कुछ हालत (दशा) और ही हो गई। इस रूप में महब (तल्लीन) होकर बेहोश (मूर्च्छित) जमीन पर गिर पड़े। मुरशिद (धर्मगुरु, पीर) हमराह (रुहपंथी) था। गश (मूर्च्छा) समझकर दरपए इलाज (चिकित्सा का इच्छुक) हुआ और पुकारा कि आँखें खोलो। रसखान जी ने कहा कि उनको उसी वक्त (समय) सब उलूम (विद्याएँ) व सतालिव (अर्थ समूह, व्याख्याएँ) जाहिर (व्यक्त) व वातिन (अन्तर्गत, अन्तरंग) व शायरी से वह (काव्यकला-सम्पन्न) हो गया था। कवित्त में उस मनोहर मूर्ति का, जो देखी थी, मान (वर्णन) करके आखिर (अंत में) कहा कि आँखें क्या खोलू, वह मूर्ति दिल में बस गई है। मुरशिद (पीर) ने फिर कहा कि कावे (मक्का-स्थित एक मंदिर) को चलो। रसखान जी ने जवाब दिया कि कैसा काव और कैसा किल (मक्का का वह स्थान जहाँ काला पत्थर स्थापित है और जिसकी ओर मुँह कर नमाज पढ़ी जाती है) जो है सो सब जहाँ मौजूद (उपलब्ध) है। अब मैं कहाँ जाता हूँ ? ब्रिज का हो चुका। और एक कवित्त में बयान (वर्णन) किया कि अगर, आदमी जिस्म (शरीर) मुझको मिलेगा तो ब्रिज के ग्वाले और लोगो में रहूँगा और अगर चरिन्द (पशु) हुआ तो नद बाबा को गौ बछड़ो में और अगर सग (पत्थर) हुआ तो गिराज (गिरिराज गोवर्धन) का और अगर परंद हुआ तो ब्रिज के दरखतो (वृक्षों) का। मुरशिद (पीर) को इन कलामात (वचनों) से ताजुब्ब (आश्चर्य) हुआ और चाहा कि रथ पर डालकर जबदस्ती (बल पूर्वक) ले जाऊँ। रसखान जी भागकर वन में जा छिपे और बिरन्दावन में वास करके हजारहः (सहस्रों) कवित्त बिरन्दावन के, व सुभाव (स्वभाव, गुण) व शोभा प्रिया-प्रियतम के तसनीफ (प्रस्तक लिखकर) भेंट किए। और लिबास बैस्नवी धारन किया। माला

कसीर (अधिक, प्रचुर) पहिना करते थे। किसी ने पूछा कि दो माला ही काफी (पर्याप्त) है, इस कदर (अत्यधिक) कसरत (बाहुल्य, प्रचुरता) की क्या जरूरत (आवश्यकता) है ? जवाब दिया कि माला असखास मिस्ले संग को (पत्थर जैसे व्यक्तियों को) ससार समंदर (सागर) से पार उतार देती है। सो जो शरूस (व्यक्ति) मिस्ल (समन) छोटे पत्थर के है, उसको तो एक-दो माला काफी (पर्याप्त) है, और मैं मिस्ल संग कला (बड़े पत्थर के समान) हूँ, मुझको बहुत माला रखना वाजिब (उचित) है।

इस कथा में कोई ऐतिहासिक तथ्य नहीं, केवल रसखान से सम्बद्ध अनुश्रुतियों को दोहरा दिया गया है और वह भी श्रद्धा के साथ।

भारतेन्दु जी ने अपने भक्तमाल उत्तरार्द्ध में रसखान के साथ अन्य मुसलमान हिन्दी कवियों की ओर दृष्टिपात किया है और उनकी हिन्दी-सेवा से भाव-विभोर होकर कह उठे हैं—

‘इन मुसलमान हरिजनन पै, कोटिने हिन्दू बारिए ।’

राधाचरण गोस्वामी ने अपने ‘नवभक्तमाल’ में रसखान से सम्बन्धित एक छप्पय लिखा है, जो इस प्रकार है—

‘दिल्ली नगर निवास, बादसा बश बिभाकर ।

चित्र देखि मन हरो, भरो मन प्रेम-सुधाकर ।

श्री गोवरधन आइ, जबै, दरसन नहि पाए ।

टेढे मेढे बचन रचन निरभय ह्वै गाए ।

तव आप आइ सु मनाइ, करि सुसूषा मेहमान की ।

कवि कौन मितार्ई कहि सकै, श्रीनाथ साथ रसखान की ॥’

गोस्वामी जी का यह विवरण नाभादासकृत ‘भक्तमाल’ पर ही आधारित है।

उपर्युक्त वार्ता-साहित्य से रसखान के किसी ऐतिहासिक विवरण पर ऐतिहासिक दृष्टि से प्रकाश नहीं पड़ता, वरन् इनमें लेखकों की कृष्णभक्त-कवि रसखान के प्रति श्रद्धाजलियाँ भी उपलब्ध होती हैं। इसका तात्पर्य यह नहीं है कि इनमें वर्णित तथ्य अथवा घटनाएँ निरी काल्पनिक हैं। इनसे रसखान के विषय में जो निष्कर्ष निकलता है, वह यही है कि इनका प्रारंभिक

प्रेम ठोस भौतिक था, किन्तु बाद में वह ईश्वर-प्रेम में परिणत हो गया और कृष्ण-भक्त कवियों में रसखान का विशिष्ट स्थान है ।

जन्म-स्थान

रसखान के जन्म-स्थान के विषय में भी दो मत मिलते हैं । 'शिवसिंह-सरोज' में इन्हे जिला हरदोई के पिहानी जन्म-स्थान का बताया गया है और इन्होंने 'प्रेम-वाटिका' में अपना जन्म-स्थान दिल्ली बताया है—

'देखि गदर हित साहिबी, दिल्ली-नगर मसान ।
छिनहि बादसा वस की, ठसक छेदि रसखान ॥'

अब यह देखना है कि इनमें कौन सा मत सगत है ।

डॉ० याज्ञिक शिवसिंह-सरोजकार के मत को असगत मानते हुए लिखते हैं कि पिहानी की वस्ती को हुमायूँ-अकबर ने सवत् १६१२ के बाद वसाया था । इस कारण रसखान के जन्म के समय पिहानी का कोई अस्तित्व ही नहीं था । हाँ, रसखान का शिष्य कादिरवल्श वहाँ रहा हो, इसकी संभावना हो सकती है और यह भी संभावना हो सकती है कि भूत से शिष्य के निवास-स्थान को ही गुरु का जन्म-स्थान समझ लिया हो ।

जहाँ तक दिल्ली का सम्बन्ध है, रसखान ने दिल्ली को अपना निवास-स्थान अवश्य बताया है, पर उसे जन्म-स्थान नहीं बताया । अतः निर्विवाद रूप से यह भी तो नहीं कहा जा सकता कि दिल्ली ही इनका जन्म-स्थान है, किन्तु रसखान के जीवन पर दृष्टिपात करने से यह ज्ञात होता है कि इनका भक्त-पूर्व जीवन दिल्ली में ही बीता । इसलिए यह संभावना की जा सकती है कि इनका जन्म भी दिल्ली में ही हुआ होगा ।

निष्कर्ष

अब तक के विवेचन का निष्कर्ष यह है कि रसखान का जन्म सवत् १५६० के लगभग दिल्ली में हुआ । इनका सम्बन्ध तत्कालीन शाही वंश में था, किन्तु जब शाही वंश का पतन हुआ और दिल्ली उजड़ गई तो ये सवत् १५१२ के लगभग दिल्ली को छोड़कर ब्रज में आ गये और वहाँ कृष्ण-भक्ति में तल्लीन रहने लगे ।

कहते हैं, कि प्रारम्भ में इनका प्रेम ठोस भौतिक था, अर्थात् ये एक साहू-कार के लड़के पर प्रसक्त थे, पर संयोग में इनके मन को ठोस लगी और इनका

रसखान की रचनाएँ

रसखान, अन्य कृष्णभक्त-कवियों की भाँति, मूलतः भक्त थे। कविता इनका कर्म नहीं, वरन् भावाभिव्यक्ति का एक साधन मात्र था। इन्हें जब भी भावावेण हुआ, वह सवैया या कवित्त के माध्यम से फूट पड़ा। इनके छंदों की संख्या कितनी है ? इस प्रश्न का निर्विवाद उत्तर देना असम्भव है। तुलसीदास जी के 'भक्तमाल प्रदीपन' के अनुसार इन्होंने सहस्रों कवित्तों की रचना की।^१ पर अब रसखान के नाम से प्राप्त होने वाले असदिग्ध और संदिग्ध छंदों को मिलाकर कुल ३३४ छंद प्राप्त हुए हैं। प्रस्तुत सकलन में इन छंदों को पाँच भागों में विभाजित किया गया है—

१. सुजान-रसखान	२५५ छंद
२. प्रेम-वाटिका	५३ छंद
३. दान-लीला	११ छंद
४. स्फुट-छंद	५ छंद
५. सदिग्ध-छंद	१० छंद

इन भागों का क्रमशः परिचय निम्नलिखित है।

सुजान-रसखान

सुजान-रसखान में सकलित छंदों का विषय कृष्ण-भक्ति के विविध पहलुओं से सम्बद्ध है। इन छंदों को निम्नलिखित शीर्षकों के अन्तर्गत विभाजित किया गया है—

१ भक्ति-भावना, २. कृष्ण का अलौकिकत्व, ३. अनन्यभाव, ४ मिलन

१. रसखान जी भागकर वन में जा छिपे और विरन्दावन में वास करके हजारह, (सहस्रों) कवित्त विरन्दावन के, व सुभाव (स्वभाव, गुण) व शोभा प्रिया-प्रियतम के तसनीफ (पुस्तक लिखकर) भेंट किये।

५ बाललीला, ६. रूप-माधुरी, ७. प्रेम-लीला, ८. वंक-विलोचन, ९. मुसकान-माधुरी, १०. कृष्ण-सौन्दर्य, ११. रूप-प्रभाव, १२. कुंज-लीला, १३. नटखट कृष्ण, १४. मुरली-प्रभाव, १५. कालिय-दमन, १६. चीर-हरण, १७. प्रेमासक्ति, १८. प्रेम-बन्धन, १९. प्रेम-वेदना, २०. रासलीला, २१. फागलीला, २२. राधा-सौन्दर्य, २३. मानवती राधा, २४. सखी-शिक्षा, २५. संयोग-वर्णन, २६. वियोग-वर्णन, २७. सपत्न-भाव, २८. कुवल्यापीड-भाव, २९. उद्धव-उपदेश, ३०. ब्रज-प्रेम, ३१. गंगा-महिमा, ३२. शिव-महिमा ।

१. भक्ति-भावना—यो तो रसखान के सभी छंद भक्ति-भावना से ओतप्रोत है, किन्तु इस शीर्षक के अन्तर्गत रखे गये छंदों की भक्ति-भावना में एक विशेषता यह है कि इसमें कवि प्रत्यक्ष रूप से भक्त के रूप में परिलक्षित होता है । वह कृष्ण तथा उनकी जन्मभूमि ब्रज के प्रति अनन्य प्रेम प्रदर्शित करता हुआ कहता है कि यदि मुझे मनुष्य की योनि मिले तो मैं वही मनुष्य बन सकूँ जो ब्रज के गोकुल गाँव में निवास कर सकूँ, यदि पशु योनि मिले तो नन्द की गाय बनूँ, यदि पत्थर का जन्म मिले तो गोवर्धन पर्वत की शिला बनूँ और यदि पक्षी की योनि मिले तो यमुना-तट पर उगे हुए कदम्ब वृक्ष की डालों पर बैठकर सानन्द चहचहाता रहूँ । रसखान अपने शारीरिक अंगों की सार्थकता भी इसी में मानते हैं कि वे ईश्वरोन्मुख हों । इसीलिए ये रसना की सार्थकता कृष्ण-जाप में, हाथों की कुंज-कुटीरों की सफाई करने में ही मानते हैं । अपने आराध्य देव कृष्ण की जन्मभूमि ब्रज से इन्हें इतना प्रेम है कि उसके एक-एक कण पर ये समस्त सिद्धियाँ और समृद्धियाँ को न्यौछावर करने की क्षमता रखते हैं । भक्त को अपने भगवान पर दृढ़ एवं अटल विश्वास होता है । उसकी सुरक्षा प्राप्त करके वह स्वयं को हर प्रकार के सकटों से मुक्त मानता है । इसीलिए तो अपने माखन चाखनहारे के संरक्षण में ये किसी चुगल और लवार की चिन्ता नहीं करते । रसखान अपने प्रिय के रूप में उसी प्रकार एकाकार हैं जिस प्रकार गोपियाँ थीं । उसके प्राण सदैव राधा और कृष्ण के सरस एवं नूतन प्रेम से संपृक्त हैं ।

२. कृष्ण का अलौकिकत्व—कृष्णभक्त-कवियों ने कृष्ण को साकार मानकर उसके माधुर्य रूप की भक्ति की है, पर वे अपनी कविताओं में यथावसर

उसके अलौकिकत्व का प्रदर्शन भी करते रहे हैं। कृष्णकाव्य की यह प्रमुख विशेषता है। सूरदास ने विस्तारपूर्वक कृष्ण के अलौकिकत्व का वर्णन किया है। उदाहरण के लिए यह पद प्रस्तुत है—

‘चरन गहे अगुठा मुख मेलन ।

नद-घरनि गावति, हलरावति, पलना परिहरि मेलन ।

जे चरनारविंद श्री-भूपन, उर तैं नैकु न टारति ।

देखौ घौ का रम भरननि को, नुर-मुनि करन विषाद ।

सो रम है मोहूँ को दुरलभ, तातैं लेत नवाद ।

उछरत सिन्धु, धरावर कोपत, कमठ पीठ अकुलाइ ।

सेष सहस्रफन डोलन लागे, हरि पीवत जब पाइ ।

बढ़्यौ वृच्छ बट नुर अकुलाने, गगन भयो उत्पात ।

महा प्रलय के मेघ उठे करि, जहाँ-तहाँ आघात ।

करुना करी, छाँटि पग दोन्ही, जानि नुरन मन सस ।

सूरदास प्रभु अमुर-निकन्दन, टुटति तैं उर गस ॥’

स्वच्छन्द-काव्यधारा के कवि भी इस प्रवृत्ति में उन्मुक्त नहीं हो सके हैं। घनानन्द कृष्ण के अलौकिकत्व का स्पष्ट नकेत देते हुए लिखते हैं—

‘तोहि सब गावै एक तोही को बतावै वेद,

पावै फन ध्यावै जैसी भावनानि भरि रे ।

जल-थन व्यापी मदा अतरजामी उदार,

जगत में नाव जान राय रह्यो परि रे ।

एते गुन लाय हाय छाये घनआनद यौ,

कैधो मोहि दीस्यो निरगुन ही उघरि रे ।

जरी विरहागिनि में करौ ही पुकार कासो,

दई गयी तू हूँ निरदर्ई ओर डरि रे ॥’

रसखान ने भी इस प्रवृत्ति का पालन किया है। कृष्ण के अलौकिकत्व का प्रतिपादन करने वाले इनके आठ छंद उपलब्ध होते हैं जिनमें बताया गया है कि जिस कृष्ण का जप शकर जैसे महादेव करते हैं, जिसका ध्यान करके ब्रह्मा अपने धर्म में वृद्धि करते हैं, जिस पर देव, किन्नर और पृथ्वी पर रहने वाली स्त्रियाँ अपने प्राणों को न्यीछावर करके सजीवता प्राप्त

करती है, जिसके गुणों का गान शेषनाग, गणेश, शिव, सूर्य, इन्द्र आदि निरन्तर करते रहते हैं, वेद जिसे अनादि, अनंत, अखंड, अछेद्य, अभेद्य आदि विशेषणों से विभूषित करते हैं, योगी, यति, तपस्वी जिसके लिए निरन्तर समाधि लगाये रहते हैं, उसी कृष्ण को अहीर की छोकरियाँ थोड़ी-सी छाछ के लिए नचाती हैं। इस प्रकार रसखान ने पूर्ण स्पष्टता के साथ कृष्ण के अलौकिकत्व का प्रतिपादन किया है।

३. अनन्य भाव—भक्त का अपने आराध्यदेव के प्रति अनन्य भाव होता है, अर्थात् उसके लिए उसका आराध्य ही सर्वोपरि तथा सर्वश्रेष्ठ है। उसकी इच्छा केवल उसे ही प्राप्त करने की होती है। उसके अतिरिक्त अन्य सारी वस्तुएँ उसकी दृष्टि में नगण्य हैं, भले ही वे कितने ही महत्त्व की क्यों न हों। सूरदास ने भी कृष्ण के प्रति अपने अनन्य भाव की भक्ति को व्यक्त करते हुए कहा है कि कृष्ण को छोड़कर अन्य देवों की भक्ति करना कामधेनु को छोड़कर छेरी को दुहना है, अथवा परम गंगा को छोड़कर जलप्राप्ति के लिए अन्यत्र कूप खोदना है। रसखान ने भी इसी अनन्य भाव को व्यक्त करते हुए कहा है कि चाहे कोई शेष, सुरेश, दिनेश, गणेश, प्रजेश, महेश, भवानी की आराधना करके अपने मनोरथों को पूर्ण कर ले, चाहे कोई लक्ष्मी की भक्ति करके बहुत सारा धन एकत्र कर ले, चाहे तीनों लोक रहे या नष्ट हो जाये, पर इनका एकमात्र आधार कृष्ण है और कृष्ण को छोड़कर ये ससार के और किसी पदार्थ की अभिलाषा नहीं करते। इस अनन्य भाव के पीछे कृष्ण की भक्त-वत्सलता मुखरित है। जो कृष्ण द्रौपदी, गणिका, गृद्ध (जटायु), अजामिल, अहिल्याबाई, प्रह्लाद आदि भक्तों का उद्धार करने वाले हैं, उनकी शरण में पहुँचकर आवागमन के दुखों से छूट जाना स्वाभाविक ही है। कृष्ण अपने भक्तों का निरन्तर ध्यान रखते हैं और उनकी रक्षा के लिए सदैव सन्नद्ध रहते हैं, अतः किसी भी व्यक्ति के लिए ऐसे कृष्ण ही सच्ची सम्पत्ति है, ससार का ऐश्वर्य तो दुखद और नश्वर है। कोई भी मनुष्य, चाहे वह कितना ही वैभव-सम्पन्न क्यों न हो, पर यदि वह कृष्ण-भक्ति से विमुख है तो उसकी सम्पूर्ण सम्पन्नता व्यर्थ और निस्सार है।

४. मिलन—इस शीर्षक से सम्बन्धित छंदों के अन्तर्गत रसखान ने राधा-

कृष्ण के मिलन का वर्णन किया है। वैष्णव भक्ति-वृद्धि के अनुसार कृष्ण भगवान हैं और राधा उनकी शक्ति। बिना शक्ति के भगवान के ईश्वरत्व की सम्पूर्णता कुंठित रहती है और कृष्ण को सम्पूर्ण ईश्वर बनाने के लिए उनका राधा से मिलन अनिवार्य है। सभी कृष्णभक्त-कवियों ने राधा-कृष्ण-मिलन का वर्णन किया है। रसखान ने भी तीन सवैया में इस परम्परा का निर्वह किया है।

५. बाललीला—हिन्दी में प्रचलित कृष्ण काव्यधारा के अन्तर्गत कृष्ण के माधुर्य रूप का ही मुख्यतया वर्णन किया गया है। अतः इनके काव्यों में बाललीला की प्रमुखता है। सूरदास तो इस क्षेत्र के सम्राट् ही माने जाते हैं। रसखान ने भी कृष्ण की बाललीला से सम्बद्ध कुछ छंद लिखे हैं, पर ये सख्या में बहुत ही कम हैं। प्रस्तुत संकलन में इस विषय के केवल चार छंद हैं, और अभी तक एतद्विषयक ये ही छंद प्राप्त भो हुए हैं। पहले छंद में कृष्ण की छठी के उत्सव का वर्णन है। दूसरे छंद में कृष्ण की उस अवस्था का वर्णन है, जब कृष्ण कुछ बड़े हो जाते हैं और पैरों चलने लगते हैं। यशोदा जी उनके साथ खिलवाड़ करती हैं और 'ता' शब्द कहकर गोश्रो के पीछे छिप जाती हैं। कृष्ण उन्हें ढूँढते हैं, पर जब यशोदा जी उन्हें नहीं मिलती तो वे उठकर पृथ्वी पर लेट जाते हैं। तब यशोदा जी उन्हें गोद में उठा लेती हैं। तीसरे छंद में कृष्ण की सज्जा का वर्णन है। यशोदा जी उनके शरीर में तेल लगाती हैं, आँखों में अंजन लगाती हैं और साथ ही डिठौना भी लगा देती हैं ताकि उसके लाडले पुत्र को किसी की नजर न लग जाये। चौथे सवैया में कृष्ण की उस अवस्था का वर्णन है जब वे काफी बड़े होकर खेलने के लिए घर से बाहर निकलने लगते हैं। उनका शरीर धूल से सना हुआ है। वे खेलते और खाते हुए अपने प्राण में घूम रहे हैं कि अचानक एक कौवा आता है और उनके हाथ से माखन तथा रोटी छीनकर ले जाता है।

६. रूप-माधुरी—'रूप-माधुरी' शीर्षक के अन्तर्गत उन छंदों का वर्णन है जिनमें कृष्ण के सौन्दर्य का वर्णन किया गया है। इस वर्णन में कोई विशेषता अथवा मौलिकता नहीं है, वरन् जैसा वर्णन अन्य कृष्ण-भक्त-कवियों ने किया है, वैसा ही रसखान ने भी किया है। हृदय पर सुशोभित मोतियों की माला, लटकती हुई घुँघराली अलंके, सिर पर मुकुट, होठों पर मुरली, मस्तक

पर गोरज, वाणी मे माधुर्य आदि । कृष्ण की शोभा को बढ़ाने वाली प्रायः उन्हीं क्रियाओं का वर्णन किया गया है, जो कृष्ण-काव्य मे परम्परागत रूप से वर्णित होती आई है । कुंजो से निकलना, अन्य गोपियों के साथ छेड़खानी करना, कदम्ब वृक्ष पर चढ़कर बाँसुरी बजाना, कटाक्ष करना, मुस्कराना, आदि क्रियाएँ कृष्ण-काव्य की चिर-परिचित क्रियाएँ है । रसखान का यह वर्णन सश्लिष्ट है, अर्थात् इन्होंने कृष्ण-सौन्दर्य का वर्णन प्रत्येक अग अथवा क्रिया को अलग-अलग लेकर नहीं किया है, वरन् सबका एक साथ वर्णन किया है ।

७. प्रेम-लीला—प्रेम-लीला के अन्तर्गत वस्तुतः कृष्ण के सौन्दर्य के द्वारा आकृष्ट गोपियों की प्रेमानुभूति का वर्णन है । प्रत्येक गोपी अपनी सखी से उसी सौन्दर्यजन्य प्रभाव का वर्णन करती है । यदि कोई गोपी अधीर होकर कदम्ब और करील के वृक्षों से पूछती है कि तुम्हारे साथ रहने वाला कृष्ण कहाँ गया तो एक गोपी अपनी सखी से अपनी प्रेम-दशा का वर्णन करती हुई कहती है कि कृष्ण की भौहे भरी हुई थी, पलके सुन्दर थीं, अधर लाल थे । उसके कानों मे कु डल थे जो हिल-डुलकर कृष्ण के कपोलों की शोभा को द्विगुणित कर रहे थे । वह मुस्कराता हुआ कुंजो मे से निकला और उसे देखते ही गोपियाँ मूर्च्छित हो गईं अर्थात् अपनी सुधि-बुधि भूल गईं । दही का मटका सिर से गिरकर फूट गया । कही अवसर पाकर कृष्ण गोपियों को फेर लेते है । उनका मटके फोड देते है और अपनी मधुर वाणी तथा आकर्षक क्रियाओं से उन्हें मुग्ध करके अपने वश मे कर लेते है । कृष्ण के इस अपार सौन्दर्य का प्रभाव गोपियों पर इतना अधिक पडता है कि वे उसे देखकर लोक और कुल की मर्यादा को तिलाजलि दे देती है और जब भी कृष्ण को देखती है, वे उसकी ओर इस प्रकार दौडती है जैसे नदी निर्बाध गति से सागर की ओर भागती है । उसके रूप-सौन्दर्य का ध्यान आने से ही वे स्वयं को भूल जाती है । सास के त्रासो की, ननद के तीक्ष्ण व्यंग्यों की उन्हें कोई चिन्ता नहीं रह जाती । कहने का भाव यह है कि वे पूर्णतया कृष्ण के हाथो बिक जाती है ।

८. बंक-विलोचन—प्रेम-व्यापार मे वक्र दृष्टि का महत्त्वपूर्ण स्थान है, इसीलिए साहित्य मे इस प्रकार की दृष्टि का और इसके-द्वारा उत्पन्न प्रभाव

का प्रेम-प्रसार में वर्णन किया गया है। गोपियों कृष्ण के सौन्दर्य में ही नहीं, बल्कि उनकी वक्र दृष्टि भी उन्हें आकुल किये रहती है। जिस गोपी ने भी कृष्ण की दृष्टि को देख लिया, वह फिर कृष्ण से पृथक् न हो सकी, भले ही उसे नोक-नाज को निलाजलि देनी पड़ी, साम और ननद के आसों को नष्टना पड़ा। कृष्ण की दृष्टि में ही कुछ ऐसा जादू है कि वह एक बार भी जिस गोपी की ओर देख लेता है, उसी के मन को चुरा लेता है।

६. मुसकान माधुरी—प्रेम के व्यापार में जितना महत्त्व वक्र-विलोचन का है, उतना ही मुसकान के माधुर्य का भी है। गोपियों को वशीभूत करने वाले नहीं, कृष्ण के अन्ध गुण हैं, वहाँ मुसकान का माधुर्य भी है। जिसने भी इस मुसकान को देख लिया, वह फिर उसके दिल में ऐसी गड़ो कि निकाले से नहीं निकली। उन मुसकान का कोई मूल्य भी तो नहीं, मंसार के समस्त रत्नागार इन पर न्योछावर किये जा सकने हैं। स्वरिक में जाकर कृष्ण की मुसकान देखने वाली गोपी को जो दशा होती है, उसका वर्णन करती हुई एक गोपी अपनी सखी से कहती है कि हे सखि! अभी-अभी वह गौशाला में गाय का दूध निलाजने के लिए गई थी, लेकिन वह अपने हाथ के दूध के पात्र को फेंक-कर धागल-भो होकर वापस आ गई है। उसकी दशा को देखकर कोई गोपी तो यह कहती है कि उसे किनी ने छन लिया है, कोई कहती है कि वह स्तब्ध हो गई है, कोई कहती है कि वह डर गई है, कोई कहती है कि वह अंधी हो गई है। उनकी चिन्ता करने के लिए साम अनेक प्रकार के अंतो को करने का व्यवस्था करती है, ननद दौड़-दौड़कर मयानो को बोलकर लाती है। मारी मणिया उसकी मूर्च्छा को पहचानकर हंसती है और कहती है कि इसने आनंद-मागर कृष्ण को वही मुस्कगहट को देख लिया है और यह उसी का प्रभाव है। एक अन्य गोपी अपनी सखी से कृष्ण की मुसकान के प्रभाव का वर्णन इन शब्दों में करती है कि हे सखि! वह कामदेव के समान मधुर वाणी बोलती है। उसके शरीर पर पीला वस्त्र सुजोभित है। उसके शरीर की कानि इन अंगों चमकती और चमकती है, मानो काले बादलों में बिजली चमक रही हो। उसने मुन या सौन्दर्य और मुसकान कुलागनाओं की लज्जा को नष्ट करने में इतना समर्थ है।

इस प्रकार गिने-चुने छंदों में रसखान ने कृष्ण की मुमकान का अत्यन्त प्रभावशाली वर्णन किया है।

१० कृष्ण-सौन्दर्य—प्रत्येक कृष्णभक्त-कवि ने कृष्ण के सौन्दर्य का वर्णन किया है, पर यह वर्णन इतना अधिक परम्पराबद्ध हो गया है और सूर ने इसका इतने अधिक विस्तार से वर्णन कर दिया है कि आगे के कवियों को नवीनता के लिए गुंजायश ही नहीं रह गई। कृष्ण-सौन्दर्य के उपकरण प्रायः रूढिबद्ध हो गये हैं—मोर-मुकुट, वैजन्तीमाला, कुंडल, पीताम्बर, वक्रदृष्टि, मधुर मुस्कान आदि। रसखान भी इस परम्परा से बाहर नहीं निकल पाये हैं। उन्होंने कृष्ण-सौन्दर्य का विवरण इस प्रकार प्रस्तुत किया है। कृष्ण के सिर पर मोरपखों का मुकुट और कानों में कुंडल सुशोभित हैं। उनके केशों की शोभा उनके कपोलों पर बिखरी हुई है। वह दुःख का हरण करनेवाली तथा मन को मोहनेवाली है। उनकी वक्रदृष्टि आनंद देनेवाली और विशाल है। उनका श्याम शरीर नवीन विशाल बादल के समान है जिस पर पीले वस्त्र की शोभा बहुत ही प्रभावशाली है।

जिस प्रकार कृष्ण के अंग और आभरण रूढिबद्ध हो गये हैं, उसी प्रकार उनकी क्रियाएँ परम्परा से बंध गई हैं। गौओं का चराना, गोधन गाना, बाँपुरी बजाना, वक्र दृष्टि से देखना, मुस्कराकर चलना आदि। इन सौन्दर्यवर्द्धक क्रियाओं के अन्तर्गत भी रसखान अधिकांशतः परम्परावादी ही रहे हैं।

११ रूप-प्रभाव—कृष्ण के अमित अंग-सौन्दर्य को तथा उनकी क्रियाओं के माधुर्य को देखकर कोई भी ब्रजवासी ऐसा नहीं है जो उनसे अप्रभावित रह सकता है, विशेषतः गोपियाँ तो एकदम अपनी सुधि-बुधि भूल जाती हैं। कृष्ण के रूप-प्रभाव का उपयोग सयोग और वियोग दोनों ही स्थितियों में किया गया है। सयोग में गोपियाँ उनके रूप को देखते ही किकर्तव्यविमूढ बन जाती हैं और अपने होश-हवाश गँवा बैठती हैं। अपनी प्रेम-दशा का वर्णन करती हुई कोई गोपी अपनी सखी से कहती है कि हे सखि! कृष्ण का यौवन कामदेव की शोभा से भरा हुआ है। उनकी मनोहर मूर्ति सदैव आँखों में समाई रहती है। उन्होंने मुझसे जो प्रेमभरी बातें की थी, वे मन की मन में ही रह गई हैं, अर्थात् मैं उन्हें किसी से कह नहीं पाती। प्रेम की घाते हृदय के बीच में अड़ी हुई हैं। कृष्ण के वियोग में मेरी आँखों में सारी रात आँसुओं की लड़ी रहती है, अर्थात् मैं

रानभर कृष्ण का स्मरण करके रोती रहती हैं। किसी-किसी गोपी पर कृष्ण के रूप का प्रभाव इतना पडा है कि वह बिना मोल ही कृष्ण के हाथों बिक गई है। उनके लिए नदपुत्र कृष्ण कामदेव से भी अधिक मनोहर है, उनकी वक्रदृष्टि प्रेम के पाम में बाँधनेवाली है, उनके मुख की सुन्दरता से कराड़ों चन्द्रमा पराजित हो गये हैं। इसीलिए कोई गोपी तो अपनी सखी के सामने अपनी आँखें झपलिये नहीं खोलती कि उनमें कृष्ण की छवि बसी हुई है। अब जब भा गोपियाँ कृष्ण को देखती हैं, उनके नेत्र बरबस उनकी ओर चौड़ पड़ते हैं, ठीक बिहारी की नायिका के उन नेत्रों के समान जो लाज-लगाम का शासन नहीं मानते। यह कहना अनुपयुक्त न होगा कि कतिपय छंदों में ही रसखान ने रूप-प्रभाव का जो वर्णन कर दिया है, वह हृदय को प्रभावित करने के लिए काफी है।

१२ कुंज लीला—कु अलीला का वर्णन भी परम्परागत है। कोई गोपी अपनी सखी से कहती है कि हे सखि। आज प्रातःकाल जब मैं कुंजगली में निकली तो अचानक कृष्ण से भेंट हो गई। कृष्ण के मुख की मुस्कुरान में मेरा मन इतना डूब गया कि उसकी छवि पर से हटाने से भी नहीं हटा। उस मुस्कान ने मेरे नयनों को बाँध लिया, चित्त को चुरा लिया और प्रेम का गहरा फटा डाल दिया। इस प्रकार के वर्णन में कोई नवीनता तथा मौलिकता नहीं है।

१३ नटखट कृष्ण—इस गीर्षक के अन्तर्गत संकलित छंदों में कृष्ण के नटखटपन का वर्णन है। यह वर्णन कहीं गोपियों की सहज स्वभाविकता में परिपूर्ण है और कहीं तीक्ष्ण व्यंग्य से। कोई गोपी कृष्ण की भर्त्सना करती हुई कहती है कि हे कृष्ण। तुम और किसी जगह से नहीं आये हो। तुम्हारा जन्म हमारे इसी गाँव में हुआ है। बचपन में हमने तुम्हें दूध पिला-पिलाकर माँ-बाप की तरह पाला है। उसी पहिचान और मर्यादा को तुम छोड़ना चाहते हो। तुम बचपन में द्वार-द्वार पर नाचा करते थे और अब हमारे सामने अपनी आँखें नचा रहे हो। तुम्हें तुम्हारी माँ की सौगन्ध है, यदि तुमने हमारी मटकी उतारी। हमें न तो अपनी इस मटकी के उतर जाने का सोच है, न गोरस बिखर जाने का और न वस्त्रों के फट जाने का। हमें दुःख तो इस बात का है कि तुम हमारे होकर ही हमें इतना तंग करते हो। इन वाक्यों में गोपियों के

मन की सहज स्वाभाविकता वर्णित है। इसी प्रकार एक अन्य गोपी कृष्ण के नटखट व्यवहार की शिकायत अपनी सखी से करती हुई कहती है कि कृष्ण एक से बढ़कर एक शरारतियों को अपने साथ लेकर वन में घूमता रहता है। वह जितनी शरारतें करता है, उनका वर्णन नहीं किया जा सकता। वह न तो किसी की अनुनय-विनय पर ध्यान देता है और न किसी प्रकार की मान-मर्यादा की ही लज्जा करता है। आती-जाती गोपियों की दधि-मटकियाँ फोड़कर उन्हें कृष्ण ने जिस प्रकार तग किया है, उस सबका वर्णन इस शीर्षक के अंतर्गत संकलित छन्दों में मिलता है।

१४. मुरली-प्रभाव — वैष्णव सम्प्रदाय के अन्दर मुरली को भगवान् की चणोकरण शक्ति माना गया है। कृष्ण जब भी मुरली बजाते हैं, तब जड़ और चेतन स्थिर बन जाते हैं। ब्रज की गोपियों की दशा तो विलक्षण ही होती है। मुरली की ध्वनि सुनते ही गोपियाँ अपना काम करना छोड़ देती हैं, अतः दुहा हुआ दूध ठंडा पड़ जाता है, जामन दिया हुआ दूध रक्खा-रक्खा ही खटा जाता है। सभी के हाथ-पैर अपना-अपना काम करना छोड़ देते हैं। यह दशा नारियों की ही नहीं, बल्कि पुरुषों की भी हुई। कहने का भाव यह है कि सारा ब्रज ही व्याकुल हो गया। उसकी समस्त व्यवस्था अस्त-व्यस्त हो गई। इसी प्रकार एक अन्य गोपी मुरली-प्रभाव का वर्णन अपनी सखी से करती हुई कहती है कि चन्द्रमा के समान सुन्दर मुखवाले, कामदेव के समान सुन्दर कृष्ण के मधुर वचनों ने मेरा मन मोह लिया है। उसकी बाँकी चितवन को देखकर मैं सज्ञाशून्य हो गई और कुल की मर्यादा छोड़ बैठी। इसीलिए गोपियाँ चाहती हैं कि कोई व्यक्ति कृष्ण के हाथ से बाँसुरी छीनकर उसे जला डाले, तभी वे उससे छुटकारा पा सकती हैं। कृष्ण अपनी बाँसुरी से इतना अधिक प्रेम करते हैं कि वे हर समय उसे अपने अग्ररो से लगाये रहते हैं। इससे गोपियों के मन में बाँसुरी के प्रति ईर्ष्या-भाव उत्पन्न हो गया है। वे तो यह चुनौती भी दे देती हैं कि ब्रज में या तो हम रहेगी या यह कृष्ण-प्रिया बाँसुरी ही रहेगी।

इस प्रकार काफी विस्तार के साथ रसखान ने मुरली-प्रभाव का वर्णन किया है।

१५. कालियदमन — कृष्ण की अन्य प्रमुख लीलाओं के अन्तर्गत कालिय-दमन लीला भी प्रमुख है। सूरदास ने इस लीला का विस्तार से वर्णन किया

है, पर रसखान के इस विषय में केवल दो छंद ही प्राप्त हैं। एक छंद में यगोदा जी का विलाप है और दूसरे छंद में कृष्ण द्वारा नाग पर विजय कर लेने के कारण वज-रासियों की प्रसन्नता को व्यक्त किया गया है।

१६. चीरहरण — चीरहरण-लीला के अन्तर्गत रसखान का केवल एक छंद प्राप्त है।

१७. प्रेमासक्ति — इस लीला के अन्तर्गत रसखान के ११ छंद उपलब्ध हैं। इन छंदों में कृष्ण के सौन्दर्य ने, उनकी क्रियाओं ने और उनकी मुरली की वर्णा-करणा ध्वनि ने गोपियों को इतना आकृष्ट कर लिया है कि वे बिना कृष्ण के जल-रहित मीन की भाँति छटपटाती रहती हैं। अपनी प्रेमावस्था का वर्णन एक गोपी अपनी सखी से करती हुई कहती है कि कृष्ण जब गाये चरा-कर गाम को घर लौटते हैं तो उनकी मधुर वाणी, तीक्ष्ण कटाक्ष आदि मेरे हृदय पर इतना अधिक प्रभाव डालते हैं कि मैं यह सोचने लगती हूँ कि कितना अच्छा होता, यदि मेरा हृदय पृथ्वी का वह टुकड़ा होता जहाँ काँचनी पहनकर कृष्ण क्रीड़ाएँ किया करते हैं। इसी प्रकार एक अन्य गोपी कहती है कि जब से मैंने कृष्ण के मुकुट, मुरली, वनमाला को देखा है, तब से मैं उनमें इतनी आसक्ति हो गई हूँ कि कुल तथा लोक की लाज का भी ध्यान नहीं करती। मैं ही क्या, ब्रज की समस्त गोपियों की यही दशा है। प्रेम का यह बंधन इतना दृढ़ हो गया है कि अब चाहे कोई लाख प्रयत्न करे, पर यह टूट नहीं सकता। वस्तुस्थिति तो यह है कि मैं कृष्ण के रंग में ऐसी रंग गई हूँ कि अब मेरे लिए अन्य कोई रंग ही शेष नहीं रह गया है।

अतः यह कहना अनुपयुक्त न होगा कि रसखान ने प्रेमासक्ति का जिन प्रकार वर्णन किया है वह अत्यन्त स्वाभाविक, प्रभावोत्पादक एवं परम्परागत है।

१८. प्रेम-बंधन प्रेमासक्ति में आकृष्ट होने की भावना अधिक होती है। जब यह आकर्षण दृढ़ रूप धारण कर लेता है और हृदय पर अपना अधि-पत्य जमा लेता है तो बंधन का रूप बन जाता है। कहने का भाव यह है कि प्रेमासक्ति से अगला सोपान प्रेम-बंधन का है। जो गोपियाँ कृष्ण की ओर आकृष्ट हुई थी, कालान्तर में वे ही उनके प्रेम में वदिनी बन गईं। गोपियों की इस दशा का वर्णन रसखान ने बड़े ही कौशल के साथ किया है। गोपियाँ इस बंधन में इतनी जकड़ गई हैं कि वे प्रीति की रीति में लाज का कोई स्थान

ही नहीं मानती। यह बधन उनके लिए भगवान् का दिया हुआ है, अर्थात् उनके भाग्य में ही इस प्रकार बदिनी होना लिखा था, यही सोचकर गोपियाँ चुप रह जाती हैं, अपनी बदिनी-दशा के प्रति संतोष कर लेती हैं। उनकी दशा तो उन मधु-मक्खियाँ जैसी हो गई है जो अपने ही बनाये हुए शहद में लिपटकर असहाय-सी बन जाती हैं। गोपियाँ इस बधन से छुटकारा पाने में स्वयं को असहाय और असमर्थ समझती हैं। इसी प्रसंग के अन्तर्गत रसखान ने जलक्रीडा का वर्णन किया है। एक दिन सभी ब्रज-गोपियाँ यमुना में स्नान करने के लिए जाती हैं, पर वहाँ पर कृष्ण को पहले से ही खड़ा देखकर वे ठिठक जाती हैं और दोनों ओर से दृग्-वाण चलने लगते हैं। गोपियाँ कृष्ण के प्रेम के बंधन में इतनी अधिक बँध जाती हैं कि उन्हें लोक-लाज का भय नहीं रहता। वे तो इस बात के लिए कटिबद्ध हो गई हैं कि एक न एक दिन इस प्रेम का भडाफोड होगा, क्योंकि चन्द्रमा को हाथ से छुपाया नहीं जा सकता, फिर डरने से अथवा लज्जित होने से कोई लाभ भी तो नहीं है। कृष्ण गोपियों के हृदय में जिस बीज का वपन कर देते हैं, वह पूर्णतया अंकुरित होकर गोपियों को व्यथित कर देता है। रात-दिन आँखों से आँखें लड़ती हैं, प्रेम-व्यापार चलते हैं, पर कहीं भी न तो भय का प्रदर्शन होता है और न लज्जा का। जब सभी गोपियाँ पूर्णरूपेण कृष्ण के आधीन हो गई हैं तो फिर डर और लज्जा की बात ही क्या रह जाती है।

कहने का भाव यह है कि इस प्रसंग के अन्तर्गत रसखान ने गोपियों के विविध हावों तथा भावों का कुशलता से वर्णन किया है।

१६. प्रेम-वेदना—‘प्रेम करि काह सुख न लह्यौ’ फिर गोपियाँ किस प्रकार मुखी रह सकती थी। उनके हृदय में रसखान बस गया और उसके कारण उन्हें जो पीडा हुई उसका अनुभव वे स्वयं ही कर सकती थी, क्योंकि घायल की गति को घायल ही जानता है। कृष्ण की मुसकान और तान पर अपने प्राणों को न्यूँछावर करनेवाली गोपियाँ समाज में भी विमुख हुईं और कृष्ण का मनचाहा प्यार भी उन्हें न मिल सका। यही उनकी विवशना थी और यही समाज में ख्वारी होने का कारण था। वे कृष्ण को भूलने का जितना प्रयत्न करती, वह उतना ही अधिक याद आकर पीडा को बढ़ावा देना। फलतः किकर्तव्यविमूढा होना स्वाभाविक ही था। वे क्या करें, क्या न करें, इसका

उन्हें ज्ञान ही नहीं रहा । उन्हें ज्ञान रहा केवल कृष्ण की क्रीड़ाओं का । इसी दशा का वर्णन करती हुई एक गोपी अपनी सखी से कहती है कि आनंद-सागर कृष्ण का कुंज-कुंज में घूमना, वंशी बजाना, गीतों को चराना, गोचारण के गीत गाना, प्रेम से दही माँगना और मुसकराकर देखना किस प्रकार भूला जा सकता है । इस प्रकार रसखान ने प्रेम-वेदना का मार्मिक और स्वाभाविक वर्णन किया है ।

२०. रासलीला—रसखान ने रासलीला का भी वर्णन किया है । इस विषय के इनके सात छंद उपलब्ध हैं । इस रासलीला का उद्देश्य भी गोपियों को अपने प्रेम के बंधन में बाँधना है । फलतः जो भी गोपी रासलीला को देखती है, वह कृष्ण की ही होकर रह जाती है । सास चाहे जितना आस दे, ननद चाहे जितने व्यंग्य कसे, पर रासलीला की दिवानी गोपी तो उसमें सम्मिलित होकर ही रहती है । रासलीला के द्वारा कृष्ण ब्रज में नवीन जीवन का संचार करते हैं । इसीलिए प्रत्येक गोपी अपनी सखी से आग्रह करती है कि वह रासलीला में अवश्य सम्मिलित हो और कृष्ण के सौन्दर्य को देखकर अपनी आँखों को लाभान्वित करे । वैसे, गोपियाँ स्वयं भी नहीं रुक पाती, चाहे उन्हें रोकने की जितनी चेष्टा की जाये, क्योंकि कौवे की काँव-काँव से गारदागमन कभी नहीं रुका करता ।

२१. फागलीला—कृष्ण की लीलाओं के अन्तर्गत फागलीला का भी महत्त्व है । सभी भक्त-कवियों ने फागलीला का वर्णन किया है । इस विषय से सम्बद्ध रसखान के आठ छंद उपलब्ध हैं जिनमें विस्तार से इस लीला का हृदय-स्पर्शी वर्णन है । कृष्ण जब फाग खेलते हैं तो उस समय उनकी जो जोभा होती है, वह अवर्णनीय है । कृष्ण और गोपियाँ परस्पर पिचकारी चलाते हैं, एक दूसरे पर रग डालते हैं, पर प्रेम की आग और अधिक प्रज्वलित हो जाती है उनकी तृप्ति होती ही नहीं । फागलीला के कारण ही ब्रज में धूम मच जाती है । इससे कोई नहीं बच पाता, न तो नवेली गोपियाँ ही और न सनज्ज वनिताएँ ही । मम्मान किसी का भी सुरक्षित नहीं रहता, अर्थात् सभी गोपिकाएँ लोक-लाज को तिनाजलि देकर फागलीला में मस्त रहती हैं ।

२२. राधा-सौन्दर्य—प्रेम की परिपूर्णता के लिए यह आवश्यक माना गया है कि नायक की भाँति नायिका भी रूपवती तथा सुन्दर हो । इसीलिए रसखान ने

ग्यारह छंदों में राधा के सौन्दर्य का वर्णन किया है। राधा रूप राशि है, उसके सौन्दर्य के कारण बरसाने में सदैव आनंद की लहरियाँ तरंगित होती रहनी हैं। घर-घर में अपार कौतुक और रग का विस्तार रहता है। राधा-सौन्दर्य का वर्णन करने के लिए कवि ने प्रायः उपमा, उपेक्षा और सदेह अलंकारों का प्रयोग किया है। यह प्रयोग परम्परागत है। राधा के सौन्दर्य का वर्णन करती हुई एक गोपी राधा से कहती है कि तुम्हारा मुख इतना सुन्दर है जैसे अमृत-सार को सजोकर स्वयं चन्द्रमा उपस्थित हो गया हो। तुम्हारे शरीर का गठन ऐसा है जैसे सोने में मणि-मुक्ताओं को जड़ने के लिए कुशन जड़िया यौवन ने सुन्दर घर (रत्न जड़ने का गहरा चिन्ह) बना लिया हो। तुम्हारे अधरों की लाली काम-कामना जैसी सुशोभित है। तुम्हारी नासिका का छिद्र उस भौरे के समान है जिसमें ज्ञान की नौका का गर्व नष्ट हो जाता है। कहने का भाव यह है कि राधा के सौन्दर्य का वर्णन नहीं किया जा सकता। नक्षत्रों की अनुपम प्रभा राधा-सौन्दर्य का कुछ-कुछ बोध करा सकती है।

२३. मानवती राधा—प्रेम की परिपुष्टता के लिए आचार्यों ने मान को आवश्यक साधन माना है। जिस प्रकार रंग में पुट लगाने से रंग का रंग गहरा और पक्का हो जाता है, उसी प्रकार प्रेम में मान करने से प्रेम में दृढ़ता आती है। रसखान ने भी उसका पालन किया है। मानवती का मान भग्न करने का उत्तरादायित्व उसकी सखियों पर होता है। वे अनेक प्रकार के साधनों का अवलम्बन लेकर अपने कार्य में प्रवृत्त होती हैं। मानवती राधा को उसकी एक सखी समझाती हुई कहती है कि हे राधा! जिस कृष्ण पर चारों ओर के राजाओं की स्त्रियाँ अपने प्राणों को न्यौछावर करती हुई नहीं थकती और भूमंडल की सभी स्त्रियाँ जिसे प्राप्त करने के लिए सदैव आकुल रहती हैं, उसके प्रति तुम्हारा मान धारण करना उचित नहीं है। इसी प्रकार एक अन्य सखी राधा से कहती है कि यदि आनंद-सागर कृष्ण तेरे मान के कारण डर जाये तो तुम्हें अपना मान छोड़ देना चाहिए। यदि तुम मान नहीं छोड़ सकती तो कृष्ण से प्रेम करना छोड़ दो और यदि तुम प्रेम करना नहीं छोड़ सकती तो मान छोड़ दो। कृष्ण तुम्हारे मान से बहुत दुःखी है और बेचारे हाथ मल रहे हैं। इसी प्रकार के अन्य वाक्य कहकर गोपियाँ राधा से मान छोड़ने के लिए आग्रह करती हैं। यह रीति परम्परागत है।

२४. सखी-शिक्षा—साहित्यिक परम्परा के अन्तर्गत सखी-शिक्षा का विषय भी सन्निहित है। जो सखी प्रौढ होती है, जिसे प्रेम-ससार के समस्त अनुभव होते हैं, वह अपनी मुग्धा सखी को—जिसने अभी-अभी प्रेम-जगत् में प्रवेश किया है और जो प्रेम-रहस्यों से अपरिचित है—शिक्षा दिया करती है। इस शिक्षा का मुख्य उद्देश्य उन माधनों को बताना होता है जिससे प्रियतम वश में किया जा सकता है। रसखान ने भी इस परम्परा का पालन किया है। कोई सखी अपनी सखी को कृष्ण से मिलने के लिए प्रेरित करती हुई कहती है कि हे सखि ! वह वही कृष्ण है, जो रासलीला में तनिक नाचकर सबको नचाया करता है। वह ही आनन्द सागर कृष्ण है जो अनेक मनुहार करने पर भी पलभर के लिए भी भीग नहीं देखता। न जाने तुझमें वह कौनसे मनोहर भाव देखकर तेरी ओर आकृष्ट हुआ है, अतः इस अवसर को हाथ से न जाने दे और तुरन्त उससे मिल। कहीं-कहीं सखी अपनी सखी को सुरक्षा के उपाय बताती है। एक गोपी अपनी सखी से कृष्ण के प्रति सचेत रहने के लिए कहती है कि हे सखी ! मेरी बात को ध्यान से सुनो। जिस गली में कृष्ण अपनी बाँसुरी बजाता हुआ जाता है, उस गली बिल्कुल मत जाओ क्योंकि देखते ही वह प्राणों को हर लेता है और फिर गोपियाँ बेचारी प्रेम की विपत्ति लेकर ही अपने घरों को लौटती हैं उसने अपनी बाँसुरी की तानों का ब्रज में तान तान रखा है। अतः मैं तुमसे जान की बात कहती हूँ कि बहुत सोच-समझकर पैर रखो, क्योंकि वह कृष्ण युवती को अपने जाल में इस प्रकार फँसाना है जिस प्रकार चारा देकर मछली को फँसाया जाता है। इसी प्रकार की अनेक शिक्षाएँ सखियों द्वारा अपनी-अपनी सखियों को दी गई हैं।

२५. संयोग वर्णन—संयोग-वर्णन के अन्तर्गत राधा और कृष्ण के मिलन का विशेष रूप से वर्णन किया गया है। यह वर्णन पर्याप्त विस्तृत है मिलन-सुख के अनेक चित्र रसखान ने प्रस्तुत किये हैं, यहाँ तक कि सुरतात चित्रों को भी चित्रित करने में इन्होंने हिचक नहीं दिखाई है। हिचक का कोई कारण भी नहीं है, क्योंकि भक्तिरस के अन्तर्गत चित्रित किया हुआ शृंगार रस अलौकिक होता है, लौकिक नहीं। हिचक लौकिक शृंगार में होती है। फिर ऐसे चित्रों में रसखान ने काफी समय से काम लिया है। सुरतात का वर्णन करती हुई एक गोपी अपनी सखी से कहती है कि चतुर बाला अत्यन्त प्रसन्नता

के साथ अपने प्रियतम को छाती से लगा सोई हुई थी। उसके खुले हुए कंठ बाहर निकल कर हिल रहे थे। उसकी शोभा को देखकर कामदेव तिरस्कृत हो रहा था। प्रिय के साथ आनंद में डूबी रहकर रातभर जागने की बात का पता उसकी आँखों से चल रहा था। उसका अलसाया हुआ मुख, लाल आँखों के सफेद कोए और रातभर जागने के कारण जम्भाई के कारण निकले हुए आँसू ऐसे प्रतीत होते थे मानो चन्द्रमा पर बिम्ब, बिम्ब पर कुमुद और कुमुद पर मोती हो।

यह वर्णन काफी संयत है। इसमें विद्यापति और सूरदास जैसी असंयमता नहीं है।

२६. वियोग वर्णन—संयोग के पश्चात् वियोग अवश्यम्भावी है। रसखान का वियोग-वर्णन काफी मार्मिक और स्वाभाविक है। वियोग-वर्णन में प्रकृति का उद्दीपन रूप में चित्रण करने भी जो परिपाटी चली जा रही है, रसखान ने भी उसका अनुसरण किया है। विरहिणी गोपी अपनी सखी से कहती है कि सारे बागों में फूल खिल गये हैं। बसन्त के आगमन के कारण भौरे उन पर बूँज रहे हैं। कोयल की कू-कू सुनकर सबके प्रियतम विदेश से वापिस लौट रहे हैं। लेकिन मेरे आनंद-सागर कृष्ण इतने निष्ठुर हैं कि मेरी विरह-वेदना की तकनीक भी चिन्ता नहीं करते। जब कोयल बोलती है तो उसकी कूक हृदय में वरछी के समान लगती है। इसी प्रकार का आगतपतिका का चित्रण है—वह गोपी अपने प्रियतम के वियोग से इतनी दुखी थी कि उसके शरीर की शोभा भी मद पड़ गई थी। उसका कमल जैसा मुख भी मुरझा गया था। उसके हृदय की साँसें लपट बनकर जलने लगी थी। इसी बीच उसने अपने प्रियतम के आगमन की खबर सुनी। वह इतनी प्रसन्न हुई कि उसकी कंचुकी की दृढ़ डोर भी कस-मसाने लगी। उसका शरीर इस प्रकार शोभायुक्त हो उठा, मानो दीपक की बत्ती को उसका दिया गया हो। लेकिन सर्वत्र ऐसी स्वाभाविकता एवं मार्मिकता रसखान के वर्णन में नहीं मिलती। कहीं-कहीं ऊहात्मक चित्र भी आ गए हैं। यथा—कोई गोपी अपनी सखी से अन्य विरहिणी गोपी की विरह-दशा का वर्णन करती हुई कहती है कि जब उसके शरीर में वियोग की आग बहुत अधिक बढ़ गई तो वह उसे शान्त करने के लिए यमुना जल में कूद पड़ी। विरह की आग के कारण यमुना का जल सूख गया और मछलियाँ जल के

अभाव के कारण यमुना के तल में बैठ गई। उस आग के कारण जब यमुना का पानी खोलने लगा तो उसकी गर्मी से पाताल-लोक में स्थित शेषनाग भी जलने लगा। पर ऐसे वर्णन परम्परागत ही समझने चाहिए।

२७. सपत्नी भाव—इस प्रसंग की अवतारणा नारियों के मन की स्वाभाविकता को चित्रित करने के लिए की गई है। नारी यह सहन नहीं कर सकती कि उसके प्रिय को, अन्य कोई नारी भी प्रेम करे। यदि ऐसा होता है तो उसके मन में जलन होती है। इसी जलन को सपत्नी-भाव कहते हैं। कृष्ण-काव्य में कुब्जा को लेकर ही इस भाव की अभिव्यक्ति की गई है। रसखान ने भी इस परम्परा का अनुसरण किया है। इनकी गोपियाँ उद्धव से कहती हैं कि हे उद्धव! उस आनन्द सागर कृष्ण के गुणों को सुनकर हमारा हृदय सौ-सौ टुकड़े होकर फट गया है। हम नहीं जानती कि कौनसा मंत्र पढ़कर कुब्जा ने कृष्ण पर चला दिया है। हम अपने मन में विचार कर यह बात सत्य कहती हैं और जानती हैं कि कृष्ण ने इस प्रकार से कितना यश प्राप्त किया है? अर्थात् वे बहुत बदनाम हो गये हैं, क्योंकि ब्रज के सब नर-नारी यह कहते हैं कि कृष्ण कुब्जा के दाम बन गए हैं। कहीं-कहीं यह सपत्नी-भाव अक्रोश के रूप में फूट पड़ा है। एक गोपी कहती है कि वह कुब्जा यहाँ पर होती तो उसे लात घूँसे मारती और उसका शरीर चोट लेती। अपने हृदय का सारा गुस्सा निकाल लेती और उसकी नाक को छेदकर उसमें कौड़ी पहना देती। उस रांड को मैं ऐमा नाच नचाती कि उसे कृष्ण को रिझाने का फल मिल जाता।

२८ कुवल्यापीड-वध—सभी कृष्ण भक्त-कवियों ने कृष्ण के अलौकिकत्व का प्रतिपादन करने के लिए इस कथा का वर्णन किया है। रसखान ने इस परम्परा का निर्वाह केवल एक छंद से ही कर दिया है।

२९ उद्धव उपदेश—इस शीर्षक के अन्तर्गत रसखान के चार सवैधे उपलब्ध हैं। कथा परम्परागत है। उद्धव गोपियों को निर्गुण ब्रह्म का उपदेश देने के लिए आते हैं और गोपियाँ उनकी परिहासपूर्ण भर्त्सना करती हैं।

३० ब्रज-प्रेम—इस विषय के दो छंद रसखान के मिले हैं। कृष्ण को द्वारिका में रहकर ब्रज की याद आती है और वे अपनी वेदना की अभिव्यक्ति अपनी रानी रुक्मिणी से करते हैं।

३१. गंगा महिमा—इस विषय के रसखान के दो छंद हैं जिनमें गंगा की महिमा का वर्णन किया गया है।

३२. शिव-महिमा—इस विषय का केवल एक छंद प्राप्त है जिसमें शिव की महत्ता का प्रतिपादन किया गया है।

यही सुजान रसखान का प्रतिपाद्य है। इस प्रतिपाद्य पर दृष्टि डालने से यह ग्रनायास ही सिद्ध हो जाता है कि अपने काव्य के उपलब्ध लघु कलेवर में भी रसखान ने उन सभी विषयों को समाविष्ट करने का प्रयास किया जो कृष्ण-काव्य के लिए महत्वपूर्ण और आवश्यक है। इस प्रतिपाद्य को देखते हुए यह अनुमान लगाना असंगत नहीं कि रसखान के अभी बहुत सारे छंद ऐसे हैं जो प्राप्त नहीं हुए, क्योंकि रसखान जैसा भक्त और भावुक कवि कृष्ण-विषयक किसी-किसी लीला का एक-दो छंदों में ही वर्णन करके रह जाये, यह बात मान्य नहीं है। 'भक्तमाल-प्रदीपन' में रसखान के सहस्रों कवित्तों का उल्लेख है। इसका तात्पर्य यह है कि उस समय रसखान के निश्चय ही हजार के लगभग (हजार से कुछ थोड़े अथवा कुछ अधिक) छंद अवश्य प्रचलित रहे होंगे। जो कवि केवल प्रेम को लेकर ही एक पुस्तक की रचना कर सकता है, उसने निश्चय ही कृष्ण-लीलाओं का विस्तार से वर्णन किया होगा। रसखान के भक्तिकाल की लम्बी अवधि भी इस अनुमान की पुष्टि करती है। अतः जब तक रसखान के अन्य छंद प्राप्त नहीं हो जाते, तब तक उपलब्ध छंदों पर ही परितोष करने के अतिरिक्त और कोई चारा नहीं है।

प्रेम-वाटिका—

रसखान की दूसरी महत्वपूर्ण कृति प्रेम-वाटिका है जिसमें ५३ दोहों में प्रेम के स्वरूप का विस्तार से वर्णन किया गया है। इस स्वरूप का उल्लेख करने से पूर्व प्रेम-वाटिका की प्रामाणिकता पर विचार कर लेना आवश्यक है।

अनेक विद्वानों की यह धारणा है कि प्रेम-वाटिका रसखान द्वारा रचित नहीं है और इस धारणा का मुख्य आधार प्रेम-वाटिका की किसी हस्तलिखित प्रति का प्राप्त न होना है। श्री बटेकृष्ण ने अनेक उक्तियों द्वारा यह सिद्ध करने का प्रयास किया है कि यह कृति किशोरीलाल गोस्वामी (प्रेम-वाटिका के सर्व प्रथम सम्पादक) की है। श्री बटेकृष्ण के तर्क ये हैं—

१ प्रेम-वाटिका का एक दोहा यह है—

‘कमल तन्तु सो छीन अरु, कठिन खडग की धार ।

अति मूढो टेढो बहुरि, प्रेम-पंथ अनिवार ॥’

इसी भाव से मिलता-जुलता बोधा कवि का यह सवैया है—

‘अति खीन मृनाल के तारहु ते, तिहि ऊपर पाँव दै आवनो है ।

सुई बेह ते द्वार सकीन तहाँ, परतीत को टाडो लदावनो है ।

कवि बोधा अनी घनी तेजहुँ ते, चढि तपै न चित्त डिगावनो है ।

यह प्रेम को पथ करार महा, तरवार की धार पै धावनो है ॥’

इस तुलनात्मक अध्ययन से श्री बटेकृष्ण का यह अनुमान है कि प्रेम-वाटिका की रचना बोधा के पञ्चात् हुई है । गिवसिंहसरोजकार के अनुसार बोधा का जन्म-काल सवत् १८०४ है । आचार्य शुक्ल ने इनका कविता-काल सवत् १८३० से १८६० तक माना है ।

इसका तात्पर्य यह हुआ कि प्रेम-वाटिका की रचना सवत् १८६० के पश्चात् हुई ।

२ अपनी इस मान्यता को सिद्ध करने के लिए श्री बटेकृष्ण ने प्रेम-वाटिका के इस दोहे की ओर संकेत किया है—

‘बिधु सागर रस इन्द्र मुभ, वरस सरस रसखान ।

प्रेम-वाटिका रचि रुचिर, चिर हिय हरषि बखान ॥’

और इसमें ‘रस’ शब्द को ९ अक्षरों का संकेत मानकर प्रेम-वाटिका का रचनाकाल सवत् १९७१ निर्धारित किया है ।

श्री बटेकृष्ण की यह मान्यता मंगत नहीं है । जहाँ तक पहले आक्षेप का सम्बन्ध है, उसके प्रत्युत्तर में दो बातें कही जा सकती हैं । पहली बात तो यह है कि रसखान ने बोधा के सवैया से भाव-ग्रहण किया है, बोधा ने रसखान के दोहे से नहीं, इस बात का क्या प्रमाण है ? दूसरी बात यह कि रवच्छन्द धारा के कवियों ने प्रेम को ‘टेढा’, ‘नीधा’, ‘खडग की धार’ आदि बताया है । उदाहरण के लिए घनानन्द का यह सवैया देखिए—

‘अति सूघो सनेह को नारग है, जहा नेक सयानप बाँक नहीं ।

तहाँ साँचे चले तजि आधुनपौ, भूपकै कपटी जे निसाँक नहीं ।

घनआन्द प्यारे सुजान सुनो, इत एक ते दूसरो आँक नही ।
तुम कौन धौ पाटी पढे हौ लला, मन लेहु पै देहु छटाँक नही ॥'

कहने का तात्पर्य यह है कि प्रेम-वाटिका में बोधा के भावों को ग्रहण नहीं किया गया । प्रेम-वाटिका में प्रेम का दार्शनिक निरूपण है, बोधा में इस दृष्टि का अभाव है । अतः इस दृष्टि से भी बोधा का काव्य प्रेम-वाटिकाकार का उपजीव्य-काव्य नहीं हो सकता । डॉ० याज्ञिक के शब्दों में —

‘प्रेम-वाटिका की रचना रसखान द्वारा संवत् १६७१ में ही हुई’ इस तथ्य पर संदेह करना असंगत है । जो पुस्तक पहली बार संवत् १६४८ के आस-पास और दूसरी बार संवत् १६६३-६४ में प्रकाशित हुई, उसकी रचना संवत् १६७१ में कैसे मानी जा सकती है ? जिस पुस्तक की खडित प्रति भारतेन्दु के पास थी और जिसके आधार पर संवत् १६३० में ‘प्रेम-सरोवर’ की रचना हुई । उसकी रचना संवत् १६२२ में जन्म लेने वाले गोस्वामी जी कैसे कर सकते थे ? सार की बात यह है कि प्रेमवाटिका की रचना रसखान द्वारा संवत् १६७१ में हुई थी । इस ग्रन्थ के ५३ दोहों में से लगभग १० में रसखान छाप की शिल्प अथवा स्पष्ट कवि नाम रूप में हैं । प्रेमवाटिका की प्रामाणिकता पर संदेह करने का कोई कारण हमें दिखाई नहीं पड़ता ।’

प्रेमवाटिका का प्रतिपाद्य प्रेम है । इसे रूपकत्व प्रदान करने के लिए राधा और कृष्ण को मालिन-माली का जोड़ा माना गया है । इसमें रसखान जी ने प्रेम के स्वरूप का विस्तार से वर्णन किया है । इनका मत है कि सच्चा प्रेम अकारण होता है, उसमें किसी आकर्षक साधन की आवश्यकता नहीं । इसीलिए माता, पिता, पुत्र, स्त्री आदि के प्रति जो प्रेम किया जाता है वह विशुद्ध नहीं है । विशुद्ध प्रेम के स्वरूप का प्रतिपादन करते हुए बताया गया है कि यह अनुपम, अमित और सागर के समान होता है । जो व्यक्ति एक बार इस प्रेम को प्राप्त कर लेता है, वह फिर इसे नहीं छोड़ पाता । श्रुति, पुराण, आगम-स्मृति आदि सभी प्रेम के मार हैं । प्रेम ही साधना का आधार है, क्योंकि हृदय, कम और उपासना ये सब अहंकार के मूल हैं । जब तक हृदय में प्रेम का अंकुर अंकुरित नहीं होता, तब तक ज्ञान आदि व्यर्थ हैं और ये साधना में किसी प्रकार भी सहायक नहीं हो सकते । प्रेम ही भगवान् का स्वरूप है । जिस प्रकार भगवान् के स्वरूप का वर्णन नहीं किया जा सकता, उसी प्रकार

प्रेम भी अवर्णनीय है। जो व्यक्ति प्रेम-पाश में बँधकर मर जाता है, वह अमर हो जाता है। प्रेम के विविध रूप हैं। इसीलिए कोई इसे फाँसी कहता है, कोई तलवार, कोई नेजा, कोई भाला, कोई तीर और कोई प्राणरक्षक अनोखी ढाल। इसीलिए प्रेम को सब प्रकार की युक्तियों में श्रेष्ठ माना गया है। इसी प्रेम के नियमों से ही ससार का चक्र चल रहा है। प्रेम में इतनी शक्ति होती है कि स्वयं भगवान् भी इसके आधीन रहते हैं। रसखान ने गोपियों के प्रेम को आदर्श प्रेम माना है। कहने का भाव यह है कि प्रेम ही सर्वोत्कृष्ट सत्ता है और यही जड़-चेतन समस्त पृथ्वी का निमायक है।

दानलीला

दानलीला के ११ छंद प्राप्त हैं। डॉ० याज्ञिक इसे सदिग्ध रचना मानते हैं। अपनी मान्यता का आधार वे इन शब्दों में प्रस्तुत करते हैं—

१. स्व-रचित छंदों में अपना कवि-नाम देने की प्रवृत्ति रसखान में विशेष रूप से पाई जाती है। रसखान के छाप-रहित सवैया संख्या में नगण्य ही है, किन्तु दानलीला के ११ छंदों में केवल एक ही छंद में 'रसखान' शब्द आया है। 'प्रेमवाटिका' के ५३ दोहों में भी १० बार श्लिष्ट अथवा स्पष्ट नाम में कवि की छाप मिलती है।

२. इस छंद में 'रसखानि' शब्द का प्रयोग कृष्ण की उक्ति में राधा को संबोधन करते हुए किया है। रसखान कवि ने अपने मुक्तको में 'रसखानि' शब्द का श्लिष्ट प्रयोग जहाँ कही किया है, कृष्ण के अर्थ में किया है, राधा के लिए नहीं।

३. रसखान कवि मुख्यतः सवैयाकार है। घनाधरी का उपयोग तो बहुत थोड़ा किया गया है। यह प्रवृत्ति दानलीला में नहीं देखी जाती, उसमें घनाधरी का उपयोग तो सवैया से भी अधिक हुआ है।

४. रसखान के मुक्तक छंदों में कृष्ण ने राधा अथवा अन्य गोपियों को सम्बोधित करते हुए एक शब्द भी नहीं कहा है। रसखान की गोपियों के प्रति कृष्ण सदैव मीन ही रहे हैं, परन्तु दानलीला के कृष्ण मुखर हैं। यह बात रसखान की प्रवृत्ति के अनुकूल नहीं है।

५. रसखान के मुक्तको में दानलीला-सम्बन्धी कुछ उत्कृष्ट और लोकप्रिय छंद मिलते हैं। ये छंद राधा अथवा गोपियों की कृष्ण के प्रति उक्तियाँ हैं जो

सवादात्मक कथोपकथन के रूप में है। यदि दानलीला वास्तव में रसखान रचित है तो ये छंद उसमें क्यों नहीं स्थान पा सके? जिस दानलीला में रसखान के तद्विषयक लोकप्रिय उत्कृष्ट छंदों में से एक भी न हो, उसे रसखान रचित मानने में संकोच होना स्वाभाविक है। इस प्रकार के छंदों के प्रतीक निम्नलिखित हैं—

(१)

दानी भये नये माँगत दान सुनै जु मैं कस तो बाँधे न जैहौ ।
रोकत हो बन में रसखान पसारत हाथ महा दुख पैहौ ।
टूटै घरा बछरादिक गोधन जो धन है सु सबै धरि दैहौ ।
जै है अभूषन काहु सखी को तो मोल छला के लला न बिकैहौ ॥

(२)

छीर जो चाहत चीर गहे ए जु लेहु न केतिक छीर अँचैहौ ।
चाखन के मिस माखन माँगत खाउ न माखन केतिक खैहौ ।
जानति हौ जिय की रसखान सु काहे को एतिक बात बढ़ैहौ ।
गोरस के मिस जो रस चाहत सो रस कान्ह जु नेकु न पैहौ ॥

(३)

नागर छैल है गोकुल में पग सेकत सग सखा ठिग तै हैं ।
जाहि न ताहि दिखावत आँख सुकौन गई अब तोसो करै है ।
हाँसी में हार हर्यौ रसखान जु जो कहूँ नेकु तगा टुटि जै है
एक ही मोती के मोल लला सिगरे ब्रज हाटहि हाट बिकै है ॥

६ म्यूनिसिपल म्यूजियम, प्रयाग की प्रति में 'दानलीला' के वास्तविक रचियता विषयक कोई संकेत नहीं है। सभा की खोज के विवरणकार ने इसे रसखान रचित माना है, किन्तु यह मान्यता निराकार जान पड़ती है।

सार यह है कि जब तक कोई पुष्ट प्रमाण प्राप्त न हो, इस दानलीला को रसखान-रचित मानना ठीक नहीं कहा जा सकता।

डॉ० याज्ञिक के ये तर्क काफी सबल हैं। प्रस्तुत दानलीला की भाषा को देखते हुए भी ऐसा ही लगता है कि ये छंद रसखान द्वारा रचित नहीं हो सकते। पर यहाँ पर एक समस्या और उत्पन्न हो जाती है। सुजान-रसखान में अब तक

जितने छंदों का संग्रह किया गया है, वे छंद इस बात के साक्षी हैं कि रसखान कृष्ण भक्ति-विषयक धारा के पूर्णतया अनुसरणकर्ता है। दानलीला इस धारा का प्रमुख प्रतिमाद्य है। सूरदास ने इस लीला का वर्णन बहुत ही विस्तार से किया है। उसके कुछ पद यहाँ उद्धृत करना आवश्यक जान पड़ता है—

ग्वालिनि यह भली नहिं करति ।

दूध दधि घृत [नितहिं बेचति, दान देतै उरति ।
 प्रात ही 'लै जाति गोरस, बेचि आवति राति ।
 कही कैसें जानियै तुम, दान मारे जाति ।
 कालिंदी-तट स्याम बैठे, हमहिं दियो पठाइ ।
 यह कह्यो हरि दान मागहु, जाति नितहिं चुराइ ।
 तुम मुता ब्रजभानु की, बँ वडे नंद-कुमार ।
 सूर प्रभु की नहिं जानति, दान हाट बाजार ।

X

X

X

यह सुनि हैंषी सकल ब्रजनारि ।

आइ सुनी री बात नई इक, सिखए है महतारि ।
 दधि माखन खैरे काँ चाहत, मागि लेहु हम पास ।
 सूधै बात कही सुख पावै, बाँधन कहत अकास ।
 अरु समझी हम बात तुमारी, पढे एक चटसार ।
 सुनहु सूर यह बात कही जानि, जानती नंदकुमार ॥

X

X

X

दान दिये विनु जान न पैही ।

जब देही ढराइ सब गोरस, तबहिं दान तुम देही ।
 तुमसो बहुत लेन है मोकी, पहिनै ताति मुनाऊँ ।
 चोरी आवति बेचि जाति ही, पुनि गोरस कहँ पाऊँ ।
 माँगति छाँय कहाँ दिखराऊँ, को दही हमको जानत ।
 सूर स्याम तब कथी ग्वालि सा, तुम मोकी नहिं मानत ॥

X

X

X

कहा हमहि रिस करत कन्हाई ।

यह रिस जाइ करौ मथुरा पर, जहँ है कंस कन्हाई ।
 अब हम कहाँ जाइ गुहरावै, बसति तिहारै गाउँ ।
 ऐसे हाल करत लोगनि के, कौन रहै इहि ठाउँ ।
 अपने घर के तुम राजा हो, सब का राजा कंस ।
 सूर स्याम हम देखत बाढे, अब सीखे ये गंस ।
 × × ×

मौसौ बात सुनहु ब्रज-नारी ।

इक उपखान चलत त्रिभुवन में, तुमसौ कहौ उधारी ।
 कबहुँ बालक मुँह न दीजियै, मुँह न दीजियै नारी ।
 जोइ मन करै सोइ करि डारै, मूँड़ चढ़त है भारी ।
 बात कहत अठिलाति जाति सब, हँसति देत कर तारी ।
 सूर कहा ये हमको जानै, छाँछहि बेचनहारी ॥
 × × ×

यह जानति तुम नंद-महर-सुत ।

धेनु दुहत तुमको हम देखति, जबहि जाति खरिकहि उत ।
 चोरी करत यहौ पुनि जानति, घर घर ढूँढत भाँडे ।
 मारग रोकि भए अब दानी, वे ढँग कब तै छाँड़े ।
 और सुनो जसुमति जब बाँधे, तब हम कियौ सहाइ ।
 सूरदासप्रभु यह जानति हम, तुम ब्रज रहत कन्हाइ ॥

कृष्ण-भक्तों की भाँति स्वच्छंद काव्यधारा के कवियों ने भी इस लीला का वर्णन किया है । घनानंद ने 'दानघटा' शीर्षक के अन्तर्गत इस विषय के १६ छंद लिखे हैं । 'दानघटा' और रसखान की 'दानलीला' में बहुत अधिक साम्य है, अतः यहाँ 'दानघटा' के समस्त छंदों को उद्धृत करना आवश्यक प्रतीत होता है । ये छंद इस प्रकार हैं—

सवैया

गोपी—

छैल नए नित रोकत गैल सु फैलत कापै अरैल भए हो ।
 लै लकुटी हँसि नैन नचावत चैन रचावत मैन-तए हो ।

लाज अँचे बिन काज खगो तिनही सी पगो जिन रग रए हो ।
ऐं ड सवै निकसैगी अवै घनग्रानंद आनि कहा उनए हो ॥ १ ॥

सवैया

श्रीकृष्ण —

है उनए सु नए न कछु उघटै कित ऐं ड अमैड अयानी ।
बैन बड़े बड़े नैनन के बल बोलति है वयो इती डतरानी ।
दान दिये बिन जान न पाइ है आइ है जो भलि खोरि विरानी ।
आगे अछूती गईं सो गईं घनग्रानंद आज भई मनमानी ॥ २ ॥

सवैया

गोपी —

जाइ करौ उहि माय पै लाड़ बढाय बढाय किये इतने जिन ।
भीत की दौरनि खोरनि है मठता हठ औरनि सो समझे बिन ।
दान न कान सुन्यो कवहुँ कहूँ काहे को कोनेँ दयाँ सु लयो किन ।
टौड़िक लै घनग्रानंद डाटत काटत वयो नही दीनता सो दिन ॥ ३ ॥

सवैया

श्रीकृष्ण —

देहिगी दान जो ऐहै इत नही पँहै अवै सु किये को सवै फल ।
वावा दुहाई सुहाई करौ जिय जानि कै मानि छुटै न किये छल ।
एक ही ओल दै जाहु चली भगरो सगरो मिटि वात परै सल ।
नारव पर्यो अवला घनग्रानंद ऐंठति ग्वठति मोह किते बल ॥ ४ ॥

सवैया

गोपी —

जीभ सम्हा र न बोलति हो मुँह चाहत वयो अव लायो थपेरे ।
ज्यौँ ज्यौँ करी कछु कानि-कनौड त्यो मूढ चढे बढे आवत नेरें ।
खाय कहा फल माय जने जिम देखी विचारि रिता-तन हेरें ।
कज-कनेरहि फेर बडो घनग्रानंद न्यारे हिरहो कती टेरें ॥ ५ ॥

सवैया

श्रीकृष्ण —

लेहु भया गहि सीसन ते दधि की मटुकी अव करनि करौ कित ।
जैसे सो तैसे भए ही वनै घनग्रानंद धाम धरी जित की तित ।

एकहि एक बराबरि जाहु करौ अपने अपने चित को हित ।
फोरि कै क्यौ दुहुँ हाथ सकेदियै जौ बिधना घर बैठे दयो बित ॥ ६ ॥

सवैया

गोपी—

गोद भरै बित धाम कै जाय घरौ गहि गोद सो माय के आगै ।
पेट परे को लखै फल ज्यों निपजै हौ सपूत सु भागनि जागै ।
बाँटिहै बोलि बधाई कमाई की जाति मैं जाते महा पति पागै ।
वास दिये को यहै गुन है धनआनंद जौ छिन दोष न लागै ॥ ७ ॥

सवैया

मधुमंगल—

नंद लला रससागर सों ललिता रिस की सलिला न बढैयै ।
नागरि आगरि हौ सहु भाँति तुम्है अब कौन सी बात पढैयै ।
चोखन तोष नहि उपजै धनआनंद क्यौ गुन दोष कहैयै ।
नेकु ढरे सुघरै सब काज अकाज इतो अपलोक चढैयै ॥ ८ ॥

सवैया

ललिता—

सुनि रे मधुमंगल । दान-कथा सु जथारुचि होत वृथा हठ है ।
कर ओड़ि दिखाय दया मृदु है चलियै बहु भाँति बिनै करि नै ।
धनआनंद ऐंठ अमैठ किये कहा पैयत है रिझवारन पै ।
गुन गाय रिझयावहु देहि अबै बृषमानलली की निछावर कै ॥ ९ ॥

सवैया

सखा—

स्याम सुजान सबै गुनखानि बजावत बैन महा सुर साँचनि ।
अंग त्रिभंग अनंग-भरे दृग भौह नचाय नचावत नाँचनि ।
कीरतिदा कुलमंडन जौ निरखै भरि नैन बढै सुख-माँचनि ।
दान हँसे चुकि है धनआनंद रीझ नही सकि है हित-आँचनि ॥ १० ॥

सवैया

सखी—

आयो सखी चलि कुंज मै बैठि लखै धनआनंद की सुघराई ।

पाठन देहि न एक सखै अकिले इन्है छेकि करै मनभाई ।
भावती टेक रही बहु भाँति किये न बनै अति ही कठिनाई ।
लेता हौ राधे बलाय कठ्यौ करि आज मनो इतनी हम पाई ॥ ११ ॥

राजदुलार भरी इकसार सुभाय मथे मन डारति पी को ।
कु ज चली सुखपुंज अली सग भाल विराजत लाज को टीको ।
लोचनि-कोरनि घोरनि छवै मुसिकानि में ह्वै दरसै हित ही को ।
बोलनि बापुरी डारियै वोरि लखै घनआनंद रूप लली को ॥ १२ ॥

रग रह्यो सुन जात कह्यो उनह्यो सुखसागर कुंज में आएँ ।
फैलि पर्यो रस को फगरो अति ही अगरो निबटै न चुकाएँ ।
काहूँ सँभार रही न पटू तन को तन में घनआनंद छाएँ ।
प्रेम-पगे रिझवारन की तहँ रीझ कै रीझ ही लेत बलाएँ ॥

दोहा

दानफटा मिलि छवि-छटा, रसघारनि सरसाय ।
जियत पियत और न छियत, रसिक-पपीहा पाय ॥ १४ ॥

दानघटा-रसपान के, चातक रसिक सुजान ।
चखनि लखत चसके चखत, रखत तृषित ही कान ॥ १५ ॥

दानघटा सीचत सदा, मधुर केलि नव वेलि ।
आलबाल पचि रचि सुमन, लेत रसिक रस केलि ॥ १६ ॥

इन उद्धरणों को उद्धृत करने से हमारा तात्पर्य केवल यह दिखाना है कि कृष्ण-काव्य के रचयिताओं में दानलीला का वर्णन करना एक अत्यन्त महत्वपूर्ण परम्परा थी । रसखान ने भी इस परम्परा का निश्चय ही पालन किया होगा । इनके नाम से जो दानलीला मिलती है, यद्यपि कुछ बातों को देखते हुए वह रसखान की प्रवृत्ति के अनुकूल नहीं जान पड़ती, तथापि यह कहने में सकोच नहीं होता कि अनेक बातों में यह परम्परा की प्रवृत्तियों का अनुसरण करती है, जैसा कि उपर्युक्त सूरदास और घनानन्द के छंदों से प्रकट होता है । इसे रसखान द्वारा विरचित न मानने के दो ही कारण प्रबल हैं—

१. इसकी भाषा रसखान की भाषा से मेल नहीं खाती ।

२. सुजान-रसखान में अनेक पद ऐसे हैं जो दानलीला से सम्बन्धित हैं और उनका इसमें समावेश नहीं किया गया ।

इन कारणों का समाधान इस प्रकार किया जा सकता है—

१. जहाँ तक भाषा का सम्बन्ध है, किसी भी लोकप्रिय कार्य की भाषा का वही रूप नहीं मिलता, जो उसने अपनाया है। उनकी भाषा को उनके अंशों को ने अपने अनुसार मोड़ दे दिये है। उदाहरण के लिए मीरा को लिया जा सकता है। मीरा की भाषा तो अपने मूल स्वरूप को ही छोड़ गई है। उदाहरण के लिए ये पद देखिए—

‘म्हाँ गिरधर रग राती, सैया म्हाँ ॥ टेक ॥
पचरग चोला पहर्या सखी म्हाँ, झिरमिट खेलण जाती ।
याँ झिरमिट माँ मिल्यो साँवरो, देख्याँ तग मण राती ।
जिणरो पिया परदेश बस्याँरी, लिख-लिख भेज्याँ पाती ।
म्हारा पियाँ म्हारे हीयडे बसताँ, णा आवाँ णा जाती ।
मीराँ रे प्रभु गिरधर नागर, मग जोवाँ दिण राती ॥
× × × ×

‘मैं गिरधर रंगराती, सैयाँ मैं ॥ टेक ॥
पचरंग चोला पहर सखी मैं झिरमिट खेलन जाती ।
ओह झिरमिट माँ मिल्यो साँवरो खोल मिली तन गाती ।
जिनका पिया परदेश बसत है, लिख-लिख भेजे पाती ।
मेरा पिया मेरे हीय बसत है, का कहूँ आती जाती ॥’

एक ही पद की इन दोनों भाषाओं में आकाश-पाताल का अन्तर है। इसी प्रकार रसखान की भाषा के विषय में भी कहा जा सकता है कि दानलीला के पदों की भाषा और प्रवृत्ति में इतना परिवर्तन होना असंभव नहीं है। श्रुति-पथ से चलनेवाली भाषा का एक रूप रहता भी नहीं है।

२ जहाँ तक दूसरे कारण का सम्बन्ध है, इसके विषय में यह कहा जा सकता है कि रसखान ने स्वयं किसी संकलन की योजना नहीं की। इनके भक्तों ने ही इनके छंदों का संकलन किया है। पहले दानलीला से सम्बन्धित कुछ ही पद मिले होंगे जिन्हें सुजान-रसखान में संग्रहीत कर दिया गया होगा और बाद में मिलने वाले और पदों को ‘दानलीला’ शीर्षक के अन्तर्गत रख दिया गया होगा।

इस दृष्टि से विचार करने पर यह निष्कर्ष निकालना कठिन नहीं कि प्रस्तुत दानलीला में निहित भाव रसखान के ही हैं और भाषा का परिवर्तन इनके भक्तों की देन है।

दानलीला में राधा और कृष्ण का संवाद है, ठीक वैसा ही जैसा सूरदास और घनानन्द में मिलता है। राधा दधि माँगने पर कृष्ण की भर्त्सना करती है और कृष्ण भी उस भर्त्सना का वैसे ही शब्दों में उत्तर देते हैं।

स्फुट पद—

स्फुट पदों के अन्तर्गत पाँच पद संग्रहीत हैं। प्रथम पद में कृष्ण और गोपी का संवाद है। मार्ग में जाती हुई किसी गोपी को कृष्ण छेड़ देते हैं। इस पर वह चिढ़ जाती है और कृष्ण को भला-बुरा कहने लगती है। इसी बात पर दोनों में वाद-विवाद प्रारम्भ हो जाता है। यह वाद-विवाद इस प्रकार है—

कृष्ण—यदि तू अपने मन में इतनी होशियार बनती तो इस रास्ते से निकलती ही क्यों है ?

गोपी—यह रास्ता तेरे बाबा का नहीं है। और न पहले-पहल ही इस रास्ते से जा रही हूँ। पहले भी इस रास्ते से गई थी, तब किसी ने कुछ नहीं कहा। यह रास्ता तो सभी के चलने के लिए है। अतः तुम हमारा रास्ता क्यों रोकते हो ? हमें छोड़कर या तो सीधे-सीधे यहाँ से चले जाओ, अन्यथा हम तुम्हारी शिकायत तुम्हारे पिता नन्द मिहिर से कर देगी।

दूसरे पद में भी गोपी द्वारा कृष्ण की भर्त्सना का वर्णन है। गोपी की फटकारें सुनकर कृष्ण को क्रोध आ जाता है और वे उसके सिर से दही की मटकी उतार कर पृथ्वी पर फेंक देते हैं। मटकी फूट जाती है, दही नालियों में बहने लगती है। तब विवश होकर गोपी उनसे दूसरे दिन मिलने का वचन देती है।

तीसरे पद में फाग का वर्णन है। कोई गोपी अपनी सखी को कृष्ण के साथ फाग खेलने के लिए प्रेरित करती है।

चौथे पद में भी फाग का वर्णन है। कोई गोपी कृष्ण को फाग खेलने के लिए घर से बाहर निकलने के लिए ललकारती है और जब कृष्ण बाहर आ जाते हैं तो उनसे विजली की तरह लिपट जाती है।

समीक्षा भाग

पाँचवे पद में उस विरहिणी गोपी का वर्णन है जिसे सास और नन्द ने कृष्ण से फाग खेलने की अनुमति नहीं दी।

संदिग्ध पद

इस शीर्षक के अन्तर्गत १० छंद हैं। डा० याज्ञिक ने अनेक प्रमाणों द्वारा यह सिद्ध किया है कि ये छंद रसखान-रचित नहीं हैं।

पहला पद है—

हेरत कुंज भुजा धरे स्याम सौ नेक तबै हँसती न लुगाई ।
लाज न कानि हुती जिय माँझ सुभेटत जो मग माँहि कन्हारै ।
हेरै परै न गुपाल सखी इन जोबन आनि कुमात चलाई ।
होत कहा अब के पछताए जो हाथ ते छूटि गई लरिकाई ॥'

यह सवैया किसी रामगोपाल कवि का रचा हुआ है। प्रबोध रस सुधा-सागर में इसे राजगोपाल के नाम से ही सगृहीत किया गया है। नवीन ने भी इसे राजगोपाल के नाम से ही दो बार उद्धृत किया है। एक बार परकीया के वर्णन में और दूसरी बार ब्रजकेलि के वर्णन में। सरदार कवि के श्रृंगार-संग्रह में भी यह छंद रामगोपाल के नाम से ही मिलता है। इस सवैया की तीसरी पंक्ति के पूर्वाद्ध में रायगोपाल (गुपाल) की छाप भी अंकित है।

दूसरा पद है—

'मीरा की चटक और लटक नव कुँडल की,
भौड़ की मटक मोहि आँखिन दिखाउ रे ।
मोहन सुजान गुन रूप के निधान कान्ह,
बाँसुरी बजाय तन तपन सिराउ रे ।
ए हो बनवारी बलिहारी जाऊँ तेरी आज,
मेरी कुज आय नेक मीठी तान गाउ रे ।
नंद के किसोर चितचोर मोरपख बारे,
बंसीवारे साँवरे पियारे इत आउ रे ॥'

'शिवसिंह-सरोजकार' ने इस कवित्त को आदिल कवि द्वारा रचित माना है। इसीलिए उसने 'मोहन सुजान' के स्थान पर 'आदिल सुजान' पाठ दिया है।

तीसरा छंद है—

‘तट की न घट परै मग की न पग धरै,
 घर की न कछु करै वैठी भरै सांसु री ।
 एकै सुनि लोट गई एकै लोट पोट भई,
 एकनि के दृगनि निकसि आए आंसु री ।
 कहै रसखान सो सबै ब्रज बनिता बधि,
 बधिक कहाय हाय भई कुल हांसु री ।
 करिये उपाय बांस डारियै कटाय, नाहि
 उपजैगो बांस नाहि बाजै फेरि बांसुरी ॥’

‘शिवसिंह-सरोजकार’ ने इसे रसनायक कृत माना है और ‘कहै रसखान’ के स्थान पर ‘कहै रसनायक’ पाठ दिया है ।

चौथा पद है—

‘भिक्षुक तिहारो कहाँ बलि मलशाला जहाँ,
 सर्पन को संगी कहाँ ह्वै है छीरनिधि मे ।
 ऐ री बहुरंगी बेलवारी कहाँ नाचत है,
 कीने तिरभंगा कही ह्वै है ग्वालगन मे ।
 चाउर चवैया कहाँ होय है सुदामा पास,
 विष को अहारी कहाँ पूतना के घर मे ।
 सिन्धु सुता श्रान मिली तर्क सो तरक करी,
 गिरजा मुसकाति जाति क्षारी लिए कर मे ॥

केवल प्रभुदत्त ग्रन्थचारी द्वारा सम्पादित ‘रसखान पदावली’ में यह कवित्त रसखान के नाम से मिलता है । यह कवित्त संस्कृत-कवियों की प्रवृत्ति के अधिक निकट है । अतः निश्चय ही यह संस्कृत के किसी श्लोक का अनुवाद है ।

पाँचवा पद है—

‘खेलिए फाग निसक ह्वै आज मयकमुखी कहै भाग हमारो ।
 लैहु गुलाल दुग्री कर मे पिचकारिक रंग हिये भई डारो ।
 भावै सु मोहि करो रसखान जू पाँव परो जनि धूँधट डारो ।
 बीर की सोह हों देखिहों कैसे अवीर तो आँख बचाय के डारो ॥’

समीक्षा भाग

‘स्वतंत्र भारत’

५ मार्च सन् १९२८ के होली विशेषांक में श्री पूतूलाल शर्मा ने यह सवैया रसखान के नाम से उद्धृत किया है। शर्मा जी को यह सवैया कहाँ से मिला, इसकी ओर कोई संकेत नहीं किया गया है। नवीन कवि इसे रसखान-कृत न मानकर किसी अन्य अज्ञात कवि द्वारा रचित मानते हैं। इस सवैया के अंश ‘भावै सुमोहि करो रसखान’ के स्थान पर ‘भावै तुम्हे सु करो मुहि लालन’ पाठ भी मिलता है। नवीन ने वसंत ऋतु के अन्तर्गत फाग-प्रसंग में इस सवैया को उद्धृत किया है।

छठा छंद है —

‘नन्द महर के बगर तनु, अब मेरे को जाय ।

नाहक कहै गढि जायगो, हित काँटो मन पाय ॥’

यह दोहा रसनिधि-कृत ‘रतन हजारा’ का है। हिन्दी शब्द-सागरकार ने भूल से इसे रसखान का मान लिया है।

सातवाँ छंद है—

‘सुरतर लतानि चार फल है ललित कैधौ,

कामधेनु धारा सम नेह उपजावनी ।

कैधौ चिन्तामनि की माल उर सोभित,

बिसाल कठ में धरे हैं जोति भलकावनी ।

प्रभु की कहानी ते गुसाई की मधुर बानी,

मुक्ति सुखदानी रसखानि मन भावनी ।

खौड की खिजावनी सी कद की कुठावनी सी,

सिता को सतावनी सी सुघा सकुचावनी ॥’

(वर्ष ५, खंड १, श्रावण १९८७ वि० में)

‘कल्याण’ मासिक पत्रिका में यह कवित्त प्रकाशित किया गया था। इसे रसखान-कृत मान लेने का भ्रम संभवतः ‘मुक्ति सुखदानी रसखानि मनभावनी’ के कारण हुआ है। इसे रसखान-कृत मान लेने का अभी तक कोई दृढ़ प्रमाण उपलब्ध नहीं हुआ है।

आठवाँ पद है —

‘अंग भभूत लगाये महा सुख है कोउ ऐसी सो प्रेमहु पागै ।
नाथ को नाम सुनै विगसै हियौ कान्ह को नाम सुनै अनुरागै ।
जोग लिए हरि प्यारी मिलै तो पै कान कटाये कहा दुख लागै ।
मोहन के मन मानी यही तो सबै री कहौ मिलि गोरख जागै ॥’

यह सवैया किसका रचा हुआ है, यह बताना असम्भव है । नवीन ने इसे किसी नाथ कवि का माना है । यह भ्रम नाथ शब्द के कारण हुआ है । यह शब्द नाथपथियों के लिए प्रयुक्त हुआ है ।

नवाँ पद है —

‘कैसा है यह देश निगोरा । जग होरी ब्रज होरा ।
मैं जल जमुना भरन जात रही, देखि वदन मेरा गोरा ।
मोसो कहै चलो कु जन मे, तनक-तनक से छोरा ।
परे आँखिन मे डोरा ॥
जियरा देखि डरात सखी री, लाज भरम को ओरा ।
का बूढे का लोग लुगाई, एक ते एक ठिठोरा ।
न काहू सो काहू को जोरा ।
मन मेरो हर्यो नन्द के ने सखि, चलत लगावत चोरा ।
कहै रसखान सिखाइ सखन सो, सब मेरा अंग टटोरा ।
न मानत करत निहोरा ॥’

इस पद को श्री अखिलेश मिश्र ने १८ सितम्बर १९६० के ‘स्वतंत्र भारत’ में रसखान का मानकर उद्धृत किया है । इस भ्रम का कारण ‘कहै रसखान’ वाक्यांश है । यहाँ रसखान का अर्थ कृष्ण है ।

दसवाँ पद है —

‘परम चतुर पुनि रसिक वर, कैसो हू नर होय ।
बिना प्रेम रखो लगै, बादि चतुरई सोय ॥’

गीता प्रेस गोरखपुर से प्रकाशित ‘प्रेमयोग’ नामक पुस्तक में यह दोहा रसखान के नाम से दिया गया है । अन्यथा कोई प्रमाण उपलब्ध नहीं होता ।

रसस्नान का प्रेम-दर्शन

प्रेम शब्द 'प्रिय' का भाववाचक रूप है। 'प्रिय' शब्द का अर्थ है तृप्ति प्रदान करने वाला—प्रीणातिप्रिय। अतः प्रेम उस प्रभाव को कह सकते हैं जो हृदय को आनन्द देकर तृप्त करने वाला हो।

प्रेम-भाव की महत्ता असंदिग्ध है। इसीलिए भारतीय एवं पाश्चात्य साहित्य दोनों में इसके स्वरूप का विस्तार से प्रतिपादन किया गया है। भारतीय आचार्यों के ऐतद्विषयक प्रमुख मत निम्नलिखित हैं—

१ चित्त रूपी समुद्र में जब सत्त्व गुण का जल भर जाता है तो उसमें दृष्टि, परिचय, हार्द्र तथा प्रेम नाम की चार प्रकार की तरंगें उठा करती हैं। प्रेम का मूलोपादान आत्मा का सत्त्व गुण है। विषय तो केवल निमित्त कारण है। वह उद्दीपन है और भाव की जिस स्थिति को प्रेम कहते हैं, वह अनुभूति की चरम कोटि है। उसमें पूर्व तीन विकास-क्रम दृष्टि परिचय और हार्द्र समाप्त हो लेते हैं। इनमें दृष्टि चित्त की वह वृत्ति है जिसमें चंचल चित्त विषय की ओर हठात् प्रवृत्त होता है। परिचय से विषय के विविध संस्कार मन में उत्पन्न होते हैं। दोषों पर ध्यान न देना हार्द्र है। जीव में आत्मा का ही रूप जो रस है वह जिस उपाधि का आश्रय लेकर शृंगार बनता है, वह उपाधि प्रेम है; अर्थात् प्रेम रसमय आत्मा के बहिर्विकास का साधन है, उसी का अभूत तत्त्व है।

—प्रेमरसायनकार विश्वनाथ

२. अंतःकरण की वृत्ति जिससे वस्तु के संयोगकाल में भी वियोग-सा बना रहता है, प्रेम है।

—शांडिल्य

३ चित्त की द्रवावस्था को प्रेम कहते हैं।

—आचार्य भरत

८. उन्माद — उन्माद का अर्थ है पागलपन । प्रेमी में जब अपने प्रिय के प्रति इतना ममत्व आ जाता है कि वह उसके बिना पागल-सा बन जाता है तो उसकी यह दशा उन्माद कहलाती है । उन्माद गुण के उदय होने पर महाभाव की दशा आती है । इस दशा में सयोग के कल्प निमेष की भाँति और वियोग के निमेष कल्प की भाँति प्रतीत होते हैं ।

प्रेम के गुणों पर दृष्टिपात करने के उपरांत अब यह जान लेना आवश्यक है कि प्रेम के कितने भेद होते हैं । इस वर्गीकरण के तीन आधार हो सकते हैं—

१. प्रेम की यात्रा का आधार ।
२. प्रेम के आलम्बन का आधार ।
३. प्रेम के स्वरूप का आधार ।

प्रेम की यात्रा के आधार पर प्रेम के तीन भेद हैं—उत्तम, मध्यम और अधम । प्रेम के आलम्बन के आधार पर प्रेम के अपार भेद हो सकते हैं । यथा—देश-प्रेम, जाति-प्रेम, मानव-प्रेम, पशु-प्रेम, पक्षी-प्रेम, पुस्तक-प्रेम, दुग्ध-प्रेम, आदि । प्रेम के स्वरूप के आधार पर प्रेम के दो भेद हैं—पार्थिव प्रेम और अपार्थिव प्रेम । पार्थिव प्रेम के भी दो भेद होते हैं—प्राकृत प्रेम और सात्विक प्रेम । इन्हे पाश्चात्य आचार्यों ने क्रमशः 'नैच्यूरल लव' (Natural Love) और 'प्लेटोनिक लव' (Platonic Love) कहा है ।

सहज मानव-प्रेम ही को प्रकृत प्रेम कहा जाता है । पार्थिव आलम्बन के प्रति पार्थिव आश्रय की सहज वासनात्मक प्रणयाभिव्यक्तियाँ इसी प्रेम के अन्तर्गत आती हैं । दूसरे शब्दों में कह सकते हैं कि नर-नारी की सहज प्रीति ही प्रकृत प्रेम है । ऐसे प्रेम का आलम्बन पार्थिव होता है, अतः शरीर-सुख की उत्कट इच्छा से प्रेरित होकर जिस प्रेम का निवेदन किया जाता है, वह स्वभावतः ही वासनात्मक होता है । रीतिकालीन काव्य में ऐसे ही वासनात्मक प्रेम की अभिव्यक्ति है ।

सात्विक प्रेम इस प्रेम से भिन्न होता है । प्लेटो ने आत्मा की प्रीति का वर्णन किया है । उसने पार्थिव आलम्बन के प्रति अशरीरी अकाक्षा अथवा वासनायुक्त शुद्ध प्रीति और शुद्ध राग को ही सात्विक प्रेम की संज्ञा दी है ।

सहज ऐन्द्रिय सुख से ऊपर का प्रेम ही आत्मा की प्रीति है। ऐसे प्रेम में वस्तुतः वासना का परिष्कार एवं उन्नयन हो जाता है और वह वासना त्याग तथा सयम का प्रतिरूप बन जाती है।

जिस प्रेम का आलम्बन अपार्थिव हो, उसे अपार्थिव प्रेम कहते हैं। अपार्थिव प्रेम को चार भागों में विभक्त किया जा सकता है—

१. अपार्थिव आलम्बन के प्रति अपार्थिव आश्रय की वासनामूलक प्रणयाभिव्यक्ति।

२. सगुण साकार अपार्थिव आलम्बन के प्रति अपार्थिव आश्रय की दाम्पत्य प्रणयाभिव्यक्ति।

३. सगुण निराकार के प्रति मानव-आत्मा की रीति-भावना।

४. निर्गुण निराकार के प्रति मानव आत्मा की ज्ञानमूलक आनन्दबद्ध प्रणयाभिव्यक्ति।

अपार्थिव आलम्बन के प्रति अपार्थिव आश्रय की वासनामूलक प्रणयाभिव्यक्ति सगुण साकार के प्रति ही सम्भव है। अतः सगुण और साकार अपार्थिव आलम्बन आश्रय की भावना के लिए नितात आवश्यक है। पार्वती-शिव, राधा-कृष्ण, सीता-राम का शक्ति और परम पुरुष के रूप में वर्णन अपार्थिव प्रणयमूलक प्रेम है। सगुण साकार अपार्थिव आलम्बन के प्रति अपार्थिव आश्रय की दाम्पत्य प्रणयाभिव्यक्ति में पार्थिव आश्रय सगुण और साकार अपार्थिव आश्रय में वासना का आरोप कर लेता है। फलतः ऐसे प्रेम में ऐन्द्रिय भावना का समावेश हो जाता है, किन्तु आलम्बन की अपार्थिवता के कारण ऐन्द्रिय भावना उदात्त रूप में ही व्यक्त होती है। सगुण निराकार के प्रति मानव-आत्मा की रीति-भावना में पार्थिव आश्रय का रति-भाव साकार के प्रति ही सम्भव है, निराकार के प्रति नहीं। इसका कारण यह है कि निराकार ब्रह्म प्रेम का आश्रय नहीं हो सकता। प्रेम के लिए प्रतिपादन, प्रतिक्रिया आवश्यक है जो सगुण द्वारा ही सम्भव है, निर्गुण द्वारा नहीं। अतः साहित्य में कई स्थानों पर अपार्थिव आलम्बन को सगुण निराकार-रूप में चित्रित करके आत्मा का उसमें रति-भाव आरोपित किया है। सूफी कवियों की प्रेममयी तथा सन्त-कवियों की रहस्यमयी भक्ति ऐसी ही है। निर्गुण और निराकार के प्रति रति-भाव का प्रद-

ज्ञान नहीं हो सकता, अतः निर्गुण निराकार के प्रति मानव-आत्मा की ज्ञानवद्ध प्रणयाभिव्यक्ति में प्रेम को आनंदमग्नता की संज्ञा दी जाती है। ज्ञानमूलक होने के कारण इस प्रेम के क्षेत्र से बाहर की वस्तु माना जा सकता है, किन्तु तथ्य यह नहीं है। इस अपार्थिव सम्बन्ध में भावना की मग्नता है, इसीलिए इसे प्रेम ही कहा जायेगा। उपनिषदों में आत्मा के इसी आनंद की व्याख्या की गई है।

रसखान का प्रेम-दर्शन

रसखान ने अपार्थिव प्रेम का निरूपण किया है। इन्होंने स्पष्ट कहा है कि राधा और कृष्ण ये दोनों ही प्रेम के आलम्बन हैं, प्रेम वाटिका के मालिन और माली हैं। प्रेम-तत्त्व सुबोध और सर्वगम्य नहीं है। अतः इस तत्त्व को सभी मनुष्य नहीं जान सकते। पर विडम्बना यह है कि प्रेम के ज्ञाता होने का सभी दावा करते हैं। जो व्यक्ति प्रेम-तत्त्व को जान जाता है, वह ससार के सभी दुखों एवं क्लेशों से मुक्त हो जाता है। प्रेम अगम, अनुपम, अमित और सागर के समान गंभीर होता है, जो इस प्रेम-सागर के समीप आ जाता है वह फिर यहाँ से लौट कर वापिस नहीं जाता। प्रेम कमल-नाल से भी पतला होता है, तलवार की धार पर चलने की भाँति दुष्कर होता है। इसका मार्ग सीधा भी है और टेढ़ा भी। इस प्रकार प्रेम-तत्त्व अनुपम और विलक्षण है। ज्ञान की शोभा भी प्रेम से ही है। कोई व्यक्ति चाहे जितना गुणवान बन जाय, पर यदि उसमें प्रेम-तत्त्व नहीं है तो उसका ज्ञान फीका और निस्सार है। वेद, पुराण, आगम, स्तुति सभी का सार प्रेम है। बिना प्रेम के हृदय में भगवद्-भक्ति का अंकुर प्रस्फुटित नहीं होता। प्रेम के बिना किसी भी प्रकार के आनन्द का अनुभव नहीं हो सकता। प्रेम ज्ञान, कर्म आदि सभी उपलब्धियों से श्रेष्ठ है, क्योंकि ज्ञान, कर्म, उपासना ये सब अहंकार के कारण हैं। जब तक हृदय में प्रेमोत्पत्ति नहीं होती, तब तक किसी भी साधना अथवा कर्म के प्रति मनुष्य में दृढ़ निश्चय की भावना नहीं आती।

जो प्रेम संसारिक आकर्षणों से उत्पन्न हुआ करता है, वह पार्थिव प्रेम है। इसे सच्चा प्रेम नहीं कहा जा सकता। सच्चे प्रेम में, अपार्थिव प्रेम में, गुण, यौवन, रूप, धन स्वार्थ और कामना आदि कारण नहीं होते; अर्थात् यह सबसे रहित मानस का सहज भाव होता है। प्रेम भगवान् की भाँति सर्व-

व्यापक तत्त्व है। इसीलिए इस ससार में अन्य सभी वस्तुओं को देखा जा सकता है, उनका वर्णन किया जा सकता है, पर प्रेम और भगवान् ये दो तत्त्व ऐसे हैं जिन्हें न तो देखा जा सकता है और न जिनका वर्णन किया जा सकता है। प्रेम ऐसा ज्ञान है जिसे प्राप्त कर लेने के पश्चात् अन्य किसी ज्ञान को प्राप्त करने की आवश्यकता नहीं रह जाती। मित्र, स्त्री, बन्धु, पुत्र, आदि के प्रति मनुष्य के मन में यद्यपि स्वाभाविक प्रेम होता है, पर इसे सच्चा प्रेम नहीं कहा जा सकता। सच्चा प्रेम किसी भी प्रकार के कारण की अपेक्षा नहीं रखता। वह सदैव समान रहता है और सदैव प्रिय की हित-कामनाओं से परिपूर्ण होता है। इस ससार में अपने तन की ममता सर्वाधिक मानी जाती है, पर सच्चा प्रेम इससे भी अधिक प्यारा होता है। इस प्रेम को प्राप्त कर लेने के पश्चात् प्रभु-प्राप्ति की भी इच्छा नहीं रह जाती। ऐसा ही प्रेम अलौकिक शुद्ध, शुभ और सरस कहलाता है।

इस प्रेम के अनेक नाम तथा रूप हैं। कोई इसे फाँसी कहता है कोई तलवार कहता है, कोई नेजा कहता है, कोई भाला कहता है, कोई बरछी कहता है, कोई तीर कहता है और कोई अनोखी रक्षा करनेवाली ढाल बताता है। इस प्रेम की मार इतनी सरस होती है कि जिसको यह मार पड़ जाये, वह इसके आनन्द में सब कुछ भूल जाता है। इस प्रेम में द्वैत भावना नहीं रहती, वरन् दोनों प्रेमी मिलकर एकाकार हो जाते हैं। जहाँ द्वैत-भावना बनी रहेगी, वहाँ सच्चे प्रेम का अभाव होगा। इसीलिए इस प्रेम को सब प्रकार की मुक्तियों से श्रेष्ठ माना गया है। प्रेम का अभाव नाश का कारण है। प्रेम से ही ससार की स्थिति है। भगवान् भी प्रेम के आधीन होते हैं। जो प्रेम आनन्दपूर्ण, स्वाभाविक, निस्वार्थ, अचल, महान् और एकरस होता है, वही शुद्ध प्रेम कहलाता है। शुद्ध प्रेम स्वयं ही अकुर है, स्वयं ही बीज है, स्वयं ही सिचन है और स्वयं ही डाल, पात, फल तथा पूत है। यही स्वयं कारण और कार्य है, कर्त्ता, कम, क्रिया और करण भी यही स्वयं है। कहने का भाव यह है कि अलौकिक प्रेम की महत्ता, और उसका स्वरूप वैविध्यपूर्ण है, ठीक उसी प्रकार जिस प्रकार ईश्वर नाना रूपधारी एवं नामधारी है।

रसखान का यह प्रेम-दर्शन भारतीय पद्धति पर आधारित है। निम्नलिखित

कतिपय तुलनात्मक उद्धरणों से यह मान्यता सिद्ध होती है—

१. 'लोक वेद मरजाद सब, लाज काज संदेह ।
देत बहाये प्रेम करि, विधि-निषेध को नेह ॥'

—रसखान

'सर्वमेव तदा सिद्धं, कर्त्तव्यं ना विशिष्यते ।'

—बोधसार

२. 'बिन गुन जोबन रूप धन, बिन स्वारथ हित जानि ।
शुद्ध कामना तें रहित, प्रेम सकल रसखानि ॥'

—रसखान

'गुणरहित, कामनारहितं प्रतिक्षण वर्धमानमविच्छन्न सूक्ष्मतरमनुभव-
रूपम् ।'

—नारद-भक्तिसूत्र

३. 'जिहि पाए वैकुण्ठ अरु, हरिहू की नहि चाहि ।
सोइ अलौकिक शुद्ध सुभ, सरस सुप्रेम कहाहि ॥'

—रसखान

'यत्प्राप्य न किञ्चिद्वाञ्छति, शोचति, न द्वेष्टि, न रमते, नोत्साहो
भवति ।'

—नारद-भक्तिसूत्र

४. 'दो मन इक होते सुन्यौ, पै वह प्रेम न आहि ।
होय जबहि हैं तनहुँ इक, सोई प्रेम कहाहि ॥'

—रसखान

'प्रेमानन्दप्रकारेण द्वैत विस्मरण गतम् ।

—बोधसार

५. 'याही तें सब मुक्ति ते, लही बडाई प्रेम ।
प्रेम भए नसि जाहि सब, बँधे जगत के नेम ॥'

—रसखान

'सालोक्य साष्टि सामीप्य सारूप्यैकत्वमप्युत ।

दीयमानं न गृह्णन्ति विना मत्सेवनं जनाः ॥'

—भागवत

६. 'हरि के सब आधीन पै, हरी प्रेम आधीन ।
याही तें हरि आपु ही, याहि बडप्पन दीन ॥'

—रसखान

'अह भक्तपराधीनो ह्य स्वतन्त्र इव द्विज ।
साधुभिर्ग्रस्त हृदयो भक्तैर्भक्तजनप्रियः ॥'

—भागवत

अन्त में, रसखान का प्रेम दर्शन भारतीय दर्शन पर आधृत है । भारतीय दर्शन में प्रेम को जिस रूप में वर्णित किया है, शुद्ध प्रेम का जो वैविध्य दिखाया है, वही रूप रसखान ने प्रेम-वाटिका में प्रतिपादित किया है ।

—

: ५ :

रसखान की भक्ति-पद्धति

‘भक्ति’ शब्द की उत्पत्ति ‘भज्’ धातु से हुई है जिसका अर्थ है भजन । इसलिए भक्ति का अर्थ हुआ भगवान् का भजन अथवा स्मरण । मनुष्य आनन्द प्राप्त करने का अनादिकाल से ही इच्छुक रहा है और इसके लिए सदैव प्रयत्न-शील रहा है । इन्द्रियो के सहयोग से भी आनन्द प्राप्त होता है, पर इसे वास्तविक आनन्द नहीं कहा जा सकता, क्योंकि यह सासारिक, दानिक और दुःख-पर्यवसायी है । इसी सत्य को गीता में इन शब्दों में प्रतिपादित किया गया है—

‘ये हि संस्पर्शजाभोगा दुःखयोनय एव ते ।

आद्यन्तवन्तः कौन्तेय न तेषु रमते बुधः ॥’

इसीलिए बुद्धिमान लोग इन सासारिक सुखों की ओर आकर्षित नहीं होते । महर्षि पतञ्जलि ने भी विवेकी के लिए संसार के समस्त भोगों को दुःख का कारण बताया है—

‘परिणामताप सस्कार दुःखैर्गुणवृत्तिविरोधाच्च सर्वमेवदुःखं विवेकिनः ।’

गभी आचार्यों ने इस मत को एक स्वर से स्वीकार किया है कि वास्तविक आनन्द तो भगवत्सान्निध्य से ही प्राप्त हो सकता है । इसी सान्निध्य के सान्निध्य का प्रयास भक्ति है । इस सान्निध्य को प्राप्त करने के लिए दो मार्ग प्रमुख माने गये हैं—प्रवृत्तिमार्ग और निवृत्तिमार्ग । प्रवृत्ति मार्ग का अर्थ है शरीर की स्वाभाविक प्रवृत्तियों द्वारा परमेश्वर को प्राप्त करना, अर्थात् विषयों को भगवदोन्मुख कर देना । इस मार्ग के दो भेद हैं—कर्ममार्ग और भक्तिमार्ग । निवृत्ति मार्ग का अर्थ है प्रतिकूल वृत्तियों की निवृत्ति करके विवेक द्वारा अनात्म को त्यागते हुए भगवान् का साक्षात्कार । इस मार्ग के भी दो भेद हैं—योगमार्ग और ज्ञानमार्ग । योगमार्ग का अर्थ है विषयों से चित्तवृत्तियों का निरोध करके ईश्वर में सगमन करना, और ज्ञानमार्ग का अर्थ है आत्म-अनात्म का भेद

करना । निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि भगवत्प्राप्ति के चार मार्ग हैं—कर्म-मार्ग, भक्तिमार्ग, योगमार्ग और ज्ञानमार्ग । इन मार्गों में भक्तिमार्ग को ही सर्वश्रेष्ठ बताया गया है, क्योंकि यह सहज साध्य है—

‘अन्यस्मात् सौलभ्य भक्तौ ।’

आचार्यों द्वारा भक्ति की भिन्न-भिन्न परिभाषाएँ दी गई हैं । महर्षि नारद के अनुसार भक्ति परमप्रेमरूपा और अमृतस्वरूपा है जिसे प्राप्त करके मनुष्य सिद्ध, अमर तथा तृप्त हो जाता है—

‘त्वस्मिन् परमप्रेमरूपा अमृतरूपा च । यत्प्रलब्ध्वा पुमान् सिद्धो भवति, अमृतो भवति, तृप्तो भवति ।’

भक्तराज शाङ्किल्य ने ईश्वर में प्रगाढ अनुरक्ति को भक्ति कहा है—

‘सापरानुरक्तिरीश्वरे ।’

भागवतकार के अनुसार भासारिक विषयो का ज्ञान देने वाली इन्द्रियो की स्वाभाविक प्रवृत्ति निष्काम रूप से जब भगवदोन्मुख हो जाती है तो उसे भक्ति कहते हैं—

‘देवानां गुणलिंगानामनुश्रविक कर्मणा सत्त्वं एवैक मनसो वृत्तिः स्वाभाविकी तु याऽनिमित्ता भागवती भक्तिः सिद्धेर्गरीयसी ।’

रूपगोस्वामी के मत से श्रीकृष्ण का अनुकूल रूप में अनुशीलन जिसमें अन्य किसी प्रकार की अभिलाषा न हो और जिस पर ज्ञान, कर्म आदि का आवरण न हो, भक्ति कहलाता है—

‘अत्माभिलाषिता शून्य ज्ञान कर्मघनावृतम् ।’

‘आनुकूलेन कृष्णानुशीलं भक्तिरुत्तमा ॥’

बल्लभाचार्य के अनुचार भगवान् के महात्म्य का ज्ञान रखते हुए उनमें सबसे अधिक दृढ स्नेह करना भक्ति है—

‘महात्म्य ज्ञानपूर्वस्तु सुदृढ सर्वतोऽधिकः ।’

‘स्नेहो भक्तिरिति प्रोक्तस्तयामुक्तिर्न चान्यथा ॥’

इन सभी परिभाषाओं में एक तत्त्व सर्वथा विद्यमान है । वह है ईश्वर के प्रति अनुराग । प्रायः सभी भक्त-सम्प्रदायों ने अनुराग को भक्ति का अनिवार्य अंग माना है । बल्लभीय सम्प्रदायी हरिराम अनुराग की महत्ता इन शब्दों में प्रतिष्ठित करते हैं—

‘सो ठाकुर जी भक्त के स्नेहवश होय भक्त के पाछे-पाछे डोलते है । सो जहाँ ताई ऐसो स्नेह नही होय तहाँ ताई महात्म्य रखनो.....तासो महात्म्य विचारै और अपराध सो डरपै तो कृपा होय । जब सर्वोपरि स्नेह होयगो तब आपही ते स्नेह एसो पदार्थ जो महात्म्य कूँ छुडाय देयगो ।’

भक्ति के अनेक भेद है । इसके विभाजन के मुख्यतया चार आधार माने जाते हैं—

१. साधना का आधार ।
२. अधिकारी का आधार ।
३. प्रेरणा का आधार ।
४. विकास का आधार ।

साधना के आधार पर, भागवतकार ने भक्ति के नौ भेद किये हैं—श्रवण, कीर्तन, स्मरण, पादसेवा, अर्चन, वन्दन, दास्य, सख्य और आत्मनिवेदन । अष्टछाप के प्रमुख कवि नन्ददास ने पहले छ भेदों को दो भागों के अन्तर्गत सपादित किया है—नादमार्ग और रसमार्ग । पहले तीन प्रकार अर्थात् श्रवण, कीर्तन और स्मरण नादमार्ग के और पादसेवा, अर्चन तथा वन्दन रसमार्ग के अन्तर्गत आते हैं ।

अधिकारी के आधार पर भक्ति के चार भेद माने गये हैं—सात्विकी, राजसी, तामसी और निर्गुण । जो भक्त पापों के नाश के लिए अपने पाप-पुण्य सब भगवदार्पित कर देता है और अनन्य भाव से ईश्वर में आसक्ति रखता है, उसकी भक्ति सात्विकी कहलाती है, राजसी भक्ति लौकिक विषय, यश, ऐश्वर्य आदि को दृष्टि में रखकर की जाती है । तामसी भक्ति में हिंसा, दम्भ, क्रोधादि के वशीभूत होकर इच्छाओं की पूर्ति के लिए भगवत-उपासना की जाती है । निर्गुण भक्ति में परमेश्वर को सब में सम भाव से व्याप्त जानते हुए अपने समस्त कर्म परमेश्वर को अर्पित किये जाते हैं । इसमें निष्काम आसक्ति रहती है ।

प्रेरणा के आधार पर भक्ति के अनेक भेद हो सकते हैं, क्योंकि प्रेरणाओं की कोई संख्या निर्धारित नहीं की जा सकती । गीता में आर्त, जिज्ञासु, अर्थार्थी और ज्ञानी ये चार प्रकार के भक्त बताये गये हैं—

‘चतुर्विधा भजन्ते मा जना सुकृतिनाजुन ।

आर्तो जिज्ञासुरर्थार्थी ज्ञानी च भरतर्षभ ।’

इन्ही भक्तों के आधार पर भक्ति के भी चार भेद किये जा सकते हैं । आर्त भक्त की भक्ति तामसी, जिज्ञासु की सात्विकी, अर्थार्थी की राजसी और ज्ञानी की निर्गुण कहलाती है ।

रूपगोस्वामी ने, विकास के आधार पर भक्ति के तीन भेद साने हैं— साधनरूपा, भावरूपा और प्रेमरूपा । साधनरूपा भक्ति भक्त की प्रथम अवस्था की द्योतिका है । इसमें भक्त का परमेश्वर से पूर्ण राग तो नहीं होता, किन्तु अर्चना आदि कर्मों के द्वारा वह उसे प्राप्त करने का प्रयास करता है । भावरूपा भक्ति उसका साध्य होती है । भावरूपा भक्ति के दो भेद हैं— वैधी और और रागानुग । जब परमेश्वर में स्वतः राग नहीं होता, वरन् शास्त्रों के शासन से अर्जित किया जाता है तो उसे वैधी भक्ति कहते हैं । वैधी भक्ति में शास्त्र-ज्ञान का महत्वपूर्ण स्थान होता है । रागानुसार भक्ति में अनुराग का प्राधान्य होता है । इसमें शास्त्रीय ज्ञान की अपेक्षा नहीं होती, वरन् भावना का अतिरेक आवश्यक है । परमेश्वर की ह्लादिनी, सगिनी और सवित् नाम की जो तीन शक्तियाँ हैं इनमें से पहली का जीवो में प्रेम-रूप से प्रकट होने वाला अंश शुद्ध तत्त्व कहलाता है । यही भाव है । इसी भाव की भक्ति को भावरूपा भक्ति कहते हैं । हृदय जब भाव में अत्यन्त द्रवीभूत और प्रगाढ़ ममता से संयुक्त हो जाता है तो यही प्रगाढ़ावस्था प्रेम कहलाती है । इस भाव की भक्ति को प्रेमरूपा भक्ति कहते हैं । साधनरूपा भक्ति से प्रेमरूपा भक्ति तक आने के लिए भक्त को भक्ति-विकास के अनेक सोपानों को पार करना पड़ता है ।

भक्ति के स्वरूप पर विहगम दृष्टिपात करने के पश्चात् अब उन कृष्ण-भक्ति के समुदायों का संक्षिप्त परिचय जान लेना आवश्यक है जिन्होंने भक्ति-जगत् एव साहित्य को प्रचुरता से प्रभावित किया है । इन समुदायों में से मुख्य सम्प्रदाय ये हैं—

१. वल्लभ सम्प्रदाय ।

२. गौडीय सम्प्रदाय ।

३. राधावल्लभीय सम्प्रदाय ।

४. सखी-सम्प्रदाय ।

५. निम्बाक सम्प्रदाय ।

बल्लभ सम्प्रदाय के प्रवर्तक बल्लभाचार्य है । बल्लभाचार्य ने प्रेम-लक्षणा भक्ति को महत्ता प्रदान की है और नवधा भक्ति का प्रतिपादन किया है । इस सम्प्रदाय में कृष्ण-भक्ति को प्रधानता दी गई है और राधा को उनकी (भगवान् की) आल्हादिनी शक्ति अथवा रसशक्ति के रूप में स्वीकार किया गया है । कृष्ण-भक्त साहित्य में इस सम्प्रदाय को सर्वाधिक मान्यता मिली है और इसका प्रचार सबसे अधिक हुआ है ।

गौडीय सम्प्रदाय के प्रवर्तक चैतन्य महाप्रभु हैं । इस सम्प्रदाय में राधा और कृष्ण के समान महत्त्व को स्वीकार किया गया है और दोनों की समान पूजा का विधान माना गया है । इसमें सत्संग, नाम तथा लीला-कीर्तन, ब्रज-वृन्दावन, कृष्ण-मूर्ति की सेवा पूजा आदि भक्ति के साधनों को विशेष महत्त्व दिया गया है ।

राधावल्लभसिन्धु सम्प्रदाय के प्रवर्तक स्वामी हितहरिवंश हैं । इस सम्प्रदाय में राधा की पूजा को प्रधानता दी गई है, यद्यपि कृष्ण-पूजा की भी उपेक्षा नहीं है । इसमें राधा-कृष्ण की कुंजलीला तथा शृंगारकेलि को प्रधानता देने के कारण रति-क्रीडा का ही एक मात्र आलम्बन ग्रहण किया गया है । इसमें विप्रलम्भ शृंगार का अभाव तो है, किन्तु सूक्ष्म विरह की अनोखी सृष्टि की गई है ।

सखी सम्प्रदाय का दूसरा नाम हरिदासी सम्प्रदाय भी है, क्योंकि हरिदास इस सम्प्रदाय के प्रवर्तक हैं । इस सम्प्रदाय में राधा-कृष्ण की युगल-उपासना का विधान सखी-भाव से किया गया है ।

निम्बार्क-सम्प्रदाय के प्रवर्तक आचार्य निम्बार्क हैं । बल्लभ और गौडीय सम्प्रदायों की भाँति इस सम्प्रदाय में भी मधुर भाव की उत्कृष्टता स्वीकार की गई है । इस सम्प्रदाय में कृष्ण को आराध्य माना गया है जो अपनी प्रेम और माधुर्य की अधिष्ठात्री शक्ति राधा तथा अन्य अल्लादिनी गोपी-स्वरूपा शक्तियों से घिरे रहते हैं । इस सम्प्रदाय में कृष्णोपासना के साथ-साथ राधा की उपासना का भी विशेष महत्त्व माना गया है ।

रसखान की भक्ति-पद्धति

रसखान बल्लभ सम्प्रदाय के अनुयायी है, अतः इनकी भक्ति-पद्धति वैष्णव-भक्ति है। वैष्णव भक्ति-पद्धति में नवधा भक्ति को पूर्ण महत्त्व दिया गया है। नवधा भक्ति के नौ सोपान हैं—श्रवण, कीर्तन, स्मरण, पद-सेवा, अर्चन, वन्दन, दास्य, सख्य और आत्मनिवेदन। सूरदास ने इसमें मधुर भाव को जोड़कर इसके दस सोपान बना दिये हैं। श्रवण में भक्त अपने आराध्य के गुणों को सुनता है, कीर्तन के द्वारा उन्हें प्रकट करना है,। नाचकर तथा गाकर सुनाता है। पद-सेवा का अर्थ है भगवान के चरणों की पूजा करना अथवा उनके चरणों की महत्ता का वर्णन करना। अर्चन का अर्थ है पूजा करना, वन्दन का अर्थ है स्तुति करना। दास्य में भक्त दास-भाव से अपने आराध्य की सेवा करता है अथवा उसका गुण-गान करता है और आत्मनिवेदन में भक्त अपने भगवान के समक्ष अपना हृदय खोलकर रख देता है। रसखान के काव्य में ये सभी सोपान प्राप्त नहीं होते। वस्तुतः रसखान किसी बाँधी हुई पद्धति पर चलनेवाले भक्त नहीं है। ये प्रेमोमग के भक्त हैं, अतः इनके काव्य में माधुर्य भक्ति ही अधिक दिखाई पड़ती है।

माधुर्य भक्ति के तीन अंग प्रमुख हैं—रूप-वर्णन, विरह-वर्णन और पूर्णतया आत्मसमर्पण। रसखान-काव्य में ये तीनों अंग पाये जाते हैं। रूप-वर्णन के कुछ उदाहरण देखिए—

१. 'मोतिन माल बनी नट के, लटकी लटवा लट घूँघरवारी।
अग ही अंग जराव लसै अह सीस लसै पगिया जरतारी।
पूरव पुन्यनि तैं रसखानि सु मोहिनी मूरति आनि निहारी।
चार्यो दिसानि की लै छवि आनि कै झाँके झरोखे में बाँकेबिहारी ॥'

२. 'गोरज विराजै भाल लहलही बनमाल,
आगे गैयाँ पाछेँ ग्वाल गावै मृदु तानि री।
तैसी धुनि बाँसुरी की मधुर मधुर जैसी,
बक चितवनि मद मंद मुसकानि री।

कदम बिटप के निकट तटनी के तट,
 अटा चढि चाहि पीत-पट फहरानि री ।
 रस वरसावै तन तपनि बुझावै नैन,
 आननि रिझावै वह आवै रसखानि री ।

- ३ 'नैननि बक बिसाल के वाननि भेलि सकै अस कौन नवेली ।
 लोलत है हिय तीछन कोर मुमार गिरी तिय कोटिक हेली ।
 छोडै नही छिनहुँ रसखानि सु लागी फिरै द्रुम सो जनु वेली ।
 रौरि परि छवि की ब्रजमडल कुंडल गडन कुंतल केली ॥'
- ४ 'वांकी बडी अखियाँ बडरारे कपोलनि बोलनि की कल वानी ।
 सुन्दर हास सुधानिधि सो मुख मूरति रंग मुघारस-सानी ।
 ऐसी नवेली ने देखे कहूँ ब्रजराज लला अति ही सुखदानी ।
 डोलति है वन वीथिन में रसखानि मनोहर रूप लुभानी ॥'
५. 'लाल लमै पगिया सब के पट कोटि सुगंधनि भीने ।
 अंगनि अग सजे सब ही रसखानि अनेक जराउ नवीने ।
 मुकता गल माल लसै सबके सब ग्वार कुमार सिगार सो कीने ।
 पै सिगरे ब्रज बेहरि ही हरि ही कै हरै हियरा हरि लीने ॥'
- ६ 'साँझ समै जिहि देखती ही तिहि पेखन का की मन यो 'ललकै री ।
 ऊँची अटान चढी ब्रजवान सु लाज मनेह दुरै उझकै री ।
 गोघन धूरि की धूँधरी में तिनकी छवि यो रसखानि तकै री ।
 पावक के गिरि ते बुझि मानो धुँवा-लपटी लपटै लपकै री ॥'

जिस प्रकार रसखान ने कृष्ण के रूप का, सौन्दर्य का वर्णन किया है, उसी प्रकार राधा के सौन्दर्य का भी विस्तार से वर्णन किया है । कुछ उदाहरण प्रस्तुत है—

१. 'प्यारी की चाह सिगार तरंगनि जाय लगी रति की दुति कूलनि ।
 जीवन जेब कहा कहियै उर पै छवि मजु अनेक दुकूलनि ।

कंचुकी सेत मे जावक बिन्दु बिलोकि मरै मघवानि की सूलनि ।
पूजे है आजु मनौ रसखान सुभूत के भूप बंधूक के फूलनि ॥'

२. 'बाँकी मरोर गही भृकुटीन लगी अँखियाँ तिरछानि निया की ।
टाँक सी लॉक भई रसखानि सुदामिनि तें दुति दूनी हिमा की ।
सोहै तरग अनंग की अगनि - ओप उरोज उठी छतिया की ।
जोबन-जोति सु यो दमकै उसकाइ दई मनो बाती दिया की ॥'

३. 'बासर तूँ जु कहूँ निकरै रबि को रथ मांझ अकास अरै री ।
रैन यहै गति है रसखानि छागकर आँगन ते न टरै री ।
औस निस्वास चल्थोई करै निसिद्यौस की आसन पाय करै री ।
तेरो न जात कछु दिन राति बिचारै बटोही की बाट परै री ॥'

४ 'प्रेम-कथानि की बात चले चमकै चित चचलता चिनगारी ।
लोचन बक बिलोकनि लोलनि बोलनि मै बतिया रसकारी ।
सोहै तरग अनंग की अगनि कोमल यो झमकै झनकारी ।
पूतरी खेतत ही पटकी रसखानि सु चौपर खेलत प्यारी ॥'

५ 'जाको लसै मुख चद समान कमानि सी भौह गुमान हरै ।
दीरघ नैन सरोजहुँ तै मृग खजन मीन की पाँत दरै ।
रसखान उरोज निहारत ही मुनि कौन समाधिन जाहि टरै ।
जिहि नीके नवै कटि हार के भार सो तासो कहै सब काम करै ॥'

इस प्रकार रसखान ने रूप का वर्णन काफी विस्तार से किया है । माधुर्य भक्ति की सफल अभिव्यजना के लिए यह विस्तार आवश्यक भी है ।

माधुर्य भक्ति का दूसरा अंग है विरह-वर्णन । रसखान ने इस अंग का भी काफी विस्तार से वर्णन किया है । सारे बागो मे फूल खिल गये है । बसन्त के आगमन के कारण भौरे उन पर गूँज रहे है । कोयल को कू-कू सुनकर सबके प्रिय विदेश से वापिस लौट चले है, लेकिन कृष्ण इतने कठोर हैं कि वे इस मादक ऋतु की तनिक भी चिन्ता नहीं करते । जब कोयल बोलती है तो कृष्ण की प्रियतमा के हृदय मे वह बरछी के समान लगती है—

‘फूलत फूल सवै वन बागन बोलत भीर वसंत के आवत ।
 कोयल की किलकार मुनै सव कंत विदेसन ते सव आवत ।
 ऐसे कठोर महा रसखान जू नेकहु मोरी ये पीर न पावत ।
 हूक सी सालन है हिय में जब वैरिन कोयल कूक सुनावत ॥

वियोग के कारण विरहिणी के शरीर की द्युति मन्द पड़ गई है । उसका कमल जैसा कोमल मुख भी मुरझा गया है । उसका हृदय की साँसे लपट बनकर जलने लगी हैं । ऐसे ही अवसर पर जब उसे यह सूचना मिलती है कि उसका प्रियतम आ गया है तो उसकी क्षीण होती हुई शरीर द्युति इस प्रकार दमक उठती है मानो दिये की बाती उकसा दी हो —

‘रसखान मुनाह वियोग के ताप मलीन महा द्युति देह तिया की ।
 पंकज सी मुख गी मुरझाय लगी लपटै वरै स्वास हिमा की ।
 ऐसे मे आवत कान्ह सुने हुलसै सुतनी तरकी अँगिया की ।
 यो जग जोति उठी तन की उकसाय दई मनो बाती दिया की ॥’

विरह वर्णन में कही-कही रसखान परम्परा से इतने जड़ीभूत हो गये हैं कि भावलोक की क्षति का ध्यान भी भूल गये हैं और परम्परा के अवाध प्रवाह में बह गये हैं । यथा —

‘विरहा की जु आँच लगी तन मे तव जाय परी जमुना जल मे ।
 विरहानल तै जल सूखि गयी मछली वही छाँड़ि गई तल मे ।
 जब रेत फटी रु पताल गई तव शेष जर्यो घरती-तल मे ।
 रसखान तवै इहि आँच मिटै जब आय कै स्याम लगे गल मे ॥’

अर्थात् जब विरहिणी के शरीर में वियोग-दुख की अग्नि बढ गई तो वह उसे शान्त करने के लिए यमुना के जल में कूद गई । तब विरह की आग के कारण यमुना का जल सूख गया और मछलियाँ जल के अभाव के कारण यमुना के तल में बैठ गई । उस आग के कारण जब यमुना का जल अत्यन्त गरम हो गया तो उसकी गरमी से पाताल-लोक में स्थित शेषनाग भी जलने लगा । रसखान कहते हैं कि यह ज्वाला तभी शांत हो सकती है जब कृष्ण उसके गले से आकर लगेगे ।

लेकिन सर्वत्र ऐसी ऊहात्मकता नहीं है । एक भावपूर्ण कवि के लिए यह

संभव भी नहीं था । यथा —

‘बाल गुलाब के नीर उसीर सो पीर न जाइ हियै जिन ढारौ ।
कंज की माल करौ जु बिछावन होत कहा पुनि चंदन गारौ ।
एते इलाज बिकाज करौ रसखान कों काहे को जारै पै जारौ ।
चाहति हो जु जिबायौ पटू तौ दिखावौ बडी बडी आंखिनवारौ ॥’

इस सवैया में हृदय की सहज भावनाएँ मुखरित हैं । विरहिणी के विरह का सच्चा इलाज यही है कि उसका प्रियतम उसे मिल जाये । अन्यथा अन्य इतर उपचारों में कोई लाभ नहीं है । इसीलिए तो विरहिणी अपनी सखी से कहती है कि मेरे हृदय पर गुलाबजल और खस छिड़कना बेकार है । कज-माला का बिछावन करने में तथा चंदन का लेप करने से भी कोई लाभ नहीं है । ये सारे उपचार व्यर्थ हैं, वरन् ये तो मेरी पीड़ा को, जलन को, और भी अधिक बढ़ाते हैं । हे सखि ! यदि तू मुझे जीवित रखना चाहती हो तो मुझे विशाल नेत्र वाले कृष्ण का दर्शन करा दो । यही एकमात्र उपचार मेरे विरह-रोग को ठीक कर सकता है ।

साधुर्य भक्ति का तीसरा प्रमुख अंग है पूर्णतया आत्मसमर्पण । जब तक भक्त स्वयं को अपने अराध्य के प्रति पूर्णतया समर्पित नहीं कर देगा, तब तक उसका उसके प्रति प्रेम और विश्वास अधूरा ही रहेगा । रसखान को अपने अपराध पर पूर्ण विश्वास है । उसके संरक्षण में ये सब प्रकार के दुखों से तथा कष्टों से स्वयं को सुरक्षित समझने है—

‘कहा करै रसखानि को, कोऊ चुगुल लवार ।
जो पै राखनहार है, माखनचाखनहार ॥’

इसीलिए इनका मन कृष्ण के लिए चातक बना हुआ है —

‘विमल सरस रसखानि मिलि, भई सकल रसखानि ।
सोई नव रसखानि को, चित चातक रसखानि ॥’

अपने अराध्य के प्रति इनका इतना घनिष्ठ स्नेह है कि ये युग-युगान्त तक उसका सान्निध्य प्राप्त करना चाहते हैं । इनकी इच्छा है कि यदि मुझे आगामी जन्म में मनुष्य-योनि मिले तो मैं वही मनुष्य बनूँ जिसे ब्रज और गोकुल के ग्वालों के मध्य खेलने का अवसर मिले । यदि पशु-योनि मिले तो उस गाय का

जो नंद की गायो के साथ विचरण कर सके । यदि पाषाण-योनि मिले तो उसी पर्वत की शिला बनूँ जिसे कृष्ण ने इन्द्र का गर्व खडित करने के लिए अपने हाथ से उठाया था और यदि पक्षी बनूँ तो मुझे यमुना-तट पर उगे हुए कदम्ब-वृक्षों पर निवास करने का अवसर मिले —

‘मानुव हों तो वही रसखानि वसौ ब्रज गोकुल गाँव के ग्वारन ।
जो पसु हों तो कहा बस मेरो चरौं नित नन्द की धेनु मँझारन ।
पाहन हों तो वही गिरि को जो धर्यो कर छत्र पुरन्दर धारन ।
जो खग हों तो बसेरो करौं मिलि कालिन्दी फूल कदम्ब की डारन ॥’

इसी प्रकार ये अपने शरीरावयवों की सार्थकता इस बात में मानते हैं कि वे आराध्यदेव के काम आये —

‘जो रसना रस ना बिलसै तेहि देहु सदा निज नाम उचारन ।
मो कर नीकी करै करनी जु पै-कुँज कुटीरन देहु बुहारन ।
सिद्धि समृद्धि सबै रसखानि लहौ ब्रज-रेनुका-अंग-सवारन ।
खास निवास मिलै जु पै तो वही कालिन्दी-कूल कदम्ब की डारन ॥’

और—

वैन वही उनको गुन गाइ और कान वही उन वैन सो सानी ।
हाथ वही उन गात सरै अरु पाप वही जु वही अनुजानी ।
जान वही उन आन के सग औ मान वही जु करै मनमानी ।
त्यौ रसखानि वही रसखानि जु है रसखानि सो है रसखानी ॥

उस आराध्यदेव के समक्ष दुनिया का सारा वैभव तुच्छ और निस्सार है । कोई व्यक्ति चाहे जितना वैभव संचित कर ले, यदि उसकी कृष्ण में भक्ति नहीं है तो उसके संचित वैभव का कोई मूल्य नहीं, क्योंकि कृष्ण की भक्ति ही सर्वोच्च और सत्य वैभव है—

‘संपति सौ सकुचाइ कुवेरहि रूप सौ दीनी चिनौती अनंगहि ।
भोग कै कै ललचाइ पुरन्दर जोग कै गग लई घर मगहि ।
ऐसे भए तो कहा रसखानि रसै रसना जो जु मुक्ति-तरंगहि ।
पै चित ताके न रग रच्यौ जु रह्यौ रचि राधिका रानी के रंगहि ॥’

× × × ×

‘कंचन-मंदिर ऊँचे बनाइ कै मानिक लाय सदा झलकैयत ।
 प्रात ही ते सगरी नगरी नग मोतिन ही की तुलानि तुलैयत ।
 जद्यपि दीन प्रजान प्रजापति की प्रभुता मगवा ललचैयत ।
 ऐसे भए तौ कहा रसखानि जो साँवरे ग्वार सो नेह न लैयत ॥’

× × × ×

‘कहा रसखानि सुखसम्पत्ति सुमार कहा,
 कहा तन जोगी ह्वै लगाए अग छार को ।
 कहा साधे पंचानल कहा सोए बीच जल,
 कहा जीति लाए राज सिन्धु आर-पार को ।
 जप बार बार तप सगम बयार ब्रत,
 तीरथ हजार अरे बूझत लवार को ।
 कीन्हौ नही प्यार नही सैयौ दरबार चित,
 चाह्यौ न निहार्यौ जो पै नन्द के कुमार को ॥’

× × × ×

‘कचन के मंदिरनि दीठि ठहराति नाहि,
 सदा दीपमाल लाल मानिक उजारे सो ।
 और प्रभुताई अब कहाँ लौ बखानौ, प्रति,
 हारन की भीर भूप हटत न द्वारे सो ।
 गगाजी मैं न्हाइ मुक्ताहलहू लुटाइ, वेद,
 बीस बार गाई ध्यान कीजत सबारे सो ।
 ऐसे ही भए तौ नर कहा रसखानि जो पै,
 चित्तदै न कीनी प्रीति पीतपटवारे सो ॥’

इन उद्धरणों से यह स्पष्ट हो जाता है कि रसखान के मन में अपने आराध्य के प्रति पूर्ण आत्मसमर्पण, विश्वास एवं अनुराग है । किन्तु अन्य कृष्ण-भक्तों की भाँति इनका हृदय सकीर्ण नहीं है । सूरदास कृष्ण को छोड़कर अन्य देव की उपासना इसी प्रकार हास्यास्पद समझते हैं जिस प्रकार कामधेनु को छोड़कर छेरी का दूध निकालना । पर रसखान से यह सकीर्णता नहीं है । ये यद्यपि कृष्ण के प्रति अपनी पूर्ण आस्था प्रकट करते हैं, पर शिव और गंगा के प्रति

भी इनके मन में श्रद्धा भाव है। शिव की स्तुति करने हुए ये कहते हैं—

‘यह देखि घतूरे के पात चवात ती गात सो धूलि लगावत हैं ।
चहुँ ओर जटा अटकै लटकै फनि सो कफनी फहरावत है ।
रसखानि जेई चितवै चित दै तिनके दुख-दुन्द भजावत है ।
गज-खाल कपाल की माल विसाल सो गाल बजावत आवत है ॥’
गगा-महिमा से सम्बद्ध इनके दो सर्वेये उपलब्ध हैं। वे ये हैं—

१. ‘इक ओर किरीट लसै दुसरी दिसि नागन के गन गाजत री ।
मुरली मधुरी धुनि अधिक ओठ पै अधिक नाद से बाजत री ।
रसखानि पितम्बर एक कँधा पर एक बघम्बर राजत री ।
कोउ देखउ सगम लै बुडकी निकसे यहि भेख सो छाजत री ॥’
२. ‘वेद की औषद खाई कछु न करै बहु सजम री मुनि मोसे ।
तो जल-पान कियो रसखानि मजीवनि जानि लियो रस तोसे ।
ऐ री सुधामई भागीरथी निन पथ्य अपथ्य वनै तोहि पोसे ।
आक घतूरो चवात फिरै विख खात फिरै शिव तेरे भरोसे ॥’

इस प्रकार हम देखते हैं कि यद्यपि रसखान बल्लभाचार्य की परम्परा में आते हैं, पर ये इस परम्परा के भक्तों की भांति नियमों का कठोर पालन करके नहीं चले हैं। नियमों की अपेक्षा इनकी भक्ति पद्धति भावों पर अधिक आधृत है। यही कारण है कि इनके मन में जितनी कृष्ण के प्रति आस्था है, उतनी ही अन्य देवताओं के प्रति विशेषतः गगा और शिव के प्रति। उदार मन की यह उदारता रसखान के अतिरिक्त न तो अन्य कृष्ण-भक्तों में मिलती है और न स्वच्छन्दवादी कवियों में।

रसखान की रस-योजना

रस काव्य की आत्मा है, अतः प्रत्येक सजीव काव्य के लिए रस-योजना अनिवार्य है। भावपूर्ण कवियों के काव्य में रस-योजना श्रमसाध्य नहीं होती, वरन् स्वाभाविक होती है। विविध रसों की योजना रसखान का ध्येय नहीं है। ये तो भक्त है और भक्ति के आवेश में आकर ही इनकी वाणी फूटी है। इनकी भक्ति माधुर्य भाव की है। अतः शृंगार रस की योजना ही इनके काव्य में पाई जाती है। भक्त होने के नाते इनकी इस शृंगारिक योजना को अलौकिक शृंगार के अन्तर्गत ही परिगणित किया जायेगा।

शृंगार रस के दो भेद होते हैं—सयोग शृंगार और वियोग शृंगार। इन्हीं ही क्रमशः सम्भोग शृंगार और विप्रलम्भ शृंगार कहते हैं।

संयोग शृंगार

सयोग शृंगार के अन्तर्गत नायक और नायिका के मिलन की अवस्था एवं तज्जन्य आनन्द का वर्णन होता है। यह मिलन-अवस्था एकदम नहीं आती, बल्कि इसे प्राप्त करने के लिए दोनों को अनेक सोपान पार करने पड़ते हैं। पहले वे अचानक मिलते हैं, एक-दूसरे को देखते हैं और पारस्परिक रूप का लावण्य उन्हें सान्निध्य प्राप्त करने को प्रेरित करता है। तत्पश्चात् उन दोनों की प्रेम-क्रीड़ाएँ चलती हैं। संयोग शृंगार के अन्तर्गत मुख्यतया तीन बातों का वर्णन किया जाता है—

- १ रूप-वर्णन।
- २ प्रेम-व्यापार का वर्णन।
- ३ नायिका-भेद-वर्णन।

१. रूप-वर्णन रूप अथवा सौन्दर्य के प्रति आकर्षण प्रेम का प्रथम सोपान है। नायक नायिका के सौन्दर्य से और नायिका नायक के सौन्दर्य के कारण ही दोनों एक-दूसरे की ओर आकर्षित होते हैं। हिन्दी में विशेषतः रीतिकालीन

साहित्य मे—केवल नायिका के सौन्दर्य का ही वर्णन किया गया है। यह वर्णन एकांगी है। रसखान ने नायक और नायिका—कृष्ण और राधा—दोनों के सौन्दर्य का वर्णन किया है। कृष्ण के सौन्दर्य का वर्णन करते हुए उन्होंने बताया है कि उस नटवर कृष्ण के गले में मोतियों की माला पड़ी हुई है। उनकी घूँघरवारी केश-राशि लटक रही है। अंग के प्रत्येक भाग में जड़ाऊ आभूषण और सिर पर जरी वाली पगड़ी सुशोभित है। ऐसे सौन्दर्य के दर्शन पूर्ण पुण्यो के कारण ही हुआ करते हैं—

‘मोतिन माल बनी नट के लटकी लटवा लट घूँघरवारी ।

अंग ही अंग जराव लसै अरु सीस लसै पगिया जरतारी ।

पूरव पुन्यनि तें रसखानि सु मोहिनी मूरति आनि निहारी ।

चार्यो दिसानि की लै छवि आनि कै झाँके झरोखे में वाँके विहारी ॥’

कृष्ण जब शाम को गाय चराकर अपने अन्य साथियों के साथ वन से वापिस लौटते हैं तो उस समय उनका जो सौन्दर्य होता है, उसे देखकर ब्रज की बनिताएँ अपने सारे दिन की थकान को भूल जाती हैं—

‘आवत हैं वन तें मनमोहन गाइन संग लसै ब्रज-गवाला ।

वेनु बजावत गावत गीत अभीत इतै करिगौ कछु ख्याला ।

हेरत हेरि ककै चहूँ ओर तें झाँकि झरोखन तें ब्रज-वाला ।

देखि सु आनन को रसखानि तज्यो सब द्योस को ताप-कसाला ॥’

कृष्ण जितने सुन्दर हैं, उनकी वाणी में उतना ही माधुर्य है और कुंजों में घूमने फिरने की उतनी ही आकर्षणमयी आतुरता है। जो भी गोपी उनके सौन्दर्य को तथा उनकी सुन्दर चेष्टाओं को देख लेती है, वह उनके सौन्दर्य-सागर में डूबे बिना नहीं रह पाती—

‘अति सुन्दर री ब्रजराजकुमार महामृदु बोलनि बोलत है ।

लखि नैन की कोर कटाछ चलाइ कै लाज की गाँठन खोलत है ।

मुन री सजनी अनबेली लला वह कुंजनि कुंजनि डोलत है ।

रसखानि लखें मन बूढ़ि गयी मधि रूप के सिन्धु कलोलत है ॥’

जो भी गोपी कृष्ण के सौन्दर्य को देख लेती है, वह दीवानी बन जाती है, कृष्ण का सौन्दर्य उसके हृदय में अटक जाता है—

‘तैं न लख्यौ जब कुंजनि तैं बनिकैं निकस्यौ भटक्यौ मटक्यौ री ।
सोहत कैसे हरा टटक्यौ उठ कैसे किरौट लसै लटक्यौ री ।
को रसखानि फिटै फटक्यौ हटक्यौ ब्रजलोग फिरै भटक्यौ री ।
रूप सबै हरि वा नट को हियरे अटक्यौ अटक्यौ अटक्यौ री ॥’

जितना मधुर कृष्ण का शरीरगत सौन्दर्य है, उतना ही आकर्षक उनका चेष्टागत सौन्दर्य भी है। उनके वक्र नेत्रों की मार इतनी पैनी और प्रभावशाली है कि जिस गोपी पर भी वह पड़ जाती है, वह अपनापन भूल जाती है और क्षणभर को भी कृष्ण-स्मृति को नहीं छोड़ पाती—

‘नैननि बक बिसाल के बाननि भेलि सकै अरु कौन नबेली ।
बेधत है हिम तीछन कोर सुमार गिरी तिय कोटिक हेली ।
छोडै नही छिनहुँ रसखानि सु लागी फिरै द्रुम सो जनु बेनी ।
रौरि परी छवि की ब्रजमडल कुंडल गंडनि कु तल केली ॥’

कृष्ण की बाणी और उनकी चंचल दृष्टि विलक्षण है। उनके कपोलों पर कुंडलों की छवि हाथी के गडस्थल पर पड़ी हुई छवि की भाँति अद्वितीय है। जब वे वृक्ष की डाली पकड़कर त्रिभंगिमा से खड़े होते हैं तो उम समय उनकी जो शोभा होती है, उसका वर्णन नहीं किया जा सकता। उनकी सरस मुस्कान तो वशीकरण मंत्र है ही—

‘अलबेली बिलोकनि बोलनि औ अलबेलियै लोल निहारन को ।
अलबेली सी डोलनि गडनि पै छवि सों मिलि कु डल बारन की ।
भट्ट ठाढी लख्यौ छवि कैसे कहौ रसखानि गहे द्रुम डारन की ।
हिय मैं जिय मैं मुसकानि रसी गति को सिखवै निरवारन की ॥’

उनके विशाल नेत्र सुख देने वाले हैं, उनके कपोल पुष्ट हैं, बाणी में आधुन्य है, हँसी में आकर्षण है, मुख में चन्द्रमा जैसी सुन्दरता और स्निग्धता है। इस सौन्दर्य-राशि को देखकर सभी गोपियाँ इसकी मनोहरता पर मोहित हो जाती हैं—

‘बाँकी बडी अँखियाँ बडरारे कपोलनि बोलनि कौ कल वानी ।
सुन्दर हास सुधानिधि सो मुख मूदति रग सुधारस-सानी ।
ऐसी नबेली ने देखे कहूँ ब्रजराज लला अति ही मुखदानी ।
डोलति है बन बीथिन मे रसखानि मनोहर रूप लुभानी ॥’

रसखान ने जिस प्रकार कृष्ण के सौन्दर्य का वर्णन किया है, उसी प्रकार राधा के सौन्दर्य के भी अनेक चित्र चित्रित किये हैं। राधा के नेत्रों में वह सुन्दरता तथा मादकता है, मानो ब्रह्मा ने ससार को प्यासा जानकर उसकी तृप्ति के लिए उसके नेत्रों में सुधा-सागर भर दिया है। मुग्न इतना सुन्दर है जैसे अपने समस्त अमृत-सार को सजोकर चन्द्रमा स्वयं उपस्थित हो गया हो। उसके शरीर का गठन ऐसा है जैसे सोने में मण्डिताओं को जटने के लिए कुशल जड़ियाँ धीवन ने रत्न जटने के लिए स्थान-स्थान पर सुन्दर स्थान निर्धारित किये हुए हो। उसके अवरो की लाली काम-कामना के समान सुशोभित है। उसकी नायिका का छिद्र उम भोरे के समान है जिसमें पटककर ज्ञान की नौका का गवं नष्ट हो जाता है और उसकी मनोहर चिबुक पर तो सैकड़ों रति और रम्भा की शोभा को न्योछावर किया जा सकता है—

‘कैधो रसखान रम कोम दृग प्याम जानि,
 आनि कै पियूप पूष कीनो विधि चंद घर ।
 कैधो मनि मानिक बैठारिनि को कंचन में,
 जगिया जोवन जिन गविषा सुघर घर ।
 कैधो काम कामना के रागत अघर चिन्ह,
 कैधो यह भीर ज्ञान बोहित गुमान हर ।
 ऐरी मेरी प्यारी दृति कोटि रति रम्भा की,
 वारि डारौ तेरी चित्तचोरनि चिबुक पर ॥’

राधा का मुग्न इतना सुन्दर है कि उसकी सुन्दरता का किसी भी प्रकार वर्णन नहीं किया जा सकता। उसका सौन्दर्य प्रकाशित करने वाला है। उसके रूप का बोध वही व्यक्ति कर सकता है जिसने नक्षत्रों की अनुगम शोभा को देखा है। उसके मस्तक पर लगा हुमा टीका इस प्रकार सुशोभित हो रहा है मानो चन्द्रमा अपनी गोद में मंगल को लिये हुए हो—

‘श्री मुख की न बखान सकै वृषभान सुनाजू को रूप उजारो ।
 हे रसखान तू ज्ञान सगार तरैनि निहार जु रीझनहारो ।
 चारु सिन्दूर को लाल रसान लसै अज वाल को भाल टिकारो ।
 गोद में मानौ विराजत है धनश्याम के सारे की सारे को सारो ॥’

राधा का यह स्वाभाविक सौन्दर्य सौन्दर्य-साधक उपकरणों से विभूषित होता है तो उसकी शोभा द्विगुणित हो जाती है। उसका गहरे लाल गुलाल के समान दुकूल गुलाब के लाल फूल की भाँति शोभायमान है। उसकी काली केश-राशि भौंगे के समान सुशोभित है। काले रेशम की डोरियों में बँधे हुए गुंज पलाश-पुष्प की भाँति शोभा-सम्पन्न है। उसके मोती कदम्ब और आम की मन्-रियों के समान शोभायमान है। उसकी वाणी में इतना माधुर्य है कि उसके बचनों को सुनकर कोयल भी लज्जित हो जाती है—

‘अति लाल गुलाल दुकूल ते फूल अली। अलि कुंतल राजत है।
मखतूल समान के गुंज धरानि मैं किसुक की छवि छाजत है।
मुकता के कदम्ब ते अम्ब के मोर सुने सुर कोकिल लाजत है।
यह आवनि प्यारी जु की रसखानि बसन्त-सी आज विराजत है।’

जब राधा ने अपने शरीर पर चन्दन का लेप कर लिया तो वह ऐसी प्रतीत होने लगी मानो चन्द्रमा की पत्नियों तारिकाओं को लज्जित करने के लिए सब प्रकार से अपनी सात्विक शोभा को बाहर निकालकर वह सुधा की मानसपुत्री बैठी हो। उसके कुचों के बीच में हार का चन्दा इस प्रकार सुशोभित हो रहा था जैसे सौन्दर्य को ही उसके शरीर में जड़ दिया गया हो, अथवा वह दृग-बाणों का धाव दमक रहा हो, अथवा-श्वेत पर्वत के संधि-स्थान में कोई जनाशय हो—

‘तन चन्दन खीर के बैठी भट्ट रही आजु सुधा की सुता मनसी,
मनौ इन्दुबधून लजावन कौ सब ज्ञानिन काढि धरी गन-सी।
रसखानि बिराजति चौकी कुचौ बिच उत्तमताहि जरी तन-सी।
दमकै दृग-वान के घायन कौ गिरि सेत के सधि के जीवन-सी’।

कही-कही राधा-सौन्दर्य का अत्युक्तिपूर्ण वर्णन श्री रसखान ने किया है—

‘वासर तूँ जु कहै निकरै रवि को रथ मॉझ अकास अरै री।
नैन महुँ गति है रसखानि छपाकर आँगन तैं न टरै री।
छौस निस्वास चलयौई करै निसि छौस की आसन पाय धरै री।
तेरी न जात कछु दिन राति विचारे बटोही की बाट परै री।’

हे राधा ! यदि तू दिन में अपने घर से बाहर निकल जाती है तो तेरे सौन्दर्य से सूर्य इतना चकित हो जाता है कि उसका रथ आकाश में ही रुक

जाता है, अर्थात् सूर्य अपनी गति भूलकर एकटक तुम्हें ही देखता रह जाता है। तेरा सौन्दर्य देखकर चन्द्रमा तेरे घर के आँगन में ही ठहर जाता है और आगे नहीं बढ़ता। दिन में तो पवन चलता ही रहता है, पर रात में भी वह दिन की आशा से तेरे पीछे लगा रहता है, अर्थात् तेरी सुगंध का लोभी पवन रात-दिन तेरे इर्द-गिर्द चलता रहता है। इस पवन के रात-दिन चलते रहने के कारण तेरा तो कुछ नहीं बिगड़ता, पर बेचारे पशिक का रास्ता रुक गया है; अर्थात् पवन-वेग के कारण वह अपने माग पर नहीं चल पाता।

२. प्रेम-व्यापार का वर्णन — जिस प्रकार रसखान ने रूप का पर्याप्त विस्तार से वर्णन किया है, उसी प्रकार प्रेम-व्यापार का भी किया है। यह व्यापार कुंजलीला, रासलीला, दानलीला और फागलीला में विशेष रूप से मुखरित हुआ है।

कोई गोपी कृष्ण से मिलकर आई है। अपनी मिलन-दशा का वर्णन वह अपनी सखी से करती है कि हे सखि। मैं आज प्रातः काल जब कुंजगली से निकली तो अचानक कृष्ण से भेट हो गई। कृष्ण के मुख की मुस्कान में मेरा मन इतना अधिक डूब गया कि वह उस मुस्कान की छवि पर मे नहीं हटता, हटाने पर भी नहीं हटता। उस मुस्कान ने मेरे नैनो को बाँध लिया, चित्त को चुरा लिया और प्रेम का गहरा फंदा डाल दिया। तुम्हीं बताओ, अब मैं क्या करूँ? मेरे चित्त में बसा हुआ कृष्ण कैसा बाहर निकाला जा सकता है। उस आनन्द-सागर कृष्ण के सौन्दर्य ने तो मेरे सारे शरीर को ही घेर लिया है—

‘कुंजगली मैं अली निकसी तहाँ साँवरे ढोटा कियौ भटनेरो।
माई री वा मुख की मुस्कान गयी मन बूडि फिरै नहि फेरो।
डोरि लियौ दृग चोरि लियौ चित डार्यौ है प्रेम को फंद घनेरो।
कैसी करौ अब क्यौ निकस्यो रसखानि पर्यौ तन रूप को घेरो।’

रासलीला में प्रेम-व्यापारों का कुंजलीलाओं की अपेक्षा अधिक वर्णन है। रासलीला के समय नटखट कृष्ण अपनी वांसुरी में जिस गोपी का नाम ले देते हैं वह तो अपना सर्वस्व भूलकर कृष्ण के ऊपर न्यौछावर ही हो जाती है—

अधर लगाइ रस प्याइ वांसुरी बजाइ,
मेरो नाम गाइ हाइ जाइ कियौ मन मैं।

नटखट नवल सुघर नन्दनन्दन ने,
करिकै अचेत चेत हरिकै जतन में ।
झटपट डलट पुलट पट परिधान,
जान लागी लालन पै सबै बाम बन में ।
रस रास सरस रंगीलो रसखानि प्रानि,
जानि जोर जुगुति बिलास कियौ जन पै ।

कोई गोपी अपनी सखी से रासलीला का वर्णन करती हुई कहती है कि जब कृष्ण ने अपनी बाँसुरी बजाई और मेरा नाम उसमें गाया तो मेरे मन पर दह जादू कर गया । नटखट, युवक और सुन्दर कृष्ण ने मुझे अचेत करके यत्नपूर्वक अपने ध्यान में लगा लिया, अर्थात् मेरी वह अवस्था कर दी कि मैं उसके बिना नहीं रह सकती थी । बासुरी की ध्वनि को सुनकर सारे ब्रज की स्त्रियाँ जल्दी से अपने वस्त्रों को उलटा-सीधा पहनकर बन में पहुँच गईं । तब सुन्दर रास रचने वाले सरस और रंगीले कृष्ण ने वहाँ आकर रास-लीला की तथा युवतियों का समूह एकत्र करके उनके साथ आनन्द मनाया ।

‘आज भट्ट मुरली-बट के तट नन्द के साँवरे रास रच्यौ री ।
नैननि सैननि वैननि सो नहि कोऊ मनोहर भाव पच्यौ री ।
जद्यगि राखन कौ कुल-कानि सबै ब्रज-बालन आन बच्यौ री ।
तद्यगि वा रसखानि के हाथ बिकानी को अंत लच्यौ पै लच्यौ री ॥’

अर्थात् जब कृष्ण ने मुरली-बट के नीचे रास रचा तो उन्होंने प्रेम की सभी भंगिमाओं का प्रदर्शन किया, कोई भी भाव उनसे बचा न रह सका । उनकी भंगिमाओं को देखकर ब्रज-वनिताएँ इतनी भाव-विभोर हुईं कि प्रयत्न करने पर भी वे अपनी कुल-मर्यादा को न बचा सकी, अर्थात् कृष्ण के वशीभूत हो ही गईं ।

फागलीला में प्रेम-व्यापारों का रूप और भी अधिक स्पष्ट है । इसी लीला का वर्णन करती हुई कोई गोपी अपनी सखी से कहती है कि हे सखि ! कल गोकुल का एक ग्वाला (कृष्ण) चारों ओर की गोपियों को घेरकर, भाँवर रचा कर, धूम मचा गया । वह बाँकी बाँसुरी की तान सुनाकर तथा हृदय को उत्लसित करके सहज स्वभाव से सब गाँव वालों को ललचा गया है । वह अपनी

पिचकारी चलाकर तथा समस्त युवतियों को प्रेम से भिगोकर और अपनी आँवों को नचाकर मेरे सारे अंगों को नचा गया है । वह हमारी झी गन्नी में मेरी मामु को तथा भोली नन्द को नचाकर और पुराने वैरो को बदला लेकर मुझे लज्जित कर गया—

‘गोकुल को ग्वाल काल्हि चौमूह की ग्वालिन गों,
चांचर रचाइ एक धमहि मचाइगो ।
हियो हुलसाय रसखानि तान गाइ बांकी,
सहज सुभाइ सब गांव ललचाइगो ।
पिचका चलाइ और जुवती भिजाइ नेह,
लोचन नचाइ मेरे अंगहि नचाइगो ।
सामहि नचाइ मोरी नंदहि नचाइ प्योरी,
वैरनि सचाइ गोरी मोहि मकुचाइगो ॥’

कृष्ण पर फागलीला का इनका अधिक भूत गवार है कि वे रास्ते में आती-जाती ग्वालिनो को भी नहीं छोड़ते । इतनी जबरदस्ती से उनके मुख पर गुलाल मलते हैं कि उनकी साड़ियाँ भी फट जाती हैं, पर वे इसी तनिक भी चिन्ता नहीं करते । यहाँ तक कि मनचाही किये बिना वे किसी को नहीं छोड़ते । ऐसी ही एक घटना का वर्णन कोई गोपी अपनी सखी से कर रही है—

‘आवत लाल गुलाल लिये मग सूने मिली इक नार नवीनी ।
त्याँ रसखानि लगाइ हियेँ भट्ट मोज कियो मन माहि प्रधीनी ।
सारी फटी मुकुमारी हटी अँगिया दरकी सरकी रंग भीनी ।
गाल गुलाल लगाइ लगाइ कै अक रिभाइ विदा करिदीनी ॥’

दानलीला में भी प्रेम के ये व्यापार पूर्णतया मुखरित हुए हैं । एक उदाहरण देखिए—

‘छीर जी चाहत छीर गहे एजू लेउ न केतिक छीर अचही ।
च खन के मिस माखन मांगत खाउ न माखन केतिक गैही ।
जानति हौ जिय की रसखानि मु काहे की एतिक दात दरेही ।
गोरम के मिस जो रस चाहत सो रस खान्हजू नेकु न पैही ॥’

अतः हम देखते हैं कि रसखान ने प्रेम-व्यापारों का पर्याप्त और सफल

३. नायिका-भेद—प्रेम-व्यापार में नायिका को प्रमुख स्थान दिया गया है, अतः इसके भेदों के वर्णन का विधान भी सयोग शृंगार के अन्तर्गत किया जाता है। रसखान आचार्य नहीं, कवि हैं। अतः यह आवश्यक नहीं कि सभी काव्यशास्त्रीय विधान इनके काव्य में उपलब्ध हो। जहाँ तक नायिका-भेद का प्रश्न है, इस ओर से ये प्रायः उदासीन ही रहे हैं। इस उदासीनता का कारण इनका भक्त-हृदय है। फिर भी कुछ नायिकाओं के भेद इनके काव्य में स्वतः आ गये हैं। यथा—

‘जो कबहूँ मग पाँय न देत सु तो हित लालन आपुन गौनै ।
मेरो कह्यौ करि मोन तजौ कहि मोहन सो बलि बोल सलौने ।
सौहैं दिवावत हौ रसखानि तूँ सौहै करै किन लाखनि लौने ।
नोखी तूँ मानिनि मान कह्यौ किन आन बसंत मै कीनी है कोने ॥’

‘खेलै अलीजन के गन मै उत प्रीतम प्यारे सो नेह नवीनो ।
बैननि बोध करै इन कौ, उत सैननि मोहन को मन लीनो ।
नैननि की चलिअरी कछु जानि सखी रसखानि चितवै कौ कीनो ।
जा लखि पाइ जंभाइ गई चुटकी चटकाइ बिदा कर दीनो ॥’

यहाँ क्रियाविदग्धा नायिका है। यह नायिका अपने प्रेम-व्यापारों को अपनी क्रियाओं के द्वारा छिमाने का प्रयास करती है।

‘नाह-विषोग बढ्यौ रसखानि मलीन महा दुति देह तिया की ।
पंकज सों मुख गौ मुरझाय लगी लपटें वरि स्वाय हिया की ।
ऐसे मैं आवत कान्ह सुने हुलसै तरकी जु तनी अंगिया की ।
यो जग जोति उठी अग की उसकाइ दई मनी बातो दिया की ॥’

इसमे आगतपतिका है, क्योंकि विरहिणी को उसके प्रियतम के आने का समाचार मिल गया है ।

नायक और नायिका का संयोग कराने में नायिका की सगियों का भी महत्वपूर्ण योगदान होता है । वे उसे प्रेरित करके नायक के पास भेज ही देती हैं । निम्नलिखित सवैया में अपनी मखी को प्रेरित करती हुई एक गौरी कहती है कि न जाने मिलन का ऐसा अवसर फिर मिले या न मिले, अतः तुम शीघ्र ही कृष्ण से जाकर मिल तो—

‘सोई है रास मैं नैमुक नाचि कै नाच ननायो कितो नदरो जिन ।
सोई है री रसखानि किते मनुहारिन नूयें चितौत न दो छिन ।
तो मैं धाँ कीन मनोहर भाव विलोकि भयो बन हाहा करी तिन ।
औसर ऐसो मिलै न मिलै फिरि लंगर मोटो कनौटो करै विन ॥’

संयोग-शृंगार के अन्तर्गत रसखान ने मिलन का वर्णन भी दिया है और सुरत का भी । मिलन का वर्णन इन सवैया में निहित है—

‘एक समै डक खालिन को ब्रजजीवन खेलत दृष्टि पर्यो है ।
बाल प्रवीन सकै करिकै सरकाइ कै मोरन चोर धर्यो है ।
यो रस ही रस ही रसखानि सखी अपनो मनभायो कर्यो है ।
नन्द के लाडिले डाँकि दै सोस हहा हमरो बरु हाय भर्यो है ॥’

रसखान ने सुरत और गुरतान्त का भी वर्णन किया है । यथा—

‘वह सोई हुती परजक लली लला लीनो सु आइ भुजा भरिकै ।
अकुलाइ कै चौकि उठी नु डरी निकरी चहै यंकनि तें फरि कै ।
झटका झटकी में पटो पटुका टरकी अंगिया मुक्ता फरि कै ।
मुख बोल बढे रिस से रसखानि हटो जू लला निबिया धरिकै ॥’

इस सवैया में सुरत का वर्णन है । नायिका पलंग पर सोई हुई थी कि अचानक कृष्ण वहाँ पहुँच गए और उसे अपनी बाहुओं के पाश में बाँध लिया । वह

आकुल होकर और भयभीत होकर जग गई। उसने काफी जोर लगाया कि वह स्वयं को उस आलिंगन से मुक्त कर ले, पर उस सघर्ष में उसकी चोली और फट गई। तब उसने रोष में भरकर कृष्ण की भर्त्सना करनी शुरू कर दी। सुरत का यह वर्णन बहुत ही स्वाभाविक है। और—

‘सोई हुती पिय की छतियाँ लगी बाल प्रवीन महा मुद मानै ।
केस खुले छहरै बहरै फहरै छबि देखत मैं अमानै ।
वा रस मैं रसखानि पगी रति रैन जगी अँखियाँ अनुमानै ।
चन्द पै बिम्ब और बिम्ब पै कैरव कैरव पै मुकतान प्रमानै ॥’

इन विवेचन के आधार पर हम कह सकते हैं कि रसखान का संयोग-वर्णन पूर्ण और सफल है। रूप-प्रभाव से लेकर सुरतान्त तक के चित्रण इनके काव्य में मिलते हैं।

वियोग-वर्णन

जब किसी कारण से नायक और नायिका एक-दूसरे से दूर हो जाते हैं तो इस दशा को वियोग की दशा कहते हैं और यह दशा वियोग या विप्रलम्भ शृंगार के अन्तर्गत आती है। प्रायः सभी कवियों ने संयोग शृंगार की अपेक्षा वियोग-शृंगार को अधिक महत्त्व दिया है। इसका कारण यह है कि संयोग की अपेक्षा वियोग में पुनः स्थितियाँ अधिक व्यापक और भावुक बन जाती हैं। जिस प्रकार अग्नि में तपाने पर रंग में उज्ज्वलता और परिपक्वता आती है, उसी प्रकार वियोगाग्नि में जलकर मन के सात्विक भाव शुद्ध, परिष्कृत और परिपक्व बन जाते हैं।

वियोग-शृंगार के चार भेद माने गये हैं—

१. पूर्वरोग
२. मान
३. करुण
४. प्रवास

पूर्णराग में प्रिय के गुण-कथन अथवा श्रवणमात्र से ही उससे मिलने की इच्छा उत्कट हो जाती है और उसका अभाव खटकने लगता है। मान में नायिका का रूठना आता है। कुछ आचार्य मान विप्रलम्भ को अधिक महत्त्व नहीं देते।

इसका कारण यह है कि मान की स्थिति में वस्तुतः वियोग होता ही नहीं है, क्योंकि रूठने पर भी नायक और नायिका साथ-साथ तो रहते ही हैं और एक दूसरे के दर्शन करते रहते हैं। अतः यह स्थिति न तो कष्ट है और न प्रभावशाली। प्रवास विप्रलम्भ तब होता है जब किसी कारण से नायक विदेश चला जाता है। किसी शाप या प्रेम-मात्र की मृत्यु के कारण जो विग्रह-भावना होती है, वह कष्ट विप्रलम्भ के अन्तर्गत आती है। इस स्थिति को भी आचार्य अधिक महत्त्व नहीं देते, क्योंकि मृत्यु के उपरान्त तो सारा खेल ही समाप्त हो जाता है और तब सन्तोष तथा धैर्य की भावना का प्राधान्य हो जाता है। ये भावनाएँ कारुणिक भावों को जागृत करने में बाधक हैं।

रसखान-काव्य में वियोग की पृथक् तीन स्थितियाँ ही मिलती हैं। यथा—
पूर्वराग —

१. 'लोक की लाज तज्यौ तबही जब देख्यौ सखी ब्रजचन्द सलोनी ।
खंजन मीन सरोजन की छवि गजन नैन लना दिन होनी ।
हेरे सम्हारि सकै रसखानि सो कौन तिया वह रूप सुठोनी ।
भौह कमान सो जोहन को सर वेधत प्राननि नन्द को छोनी ॥'
२. 'उनही के सनेहन सानी रहैं उनही के जु नेह दिवानी रहैं ।
उनही की सुनै न श्री बैन त्यों सैन सो चैन अनेकन ठानी रहैं ।
उनही सग डोलन में रसखानि सबै सुख सिन्धु अघाती रहै ।
उनही बिन ज्यौ जलहीन ह्वै मीन सी आँखि मेरी अंसुवानी रहै ॥'

मान—

'प्रिय सों तुम मान कर्यौ कत नागरि आजु कहा बिनहूँ सिख दीनी ।
ऐसे मनोहर प्रीतम के तरुनी वरुनी पग पोछैं नवीनी ।
सुन्दर हास सुधानिधि सो मुख नैननि चैन महारस भीनी ।
रसखानि न लागत तोहि कछु अब तेरी तिया किनहूँ मति छोनी ॥'

प्रवास—

उपर्युक्त दोनों स्थितियों की अपेक्षा रसखान ने प्रवास-विप्रलम्भ का अधिक वर्णन किया है। प्रियतम के विदेश चले जाने पर बीती बातें एक एक करके विरहिणी के मस्तिष्क में आती रहती हैं और उसे व्यथित करती रहती हैं,

उमकी व्यथा को बढ़ाती रहती हैं। जब भी प्रिय की बातें चलती हैं, विरहिणी को बीती घटनाएँ स्मरण हो आती हैं—

‘प्रेम कथानि की बात चलै चमकै चित चंचलता चिनगारी ।

लोचन ब्रक बिलोकनि लोलनि बोलनि मे बतियाँ रसकारी ।

सोहै तरंग अलग की अगनि कोमल यौ झमकै झमकारी ।

पूतरी खेलत ही पटकी रसखानि सु चीपर खेलत प्यारी ॥’

लेकिन अब चीपड़ खेलने का अवसर कहाँ? उसका प्रिय तो विदेश में बैठा हुआ है। केवल स्वप्न में ही उससे मिलन हो सकता है—

‘काह कहूँ रतियाँ की कथा बतियाँ कहि आवत है न कछु री ।

आइ गोपाल लियो परि अक कियो मनभायो पियौ रस कूँ री ।

ताही दिना सो गडी अखियाँ रसखानि मेरे अंग-अंग में पूरी ।

पै न दिखाई परै अब बावरी दै कै वियोग बिथा की मजूरी ॥’

‘वियोग बिथा की मजूरी, देने वाला प्रियतम अपनी क्रूरता का संबल लेकर नायिका को सदैव तड़पाता रहता है, उसे अहर्निश व्यथित करता रहता है। नायिका का भोलापन केवल इतना था कि वह उसकी मुस्कान पर, उसकी बाँसुरी की तान पर और उसके मंजूल मुख पर स्वयं को न्यौछावर कर बैठी। इससे वियोग-व्यथा भी मिली और समाज में बदनामी भी हुई—

‘वा मुसकान पै प्रान दियो जिय जान दियो वहि तान पै प्यारी ।

मान दियो मन मानिक के संग वा मुख मजु पै जोबन हारी ।

वा तन की रसखानि पै री तन ताहि दियो नहि आन बिचारी ।

सो मुँह मोरि करी अब का हहा लाल लै आज समाज में खवारी ॥’

कृष्ण के बिना विरहिणी ने खाना और पहनना सब कुछ छोड़ दिया है—

‘मोहन सो अटक्यो मनु री कल जाते परै सोई क्यों न बतावै ।

व्याकुलता निरखे बिन मूरति भागति भूख न भूषन भाकै ।

देखे ते नेकु सम्हार रहै न तबै भुकि कै लखि लोग लजावै ।

चैन नही रसखानि दुहुँ बिधि भूली सबै न कछु बानि आवै ॥’

वियोग-शृंगार के अन्तर्गत प्रकृति का उद्दीपन रूप में वर्णन करने की काव्यशास्त्रीय परम्परा है। रसखान ने इस परम्परा का भी पालन किया है। यथा—

‘फूलत फूल सबै वन वागन बोनत भोर वसंत के आवत ।
 कोयल की किलकार सुनै सब कत विदेसन तैं सब धावत ।
 ऐसे कठोर महा रसगानि जु नेकह मोरी ये पीर न पावत ।
 हूक सी सालत है हिय में जब वैरिन कोयल कूक गुनावत ॥’

प्रिय का पथ देखते-देखते विरहिणी की आँखें धुंधली पड़ गई हैं । जीभ उसके गुणों को रटते-रटते थक गई है, लेकिन अभी तक प्रिय के आनंद का कोई सन्देश ही नहीं मिलता है—

‘मग हेरत धूँधरे नैन भये रमना रट वा गुन गावन की ।
 अगुरी गनि हार धकी मजनी सगुनीती चलै नहि पावन की ।
 पधिकी कोउ ऐसी जु नाहि कहै नृधि है रसगान के आवन की ।
 मनभावन आवन सावन में कही औधि ररी उग बावन की ॥’

इस प्रकार हम देखते हैं कि रसगान के त्रियोग-वर्णन में स्वाभाविकता और प्रभावोत्पादकता है । लेकिन सर्वत्र ऐसा नहीं हुआ है । कहीं-कहीं रसगान पर रीतिकालीन जादू सर पर चढ़कर बोल उठा है । ऐसी स्थलों पर उनका वर्णन ऊहात्मक बन गया है । यथा —

‘विरहा की जु आँख लगी तन में तब जाय परी जमुना जन में ।
 विरहानल तैं जल नूझि गयो मछरी वहि छाँटि गई तन में ।
 जब रेत फटी रु पतान गई तब सैम जर्यो धरती तल में ।
 रसखान तबै जह आँच मिटै जब आय के स्थाम लगै गल में ॥’

× × × ×

‘गोकुलनाथ त्रियोग प्रलै जिमि गोपिन नद जसोमति जू पर ।
 बाहि गयो अमुवान प्रवाह भयो जल में ब्रजलोक तिहुँ पर ।
 तीरथराज सी राधिका प्रान सु तो रसगान मनी ब्रज भू पर ।
 पूरन ब्रह्म त्वै ध्यान रह्यो पिय औधि अखैवट पात के ऊपर ॥’

लेकिन ऐसे स्थल कम ही हैं ।

निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि रसखान ने अपने काव्य में बसल एक रस की—श्रृंगार रस की—योजना की है और इसमें ये भावुकता एवं स्वाभाविकता की दृष्टि से भी और परम्परा के पालन की दृष्टि से भी पूर्णतया सफल सिद्ध हुए हैं ।

रसखान के कृष्ण

भारतीय साहित्य में कृष्ण के स्वरूप का उल्लेख अत्यन्त प्राचीन काल से होता चला आ रहा है। वैदिक साहित्य में कृष्ण का जिस रूप में उल्लेख हुआ है, उससे उसे न तो अवतार की संज्ञा दी जा सकती है और न देवता की ही। महाभारत में कृष्ण के अवतारी रूप का अवश्य उल्लेख मिलता है पर इस रूप के वर्णन की सीमा कम ही है, अर्थात् इस रूप में इनका वर्णन थोड़ा ही हुआ है। महाभारत के अनन्तर कृष्ण की गणना पूर्ण अवतारों में होने लगती है। गोपाल-रूप में उनकी उपासना की पद्धति प्रचलित करना पुराणकाल की ही देन है। हरिवंश-पुराण में कृष्ण के स्वरूप का सबसे अधिक विस्तार और वर्णन पाया जाता है। इस पुराण में कृष्ण के चरित को गोपियों से आबद्ध किया गया है। विष्णु-पर्व के १२८ अध्यायों में कृष्ण की जीवन-गाथा वर्णित है जिसमें कृष्ण के चरित के अनेक पहलुओं पर प्रकाश डाला गया है। यथा — 'पूतनावध, शकटवध, ममलार्जुन-पतन, माखन-चोरी, कालिय-मर्दन, धेनुक वध प्रलम्ब-वध, गोवर्धन-धारण इत्यादि। कृष्ण की इन लीलाओं का वर्णन करते समय पुराणकार ने यथास्थल प्रकृति के भी मनोरम चित्रण प्रस्तुत किये हैं। इसके अतिरिक्त पद्म पुराण, वायुपुराण, वामनपुराण, सूर्य पुराण, गरुड-पुराण और विष्णुपुराण, में भी कृष्ण से सम्बद्ध अनेक गाथाओं का वर्णन किया गया है। पद्मपुराण में अध्याय ६६ से ७२ तक श्री कृष्ण के महात्म्य का वर्णन है और अध्याय ७२ से ८३ तक वृन्दावन आदि के महत्त्व का तथा कृष्ण की लीलाओं का विवेचन किया गया है। इसी पुराण में गोपियों के अव्यात्मपक्ष और उनकी उत्पत्ति के विषय में भी विस्तार से उल्लेख किया गया है। द्वारिका, गोकुल, मथुरा, वृन्दावन आदि का भी सुन्दर वर्णन है तथा द्वादश वनों का भी उल्लेख है। इस अध्याय के श्लोक ८८ से १०२ तक कृष्ण के सौन्दर्य का अत्यन्त मनोरम चित्रण किया गया है। कृष्ण भक्त साहित्य पर इस पुराण का काफी प्रभाव है। पुष्टिमार्गीय आचार्यों ने इसमें से अनेक बातों को तो ज्यों का त्यों ही अपना लिया है। वायुपुराण में स्यमन्क मणि की कथा का विस्तार पूर्वक वर्णन करके फिर कृष्ण जन्म का वर्णन किया गया है। इसके

पश्चात् कृष्ण की सोलह सहस्र रानियो तथा उनके पुत्रो आदि का वर्णन है। वामनपुराण में कृष्ण जीवन से सम्बद्ध केवल केशी, मुर और बालनेमि के वध की कथाओं का वर्णन है। कूर्मपुराण में यदुवंश वर्णन के अन्तर्गत कृष्ण के पुत्रों की कथा वर्णित है। गरुडपुराण के १४४ वें अध्याय में कृष्ण की लीलाओं का विस्तार पूर्वक वर्णन है। इस पुराण में कृष्ण-विषयक कथाएँ ये हैं— पूतना-वध, यमलार्जुनोद्धार, गोवर्धन-धारण, केशी-चारुण-वध, कालिय मर्दन, शकटासुर-वध, कृष्ण की रुक्मिणी सत्यभामा आदि आठ रानियो का उल्लेख और सदीपन गुरु के पास विद्याध्ययन। विष्णुपुराण में चौथे अंश के पन्द्रहवें अध्याय में श्रीकृष्ण के जन्म का वर्णन है। पाँचवें अंश में कृष्ण-चरित का विशेष रूप से अंकन हुआ है। इसमें कृष्ण की लीलाओं के साथ-साथ रासलीला का भी वर्णन है।

कृष्ण-चरित से सम्बद्ध भागवतपुराण सब पुराणों से अधिक महत्त्वपूर्ण है। कृष्णभक्तों ने अपने मार्ग में इसी को आधार के रूप में ग्रहण किया है। महा-भारत से लेकर पुराणकाल तक जितना भी कृष्ण का विवेचन हुआ है, वह सब इस पुराण में सम्प्रहीत है यद्यपि इस पुराण में कृष्ण के सभी रूप आ गये हैं, पर प्रमुखता रसिकराज कृष्ण की ही है। डा० हरवमलाल शर्मा ने बाल-लीलाओं को छोड़कर कृष्ण के शेष जीवन चरित की दृष्टि में भगवान के प्रतिपाद्य को घटनात्मक, उद्देशात्मक, स्तुत्यात्मक और गीतात्मक इन चार भागों में विभाजित किया है और इनका विवेचन निम्नलिखित शब्दों में किया है—

१. घटनात्मक—श्रीमद्भागवत के वे स्थल घटना-प्रधान स्थल हैं जो ऐतिहासिक घटनाओं का वर्णन करने हैं। परन्तु जैसे गोस्वामी तुलसीदास जी मर्यादापुष्पोत्तम श्रीरामचन्द्र जी के चरित्र को चित्रित करते हुए 'रामचरित-मानस' में ग्रन्थ के प्रधान सूत्र भक्ति को नहीं छोड़ते और उमी भावना से अभिभूत होकर अज्ञाने ही राम के चरित में अनौकिकता का रूपादेश कर जाते हैं, उसी प्रकार व्यास जी का लक्ष्य भी भगवत भक्त-निरूपण द्वारा भक्तिरस का परिपाक करना है। अतएव भागवतकार ने घटनात्मक स्थलों पर भी भगवान के दिव्य मंगल-स्वरूप की कई बार स्तुति कराई है। जैसे—भोमासुर-वध के समय, वाणासुर-सग्राम के समय तथा वेद-स्तुति आदि। इन घटनाओं में अलौकिक घटनाओं का भी सम्मिश्रण है। जैसे स्वर्ग से कल्यवृक्ष लाना, देवकी के मृतक पुत्रों को लाना आदि। ऐसे स्थलों पर कवि की प्रतिभा सजग हो उठती है और वह भगवान के स्वरूप में इतना तन्मय हो जाता है कि अन्य सब भाव अभिभूत हो जाते हैं तथा हृदयानुभूति रागात्मिका वृत्ति के साथ उन स्तुतियों और स्तोत्रों के रूप में साक्षात् रूप धारण कर लेती है। श्रीमद्भागवत में जहाँ-जहाँ भी इन घटनाओं का उल्लेख है, वही वही कवि की इस अनुभूति का परिचय मिलता है। इस घटनात्मक भाग में

भागवतकार का उद्देश्य भी भक्ति की दृढता ही है ।

२ उपदेशात्मक—भागवत के उपदेशात्मक भाग में हमें श्रीकृष्ण योगेश्वर, उपदेष्टा तथा विज्ञानी के रूप में मिलते हैं । श्रीमद्भागवत में दो प्रकार के उपदेश हैं—साधारण तथा विशेष । साधारण उपदेश वे उपदेश हैं जो साधु, महात्माओं, गुरुजनों या मित्रों ने दिए हैं । इन उपदेशों का अभिप्राय कर्तव्यकर्म का अनुष्ठान करते हुए भगवद्भक्ति करना है । विशेष उपदेशों के रूप में वे स्थल आते हैं, जहाँ उपदेश किसी व्यक्ति विशेष को विशेष रूप से दिये गए हैं । जैसे उद्धव के प्रति भगवान् के उपदेश, ध्रुव को नारद का उपदेश, चतुश्लोकी भागवत तथा कपिलगीता आदि । ये उपदेश बड़े महत्वपूर्ण हैं क्योंकि इनसे दो बातों की व्याख्या हुई है—परमतत्त्व की और ज्ञान-भक्ति कर्म की ।

३. स्तुत्यात्मक—भागवत का स्तुत्यात्मक भाग भी बड़ा महत्वपूर्ण है क्योंकि इसके द्वारा भी कृष्ण के वास्तविक रूप की व्याख्या की गई है । ये स्तुतियाँ दो प्रकार की हैं—सकाम और निष्काम । सकाम स्तुतियाँ वे हैं जो किसी कामना से प्रेरित होकर की गई हैं । जैसे—कारागार से मुक्त होने के लिए, किसी आपत्ति या दैहिक, दैविक, भौतिक तापो की निवृत्ति के लिए की गई हैं । निष्काम स्तुतियाँ दो प्रकार की होती हैं—एक तो वे जिनमें तत्त्व-ज्ञान की प्रधानता है और दूसरी वे जिनमें साधन की प्रधानता है । वेद-स्तुति तत्त्वज्ञान-प्रधान स्तुति कही जायेगी, क्योंकि इसमें सब तत्वों का पर्यवसान एक ही तत्त्व में दिखाया गया है । प्रह्लाद अम्बरीष, ब्रह्मा, ध्रुव आदि की स्तुतियाँ साधन-प्रधान कही जायेगी क्योंकि इनमें भक्त मुक्ति का इच्छुक न होकर केवल भगवान् के रूप तथा लीला के स्मरण, कीर्तन में आनन्द लेता है ।

४ गीतात्मक—श्रीमद्भागवत का चौथा भाग गीतात्मक है । इन गीतों में ग्रन्थकार का हृदय साक्षात् रूप से द्रवित होता हुआ प्रतीत होता है । उसकी अन्तरात्मा इन गीतों में पूर्णरूपेण प्रस्फुटित है । ये हृदय के वे स्वतः प्रवाही स्रोत हैं जिनका अवरोध कवि के वश की बात नहीं थी । उसकी आत्मा की व्यथा एवं अन्तर्वेदना के ये गीत साकार प्रतिबिम्ब हैं । प्रेम और विरह की भावनाओं से ओतप्रोत इन गीतों की संख्या अधिक नहीं है । पाँच गीत गोपियों के तथा एक द्वारिका की कृष्ण-पत्नियों का है । ये छ गीत दशम स्कन्द में

आए हैं। एकादश स्कन्ध में भी दो गीत आये हैं—एक पिंगला का और दूसरा एक भिक्षुक ब्राह्मण का। पिंगला का गीत निर्वेद-गीत है जो ससार के कटु अनुभवों से उत्पन्न अन्तर्वेदना का अभिव्यजन करता है। सात्विक और सदाचारी होने पर भी दुनिया के हाथों अपमानित होने वाले ब्राह्मण भिक्षुक के गीत में भी वेदना की झलक है। कृष्ण की पत्नियों का गीत दशम स्कन्ध के ६०वें अध्याय में है। उनका मन भगवान की लीला में इतना तन्मय हो जाता है कि वे अपने को भूल जाती हैं। सासारिक अनुभवों का ज्ञान लुप्त हो जाता है और आत्म-विभोरता की अनिर्वचनीय दशा में उनके हृदय-हृद से अनायास ही भावधारा वह निकलती है। समस्त प्रकृति उन्हें कृष्णमयी लगती है और वे प्रकृति के सब पदार्थों को सम्बोधित करके उनका कृष्ण से सम्बन्ध स्थापित करती हैं। वे यह भी भूल जाती हैं कि कृष्ण उनके समीप हैं। गोपी गीतों का वर्णन तो वर्णनातीत है। उनके पाँचों गीतों में अनुपम प्रेम की झलक है। प्रतीत होता है हृदय वाणी के साथ लिपटा हुआ चला आया है।

उपर्युक्त विवेचन से निम्नलिखित निष्कर्ष निकलते हैं—

- १ कृष्ण के दो रूप हैं—सगुण कृष्ण और निर्गुण कृष्ण।
- २ कृष्ण का सौन्दर्य अमिट है।
- ३ कृष्ण और गोपियों में घनिष्ठ प्रेम-सम्बन्ध है।
- ४ कृष्ण अनेक प्रकार की लीलाएँ करते हैं।

रसखान ने भी कृष्ण के स्वरूप में इन्हीं विशेषताओं को प्रतिष्ठित किया है।

सगुण कृष्ण

सिद्धान्ततः कृष्णभक्त-कवि कृष्ण का निर्गुण रूप ही स्वीकार करते हैं, पर व्यवहारतः उन्हें कृष्ण का सगुण और साकार रूप ही मान्य है। इसका कारण यह है कि भक्ति के लिए किसी साकार आलम्बन की आवश्यकता होती है, क्योंकि निराकार आराध्य पर मन की एकाग्रता प्रतिष्ठित नहीं हो सकती। सूरदास के शब्दों में—

‘रूप रेख गुन जाति जुगति विनु निरालम्ब मन चकृत धावै ।

सब विधि अगम विचारहि ताते सूर सगुन लीला पद गावै ॥’

इस सगुण कृष्ण में कृष्णभक्तों ने अनेक प्रकार की विशेषताओं का समावेश किया है। ये विशेषताएँ ही कृष्ण की विविध लीलाओं के नाम से

पुकारी जाती है। यथा—बाललीला, रासलीला, फागलीला, कुंजलीला आदि। रसखान ने अपने काव्य की सीमित परिधि में इन सभी लीलाओं को समाविष्ट करने का प्रयास किया है।

बाललीला में कृष्ण के बचपन की विभिन्न भाँकियाँ हैं। कृष्ण को खिलाते समय यशोदा किसी गाय की ओट लेकर 'ता' शब्द कहती है जिसे सुनकर कृष्ण अपनी और सब बातों को भूलकर यशोदा को ढूँढने लगते हैं। वे कुछ पग चलकर जब यशोदा जी को नहीं देखते तो मचल जाते हैं और पृथ्वी पर लोटकर अपने वस्त्रों को धूल-धूसरित कर लेते हैं। तब यशोदा जी उसके पास आती हैं, कृष्ण हँसने लगते हैं। यशोदाजी अपना सारा मातृत्व कृष्ण पर बलिहार कर देती हैं—

'ता' जसुदा कह्यौ धेनु की ओट ढिढोरत ताहि फिरै हरि भूलै ।
 ढूँढन कूँ पग चारि चलै मचलै रज पाँहि बिधूरि दुकूलै ।
 हेरि हँसे रसखान तबै उर भाल तै टारि कै बाद लटूलै ।
 सो छवि देखि अनन्दब नन्दजू अगनि अग समात न फूलै ।'

जब कृष्ण बड़े हो जाते हैं तो उनकी शोभा में भी अभिवृद्धि हो जाती है। धूल से मना हुआ उनका शरीर, सिर पर बनी हुई चोटी, पैरों में पहनी हुई पैजनी और धारण किया हुआ पीला वस्त्र अत्यन्त ही गोभायमान लगता है। वह प्रसन्नता से परिपूर्ण होकर माखन और रोटी लिए हुए अपने आँगन में घूम-घूमकर खा रहे हैं कि अकस्मात् एक कौवा आता है और उनके हाथ से माखन और रोटी छीनकर ले जाता है—

'धूरि भरे अति सोभित स्यामजू तैसी बनी सिर सुन्दर चोटी ।
 खेलत खात फिरै अँगना पग पैजनी वाजति पीरी कछोटी ।
 वा छवि को रसखान विलोकत बारत काम कला निज कोटी ।
 काग के भाग बडे सजनी हरि-हाथ सौ लै गयौ माखन रोटी ।'

कृष्ण जब किशोरावस्था को प्राप्त कर लेते हैं तो उनका नटखटपना बहुत अधिक बढ़ जाता है। वे गोपियों को अपनी ओर आकर्षित करने के लिए विविध लीलाओं की संयोजना करते हैं। जिनमें से एक रासलीला भी है। रासलीला में कृष्ण अनेक प्रकार से गोपियों को अपनी ओर आकर्षित करने का प्रयत्न करते हैं। कभी वे अपनी बाँसुरी के स्वरों में किसी गोपी का नाम ले देते हैं और कभी अपनी अन्य चेष्टाओं से उन्हें रिझाने की कोशिश

करते हैं। यथा—

१. 'अधर लगाइ रस प्याउ वांमुरी वजाय,
मेरो नाम गाउ हाउ जादू कियो मन मे ।
नटखट नवल मुघर नन्दनन्दन ने,
करि कै अचेत चेत हरि कै जतन मे ।
भटपट उलटि पुलटि पट परिधान,
जानि लागी लालन पे सर्व वाम दन मे ।
रस राम सरस रगीलो रसखानि आनि,
जानि जोर जुगुति विलान कियो जन मे ।

२. 'आज पद गुरती-वट के तट नन्द के नावरे राम रच्यो री ।
नैननि सैननि बैननि सो नहि कोऊ मनोहर भाव बच्यो री ।
जद्यपि राखन को कुल-कानि सर्व ब्रज-वालन प्रान पच्यो री ।
तद्यपि वा रसखानि के हाथ विकानी को अत लच्यो पे लच्यो री ।
३. 'कोज कहा जु पे लोग चबाव मदा करियो करि हे वजमारी ।
मीन न रोक्त राखत कागु सुगावत ताहि री गावनहारी ।
आप री सीरी करे अँदियाँ रसखान घनै धन भाग हमारी ।'
आवत है फिरि आज बन्धो वह रानि के रास को नाचनहारी ॥
४. 'देखत मेज बिछी ही अछी सु बिछी दिप सो भिदिगी सिगरे तन ।
ऐसी अचेत गिरी नहि चेत उपाय करे सिगरी सजनी जन ।
बोली सयानी सखी रसखानि बचै धी सुनाइ बह्यो जुवती गन ।
देखन को चलिये री चली सब रस राच्यो मनमोहन जू वन ॥'

रासलीला की भाति फागलीला मे भी कृष्ण और गोपियों के प्रेम की मनोहर भाँवियाँ प्रस्तुत की गई हैं। होली आ गई है। गोपियाँ कृष्ण से और कृष्ण गोपियों से फाग खेलते हैं। उस समय कृष्ण की जो नाँना होती है उनका वर्णन करना आसान नहीं है—

'खेततु फागु लख्यो पिय प्यारी को ता सुख की उपमा किहि दोलै ।
देखत ही वनि आवै भलै रसखान कहा है जो वारि न कीजै ।
ज्यो ज्यो छवीलो कहै पिचकारी लै एक राई यह दूसरी लीजै ।
त्यो त्यो छवीलो छकै छकि छाक सो हेरै हँसे न टरै सरो भीजै ।'

वस्तुन' जब से फागुन का मास प्रारम्भ होता है, कृष्ण फागलीला मे इतने तल्लीन हो जाते हैं कि ब्रज की शायद ही कोई नवयुवती बचती हो जो

कृष्ण के साथ फागलीला न करे—

‘फागुन लाग्यो सखी जब ते तव ते ब्रजमण्डल धूम मच्यो है ।
नारि नवेली वचै नहि एक विसेख मरै सबै प्रेम अँच्यो है ।
साँझ सकारे चही रसखानि सुरग गुलाल लै खेल रच्यो है ।
को सजनी निलजी न भई अरु कौन भटू जिहि मान वच्यो है ।’

कृष्ण की कुंज-लीलाएँ भी वैसी ही आकर्षक हैं जैसी अन्य लीलाएँ । जब मुस्कराते हुए कृष्ण कुंज से निकलते हैं तो उनकी शोभा को जो भी गोपी देख लेती है वह इतनी भाव-विभोर हो जाती है कि उसे कृष्ण के अतिरिक्त और कोई बात ही याद नहीं रह पाती । उसके सारे सामाजिक बन्धन टूट जाते हैं और नारी सुलभ लज्जा की प्रतिष्ठा समाप्त हो जाती है—

‘रग भर्यो मुस्कात लला निकस्यो कल कुंजन ते सुखदाई ।
मैं तवही निकसी घर ते तकि नैन विसाल की चोट चलाई ।
धूमि गिरी रसखानि तवै हरिनी जिमि वान ललजै गिरि जाई ।
टूटि गयो घर को सब बन्धन टुटिगौ आरज-लाज वडाई ।’

इन लीलाओं के अतिरिक्त दानलीला, चीरहरण-लीला आदि का वर्णन भी रसखान ने किया है ।

निर्गुण कृष्ण

जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है कि कृष्णभक्त-कवियों को सिद्धान्ततः कृष्ण का निर्गुण स्वरूप ही मान्य है । इस स्वरूप का प्रतिपादन सभी कवियों ने किया है । सूरदास की विशेषता तो यह रही है कि वे कृष्ण के साकार अथवा अवतारी-रूप का वर्णन करते-करते बीच-बीच में उनके अलौकिकत्व का भी संकेत देते जाते हैं । यथा—

‘जसोदा तेरी मुख हरि जोव ।
कमलनैन हरि हिचिकिनि रोवै, बन्धन छोरि जसोव ।
जो तेरी सुत खरौ अचगरौ, तऊ कोख को जायौ ।
कहा भयो जो घर कै ढोटा, चोरी माखन खायौ ।
कोरी मदुकी दह्यो जमायौ, जाख न पूजन पायौ ।
तिहि घर देव पितर काहें को, जा घर कान्हर आयौ ।’

जाकी नाम लेत अम छूटै, कर्म-फन्द सब बाटै । - -
 सोई डहाँ जेवरी बाँधे, जननी साँटि लै डाटै । -
 दुखित जानि दोउ सुत कुवेर के ऊखल आपु बाँधायौ ।
 सूरदास प्रभु भक्त हेत ही देह धारि कै आयौ ।' -

× × × ×

‘भीतर तै बाहर लौ आवत ।

घर-आंगन अति चलत सुग भए, देहरि अँटकावत ।
 गिरि-गिहि परत, जात नहि उलघी, अति श्रम होत नचावत ।
 अहुँठे पैग वसुधा सब कीनी, धाम अवधि विरमावत ।
 मन ही मन बलवीर कहत है, ऐसे रग बनावत ।
 सूरदास-प्रभु-अगनित-महिमा, भगतनि कै मन भावत ।

रसखान ने पूर्णरूप से और स्पष्ट रूप से कृष्ण के अलौकिकत्व का वर्णन किया है । ये कहते हैं कि जिस कृष्ण का जप शकर जैसे देव करते हैं, जिनका ध्यान करके ब्रह्मा अपने धर्म में वृद्धि करते हैं, जिनका तनिक-सा ध्यान भी हृदय में लाते ही अत्यन्त मूर्ख भी निपुण ज्ञान के भण्डार बन जाते हैं, जिस पर देव, किन्नर और पृथ्वी पर रहने वाली स्त्रियाँ अपने प्राणों को न्यौछावर करके सजीवता प्राप्त करती हैं, उसी कृष्ण को अहीर की लडकियाँ थोड़ी-सी छाछ के लिए नाच नचाती हैं—

‘सकर से सुर जाहि जपै, चतुरानन ध्यानन धर्म बढ़ावै ।
 नैक हिये जिहि आवत ही जड मूढ महा रसखानि कहावै ।
 जा पर देव अदेव भू-अगना वारत प्रानन प्रानन पावै ।
 ताहि अहीर की छोहरियाँ छछिया भरि छाछ पै नाच नचावै ।’

जिस कृष्ण के गुणों का शेषनाग, गरुड, शिव, सूर्य और इन्द्र निरन्तर स्मरण करते हैं, वेद जिसके स्वरूप का निश्चित ज्ञान प्राप्त करके उसे अनादि अनन्त, अखण्ड, अछेद्य, अभेद्य आदि विशेष विशेषणों से पुकारते हैं । नारद, शुकदेव और व्यास जैसे प्रचण्ड पण्डित भी अपनी पूरी कोशिश करके जिसके स्वरूप का पता न लगा सकने के कारण द्वार पर बैठ गये हैं, उसी कृष्ण को अहीर की लडकियाँ थोड़ी-सी छाछ के लिए नाच नचाती हैं—

‘शेष, गनेस, महेस, दिनेस, सुरेसहु जाहि निरन्तर गावै ।
 जाहि अनादि अनन्त अखण्ड अछेद्य अभेद्य सु वेद बतावै ।

नारद से सुक व्यास रहै पवि हारे तऊ पुनि पार न पावै ।

ताहि अहीर की छोहरियाँ छछिया भरि छाछ पै नाच नचावै ।’

जिस कृष्ण के गुणों का गान अप्सरा, गंधर्व, शारदा और शेषनाग सभी करते हैं गरुड जिसके अनन्त नामों का स्मरण करते हैं, ब्रह्मा और शिव भी जिसके स्वरूप को नहीं जान पाते, जिसे प्राप्त करने के लिए योगी, यति, तपस्वी और सिद्ध निरन्तर समाधि लगाये रहते हैं, फिर भी उसका भेद नहीं जान पाते, उन्हीं कृष्ण को अहीर की लड़कियाँ थोड़ी सी छाछ के लिए नाच नचाती हैं—

‘गावै गुनी गनिका गधरव औ सारद सेस सबै गुन गावत ।

नाम अनन्त गनत गनेस ज्यौ ब्रह्मा त्रिलोचन पार न पावत ।

जोगी जती तपसी अरु सिद्ध निरन्तर जाहि समाधि लगावत ।

ताहि अहीर की छोहरियाँ छछिया भरि छाछ पै नाच नचावत ।’

ब्रह्मा आदि अनेक योगी, जिस कृष्ण के स्वरूप को जानने के लिए समाधि लगाये रहते हैं पर उसका पार नहीं पाते, शेषनाग अपनी सहस्रों जिह्वाओं से जिसका निरन्तर जाप करते रहते हैं, महर्षि नारद अपने हाथ में वीणा लेकर और उसे बजाते हुए तीनों लोकों में फिरते हैं पर कोई भी ऐसी साक्षी नहीं मिलती जिसके आधार पर वे यह दावा कर सकें कि उन्होंने कृष्ण के स्वरूप को जान लिया है । ऐसे दुर्बोध्य और अनन्त कृष्ण को अहीर की लड़कियाँ थोड़ी सी छाछ के लिए नाच नचाया करती हैं ।

शिव जिनको आराध्य मानकर उनका ध्यान करते हैं, सारा ससार जिनकी पूजा करता है, जिनसे महान् और कोई दूसरा देव नहीं है, वही कृष्ण साकार रूप धारण करके अवतरित हुआ है और जो विराट् पुरुष है, वही अपनी लीला दिखाने के लिए माटी खाता फिरता है—

‘सभु धरै ध्यान जाको जपत जहान सब,

ताते न महान् और दूसर अब देख्यौ मैं ।

कहै रसखान वही बालक सरूप धरै,

जाको कछु रूप रग अद्भुत अबलेख्यौ मैं ।

कहा कहुँ आली कछु कहती बनै न दसा,

नन्द जी के अगना मे कौतुक एक देख्यौ मैं ।

जगत को ठाटी महापुरुष विराटी जो,

निरजन निराटी ताहि माटी खात देख्यौ मैं ॥'

कृष्ण की प्राप्ति के लिए ही सारा जगत प्रयत्नशील है। ये वही कृष्ण हैं जिनकी पूजा ब्रह्मा जी रात-दिन किया करते हैं, सदा भक्त-वत्सल शिव जिनका पूर्ण तन्मयता से ध्यान करते हैं, जिनके लिए अहकारी, मूर्ख, राजा, निर्धन सभी प्रकार के लोग योगी बनकर शीतादि के द्वारा अपने अंगों को शिथिल बनाते हैं, वही आनन्द के भण्डार कृष्ण प्राणों के प्राण हैं जिन्हें देखने के लिए लाखों अभिलाषाएँ लाखों प्रकार से बढ़ती हैं, जो पृथ्वी पर रहने वाले लोगों का अहंकार मिटाने वाले हैं, कमल के समान सुन्दर नेत्र वाले हैं, वे ही यशोदा जी के आगे खुरचनी लेने के लिए मचल कर खड़े हुए हैं—

‘वेई ब्रह्मा ब्रह्मा जाहि सेवत है रैन-दिन,

सदा सिव सदा ही घरत ध्यान गाढे है ।

वेई विष्णु जाके काज मानी मूढ राजा रक,

जोगी जती ह्वै के सीत सह्यौ अग डाढे है ।

वेई ब्रजचन्द रसखानि प्रान प्रानन के,

जाके अभिलाख लाख लाख भाँति बाढे है ।

जसुधा के आगे वसुधा के मान-मोचन ये,

तामरस-लोचन खरोचन कौ ठाढे है ॥'

इसके अतिरिक्त कृष्ण का अलौकिकत्व प्रतिपादन करने के लिए रसखान ने कालिय-दमन और कुवलियपीड-वध जैसी कथाओं का भी उल्लेख किया है।

इस विवेचन के आधार पर कहा जा सकता है कि अन्य कृष्ण-भक्त कवियों की भाँति रसखान ने भी कृष्ण के लौकिक और अलौकिक दोनों प्रकार के रूपों का वर्णन किया है। वस्तुतः इनके कृष्ण हैं तो अलौकिक ही, पर अपने भक्तों को अलौकिक आनन्द प्रदान करने के लिए और लोक की रक्षा करने के लिए वे साकार रूप ग्रहण करके अवतार लेते हैं।

: ८ :

रसखान का सौन्दर्य-चित्रण

कृष्ण-भक्ति प्रेम-मूलक भक्ति है। प्रेम के लिए आकर्षण एक प्रमुख तत्व है और आकर्षण के लिए सौन्दर्य का होना अनिवार्य है। सौन्दर्य दो प्रकार का होता है—आभ्यन्तरिक सौन्दर्य और बाह्य सौन्दर्य। आभ्यन्तरिक सौन्दर्य के अन्तर्गत मन की उदात्त भावनाएँ आती हैं। बाह्य सौन्दर्य शारीरिक सौन्दर्य है। कृष्ण-काव्य में इन दोनों प्रकार के सौन्दर्यों का विस्तार से चित्रण हुआ है। रसखान ने भी अपने सौन्दर्य चित्रण में इस परम्परा का पालन किया है।

आभ्यन्तरिक सौन्दर्य

जैसा कि ऊपर बताया जा चुका है, आभ्यन्तरिक सौन्दर्य के अन्तर्गत मन की उदात्त भावनाएँ आती हैं। भक्त की इससे अधिक उदात्त भावना और क्या हो सकती है कि वह स्वयं को सर्वरूपेण अपने आराध्य के प्रति समर्पित कर दे। रसखान-काव्य में, अन्य कृष्ण-भक्तों की भाँति समर्पण की यह भावना पूर्णरूपेण लक्षित होती है। इन्होंने जिस प्रकार स्वयं को अपने आराध्य के प्रति समर्पित किया है, उसी प्रकार अपनी गोपियों में भी समर्पण की यह भावना समाविष्ट की है। पहले कवि की समर्पण-भावना को देखिए।

रसखान का अपने आराध्य के प्रति इतना गम्भीर लगाव है कि ये प्रत्येक स्थिति में उसी का सान्निध्य चाहते हैं, चाहे इसके लिए इन्हें किसी भी प्रकार का फल भुगतना पड़े। इसीलिए ये कहते हैं कि आगामी जन्म में यदि मुझे मनुष्य योनि मिले तो मैं वही मनुष्य बनूँ जिसे ब्रज और गोकुल के ग्वालों के साथ रहने का अवसर मिले। यदि मुझे पशु-योनि मिले तो मेरा जन्म ब्रज में ही हो, ताकि मैं नन्द की घेनुओं के मध्य विचरण कर सकूँ। यदि मैं पत्थर बनूँ तो उसी पर्वत का बनूँ जिसे इन्द्र का गर्व खंडित करने के लिए कृष्ण

ने अपनी अंगुलियों पर धारण किया था और यदि मैं पक्षी बनूँ तो सदैव यमुना के किनारे उगे हुए वृक्षों की शाखों पर चहकता रहूँ—

‘मानुष हौ तौ वही रसखानि वसौ ब्रज गोकुल गाँव के ग्वारन ।
जो पसु हौ तौ वहा वस मेरो चरौ नित नन्द की धेनु मभारन ।
पाहन हौ तौ वही गिरि को जो धर्यौ कर छत्र पुरन्दर धारन ।
जो खग हौ तौ वसेरो करौ मिलि कालिन्दी कूल-कदव की डारन ॥’

इसी प्रकार रसखान अपने शरीरावयवों की सायंकता तभी मानते हैं जब उनसे किसी प्रकार आराध्यदेव की सेवा की जाये। ये अपने आराध्यदेव से विनती करते हैं कि मुझे सदा अपने नाम का स्मरण करने दो ताकि मेरी जीभ इन्द्रियों से प्राप्त आनन्द में न डूब जाये। मुझे कुंजों में बनी हुई अपनी कुटी में भाड़ लगाने दो, जिससे मेरे हाथ सत्कर्म में सदैव प्रवृत्त रहे। मुझे ब्रज की घूल में अपने शरीर को धूसरित करने दो, जिससे मुझे अणिमा आदि आठों सिद्धियों का सुख मिल जाये। यदि आप मुझे निवास करने के लिए कोई विशेष स्थान देना चाहते हैं तो यमुना तट पर खड़े हुए उन्हीं कदम्ब वृक्षों की डालियों पर दीजिए जहाँ पर आप अनेक प्रकार की क्रीड़ाएँ किया करते थे—

‘जो रसना रस ना विलसै तेहि देहु सदा निज नाम उचारन ।
मो कर नीकी करै करनी जु पै कुंज-कुटीरन देहु ब्रुहारन ।
सिद्धि समृद्धि सबै रसखानि लहौ ब्रज-रेनुका अग सवारन ।
खास निवास मिलै जु पै तौ वही कालिन्दी-कूल-कदव की डारन ॥’

जिस प्रकार कवि ने कृष्ण के प्रति अपनी उदात्त भावनाओं की अभिव्यक्ति की है, उसी प्रकार गोपियों की उदात्त भावनाओं को भी व्यक्त किया है। ये भावनाएँ कृष्ण के प्रति आकर्षण में परिलक्षित होती हैं। गोपियाँ जब भी कृष्ण को देखती हैं, तभी उनके हृदय का सौन्दर्य उमड़ पड़ता है और वे कृष्ण के प्रत्येक अंग में, उसकी प्रत्येक वस्तु में सौन्दर्य का अपार पारावार तरंगित देखती हैं, यदि कभी वे कृष्ण की अलकावलि पर, विशाल भाल पर, हृदय पर, फूलती हुई वनमाल पर भाव-विभोर हो उठती हैं—

‘सखि गोवन गावत हो इक ग्वार लख्यो वहि डार गहे बट की ।
अलकावलि राजति भाल विसाल लसै वनमाल हिये टटकी ।

जब ते वह तानि लगी रसखानि निवारै को या मग हौ भटकी ।
लटकी लट सो दृग-मीननि सो बनसी जियवा नट की अटकी ॥’
तो कभी उसे देखते ही उसके सौन्दर्य का ऐसा समन्वित प्रभाव होता है कि उनका शरीर राँग की भाँति ढर जाता है—

‘गाइ दुहाइ न या पै कहू, न कहूँ यह मेरी गरी निकरयौ है ।
धीरसमीर कलिन्दी के तीर खर्यौ रहै आजु ही डीठि पर्यौ है ।
जा रसखानि विलोकत ही सहसा ढरि राँग सो आँग ढर्यौ है ।
गाइन घेरत हेरत सो पट फेरत ढेरत आनि अर्यौ है ॥’

इसी प्रकार के अन्य अनेक उद्धरण प्रस्तुत किये जा सकते हैं जिनमें गोपियों की उदात्त भावनाएँ—भावों का सौन्दर्य—पूर्णतया व्यक्त हुआ है ।

बाह्य सौन्दर्य

बाह्य सौन्दर्य के अन्तर्गत रसखान ने कृष्ण और राधिका के सौन्दर्य का वर्णन किया है । यह वर्णन दो भागों में विभाजित किया जा सकता है—

१. शारीरिक सौन्दर्य

२. चेष्टागत सौन्दर्य

रसखान ने कृष्ण के सौन्दर्य का वर्णन करने के लिए जिन अंगों को चुना है, वे बहुत सीमित और परम्परागत हैं । अतः इनके इस वर्णन में अपेक्षित व्यापकता का अभाव है । प्रायः इतर शब्दों में पुनरावृत्ति-सी ही हुई है । पर यह पुनरावृत्ति भी भावपूर्ण और कवित्वपूर्ण है । कुछ उदाहरण देखिए ।

यशोदा जी के द्वारा सज्जित कृष्ण के सौन्दर्य का वर्णन करती हुई कोई गोपी अपनी सखी से कहती है कि ऐ सखि ! मैं आज ही प्रातः काल नन्द के उस भवन में गई थी जहाँ रस-सागर कृष्ण थे । मैं उन्हें देखते ही उनमें अनुरक्त हो गई । उन जैसा पुत्र पाकर यशोदा जी को जो सुख मिला है, उसका वर्णन नहीं किया जा सकता । मैं तो भगवान से प्रार्थना करती हूँ कि उनका यह पुत्र लाख करोड़ युगों तक जीवित रहे । यशोदा जी ने उनके सिर पर तेल लगाकर और आँखों में काजल डाल कर उनके मुख पर ढिठौना लगा दिया । उनके गले में हमेल और हार डालकर यशोदा जी उसके सौन्दर्य को निहारती रही, उन पर स्वयं को न्योछावर करके उन्हें चूमती रही—

‘आजु गई हुती भोर ही हौ रसखान रई वहि नन्द के भौनहि ।

वाको जियौ जुग लाख करोर, जसोमति को सुख जात कह्यौ नहि ॥

तेल लगाइ लगाइ कै अंजन, भोंहे वनाइ-वनाइ टिठौनहि ।
 डालि हमेलनि हार निहारत, वारत ज्या चुमकारत छौनहि ॥
 कृष्ण का सौन्दर्य वस्तुतः इतना अमित है कि उस पर कामदेव भी अपनी
 करोड़ों सुन्दरताओं को न्योछावर करने के लिए विवश हो जाता है—

“धूरि भरे अति सोभित व्याम जू, तैसी बनी मिर सुन्दर चोटी ।
 खेलत खात फिरै अगना, पग पैजनि वाजति पीरी कछोटी ॥
 वा छवि को रसखान बिलोकत, वारत काम कगा निज कोटी ।
 काग के भाग बटे सजनी, हरि हाथ सो लै गयी मायन-रोटी ।”

कृष्ण के गले की मोतियों की माला का, घू घरदार केशराशि का, जटाऊ
 आभूषणों का, सिर पर जरीदार पगड़ी का सौन्दर्य भी कुछ कम नहीं है । इस
 सौन्दर्य का दर्शन तो पूर्व-मचित पुण्यों में ही होता है—

‘मोतिन माल बनी नट के, लटकी लटवा लट धूँवर वारी ।
 अग ही अग जराव लमै अरु सीम लमै पगिया जरतारी ॥
 पूरव पुन्यनि ते रसखानि सु मोहिनी मूरति आनि निहारी ।
 चार्यौ दिमानि की लै छवि, आनि के भाँके भरोमे में बाँके विहारी ॥’

इनके मस्तक पर लगी हुई गोधूलि को, हृदय पर लहगती हुई वनमाला
 को, सुरीली वशी को और पीले वस्त्र की फहराहट को देखकर गोपियाँ इतनी
 भाव-विभोर हो जाती हैं कि वे सब प्रकार के दुखों को भूलकर आनन्द में डुब-
 कियाँ लेने लगती हैं—

गोरज विराजै भाल लहलही वनमाल,
 आगे गैया पाछे ग्वाल गावै मृदु तानिरी ॥
 तैसी धुनि बाँसुरी की मधुर-मधुर जैसी,
 बक चितवनि मद मद मुसकानि री ॥
 कदम विटप के निकट तटनी के तट,
 अटा-चाडि चाहि पीत पट फहरानि री ॥
 रस वरसावै तन-तपनि बुझावै नैन,
 प्राननि रिभावै वह आवै रसखानि री ॥’

कृष्ण के नेत्रों की वक्रता इतनी तीक्ष्ण है कि कोई गोपी उसकी चोट को
 सहन नहीं कर सकती, इसीलिए उनकी गोभा में समूचे ब्रज में कोलाहल मचा
 हुआ है—

‘नैननि बक विसाल के बाननि भेलि सकै अस कौन नवेली ।
वेधत है हिम तीछन कोर सुमार गिरी तिम कोटिक हेली ॥
छोडै नही दिनहूँ रसखानि सु लाग फिरै द्रुम सो जनु बेली ।
रौरि परी छवि की ब्रज-मडल कु डल गडनि कु तल केली ॥’

उनकी दृष्टि और वाणी विलक्षण है, उनकी चंचल दृष्टि भी विलक्षण-सी है । उनके कपोलो पर कुण्डलो की छवि हाथी के गडस्थल पर पड़ी हुई छवि की भाँति विलक्षण है । जिस समय वे पेड़ की डाली पकड़ कर खड़े होते हैं तो उस समय उनकी जो शोभा होती है, उसका वर्णन करना कठिन है । कोई भी गोपी उनकी उस समय की शोभा से और उनकी मधुर मुस्कान से अपने को नहीं बचा सकती—

‘अलवेली विलोकनि बोलनि औ अलवेलियै बोल निहारन की ।
अलवेली सी डोलति गजनि पै छवि सो मिल कुण्डल बारन की ॥
भट्ट ठाढौ लख्यौ छवि कैसे कह्यौ रसखानि गहे द्रुम डारन की ।
हिय मै जिय मै मुसकानि रसी गति को सिखवै निरवारन की ॥

कृष्ण की विशाल आखे, पुष्ट कपोल, मधुर भाषण, सुन्दर हँसी, सुन्दर मुख को जो भी गोपी एक बार देख लेती है, वह पागल होकर उसे गली गली से ढूँढती फिरा करती है—

‘बाँकी बड़ी अँखियाँ बडरारे कपोलनि बोलनि कोकिल बानी ।
सुन्दर हार सुघानिधि सो, मुख मूरति रग सुधारस-सानी ॥
ऐसी नवेली ने देखे कहूँ ब्रजराज लला अति ही सुखदानी ।
डोलति है बन बीथिन मे रसखानि मनोहर रूप लुभानी ॥

कृष्ण के नेत्र इतने विशाल हैं कि वे कानो तक खिंचे रहते हैं । उनके केश मुख पर लहराते रहते हैं । उनकी सुन्दर शोभा की कान्ति चारों ओर बिखर कर करोड़ों प्रकार के खेल दिखाती है । वास्तविकता तो यह है कि उसकी शोभा झुक कर, झूमकर और अमृत को चूमकर चन्द्रमा की चाँदनी को चुराने वाली है—

‘दृग दूने खिंचे रहै कानन लौ लट आनन पै लहराइ रही ।
छकि छैल छबीली छटा घहराय कै कौतुक कोटि दिखाइ रही ॥
झुकि झूमि झुमाकनि चूमि अमी चहि चाँदनी चद चुराई रही ।
मन भाह रही रसखानि महा छवि मोहन की तरसाइ रही ॥’

सध्या समय जब कृष्ण गायो को चराकर वापिस लौटते हैं तो सारे गोरज से धूसरित हो जाते हैं। उस समय कृष्ण की गोभा ऐसी दिखाई देती है मानो आग के पहाड़ से बुझकर धुएँ के बादल चढ़े चले आ रहे हों —

साँभ समै जिहि देखति ही तिहि देखन की मन मा ललकै री ।

ऊँची अटान चढी ब्रजवाम सु लाज मनेह दुर उभकै री ॥

गोधन धूरि की धूँधरि मै तिनकी छवि यो रसगानि नकै री ।

पावक के गिरि ते बुझि मानी धुवाँ-लपटी लपटै लपकै री ॥'

कृष्ण का शारीरिक सौन्दर्य स्वाभाविक रूप में बहुत ही आकर्षक है। पर इस पर स्वाभाविक गति से धारण किये हुए आभूषण इसे और भी अधिक आकर्षक बना देते हैं। कृष्ण के कानों में पड़े हुए कुण्डल विजली के समान चमकते हैं। गीवों के पैरों से उठी हुई धूलि बादलों के उमड़ने के समान प्रतीत होती है—

'दमकै रवि कुण्डन दाम्नि से धुरवा जिमि गोरज राजत है ।

मुक्ताहल-दारन गोपन के मु तौ वूँदन की छवि छाजत है ॥

ब्रजवाल नदी उमही रसखानि मयक बधू द्रुति लाजत है ।

यह आवत श्री मनभावन की वरखा जिमि आज विराजत है ।'

शारीरिक सौन्दर्य के अतिरिक्त रसखान ने चेष्टागत सौन्दर्य का भी पर्याप्त वर्णन किया है। जिस प्रकार कवि ने शारीरिक सौन्दर्य की परिधि को सीमित रखा है, अर्थात् इने-गिने शरीरावयवों का ही परम्परागत अनुमानों के द्वारा चित्रण किया है; अथवा परम्परागत आभूषणों का उल्लेख किया है, उसी प्रकार चेष्टाएँ भी इनी-गिनी हैं। वक्र-दृष्टि, वंशीवादन, मुस्कराना आदि तक ही कवि ने अपने चेष्टागत सौन्दर्य को सीमित रखा है। निम्नलिखित सवैया में वंशी-वादन के सौन्दर्य का वर्णन है—

आवत है वन ते मनमोहन गाइन सग लसे ब्रज-गवाला ।

वेनु बजावत गावत गीत अभीत इतै करिगौ कछु ख्याला ॥

हेरत हेरि कके चहुँ ओर ते भाँकि भरोखन तै ब्रजवाला ।

देखि मु आनन को रसखानि तज्यौ सव घोस को ताप-कसाला ॥

और—

अति सुन्दर री ब्रजराजकुमार महामृदु बोलनि बोलत है ।

लख नैन की कोर कटाछ चलाइ कै लाज की गाठन खोलत है ॥

सुन री सजनी अलबेलो लला वह कु जनि-कु जनि डोलत है ।

रसखानि लखे मन बूडि गयौ मधि रूप के सिन्धु कलोलत है ।

इसमे वक्रदृष्टिगत चेष्टा के सौन्दर्य का वर्णन है ।

कृष्ण के द्वारा गायो के घेरने मे, लाठी को घुमाने मे, वक्रदृष्टि से देखने मे, सगीत की ताने बजाने मे और पीले वस्त्रो के फहराने मे भी गोपियो को अपार सौन्दर्य के दर्शन होते है—

‘वह घेरनि धेनु अवेर सवेरनि फेरनि लाल लकुटनि की ।

वह तीछन चच्छु कटाछन की छवि मोरनि भौह भृकुटनि का ॥

वह लाल की चाल चुभी चित मे रसखानि सगीत उधुटनि की ।

वह पीत पटक्कनि की चटकानि लिटक्कनि मोर मुकुटनि की ।’

कृष्ण की वक्रदृष्टि मे इतना सौन्दर्यपूर्ण आकर्षण है कि उसे देखते ही समस्त ब्रज वालाएँ अपना कुल लाज और अपने गृह-काज को छोड बैठती हैं—

भटू सुन्दर श्याम सिरोमनि मोहन जोहन मै चित चोरत है ।

अवलोकन वक बिलोचन मे ब्रजवालन के दृग जोरत है ॥

रसखानि महावत रूप सलोनों को मारग ते मन मोरत है ।

गृहकाज समाज सबै कुल लाज लला ब्रजराज को तारत है ॥

वक्रदृष्टि का यही प्रभाव निम्नलिखित सवैये मे वर्णित है—

आली लला घन सो अति सुन्दर तैसो लसै पियरो उपरैना ।

गडनि पै छलकै छवि कुण्डल मडित कुतल रूप की सेना ॥

दीरघ वक विलोकनि की अवलोकनि चोरित चित्त को चैना ।

मो रसखानि हर्यौ चित की मुसकाइ कहे अधरामृत वैना ॥

कही-कही रसखान ने अनेक चेष्टाओ का एक साथ ही वर्णन किया है । निम्नलिखित सवैये मे वक्रदृष्टि, कटाक्ष मारना, मुस्कराना इन तीनों चेष्टाओ का एक साथ वर्णन किया है—

मोहन रूप छकी वन डोलति धूमति री तजि लाज विचारै ।

वक विलोकनि नैन विसाल सु दम्पति कोर कटाछन मारै ।

रग भरी मुख की मुसकान लखै सखि कौन जु देह सम्हारै ।

ज्यौ अरविन्द हिमत करी भकभोरि कै तोरि मरोरि कै डारै ।’

कृष्ण की चेष्टाओ में मुसकान और वक्र दृष्टि का वर्णन कवि ने सबसे

अधिक किया है ।

कृष्ण के सौन्दर्य के अतिरिक्त कवि ने राधा के सौन्दर्य का भी वर्णन किया है । राधा के सौन्दर्य के उपमान और उन्हे प्रस्तुत करने की रीति प्रायः परम्परागत है । यथा—

‘कैधो रसखान रस कोस दृग प्यास जानि,
आनि के पीयूष पूष कीनो विधि चद घर ।
कैधो मनि मानिक वैठारिवो को कचन मै,
जरिया जोवन जिन गढिया सुघर घर ।
कैधो काम कामना के राजत अधर चिन्ह,
कैधो यह भौर ज्ञान वोहित गुमान हर ।
एरी मेरी प्यारी दुति कोटि रति रम्भा की,
वारि डारौ तेरी चित चोरिन चिवुक पर ।

इस कवित्त में नेत्र, मुख, शरीर-गठन, अवरो की लाली, नासिका का छिद्र और चिवुक की शोभा का वर्णन किया गया है । इनकी शोभा का वर्णन करने के लिए जिन उपमानों की संयोजना की गई है वे सभी प्रायः परम्परागत हैं ।

‘श्री मुख सौ न बखान सकै वृषभान सुनाजू को रूप उजारो ।
हे रसखान तू ज्ञान सभार तरैनि निहार जु रीझनहारो ।
चारु सिन्दूर को लाल रसाल लसै ब्रजवाल को भाल टिकारो ।
गोद में मानी विराजत है घनस्याम के सारे की सारे को सारो ॥’

इस सर्वे में राधा के समस्त सौन्दर्य के साथ उसके मस्तक पर लगे हुए सिन्दूर के टीके की शोभा का वर्णन किया गया है जो ऐसा प्रतीत होता है मानो चन्द्रमा की गोद में मंगल सुशोभित हो ।

‘अति लाल गुलाल दुकूल ते फूल अली ; अलि कुंतल राजत है ।
मखतूल समान के गुज छरानि मैं किसुक की छवि छाजत है ।
मुकता के कदम्ब ते अक के मौर सुने सुर कोकिल लाजत है ।
यह प्राननि प्यारी जु की रसखानि वसत-सी आज विराजत है ॥’

इस सौन्दर्य-वर्णन में साग रूपक की योजना के द्वारा राधा को वसन्त बताया गया है । कोई गोपी अपनी सखी से राधा के सौन्दर्य का वर्णन करती है कि हे सखी ! राधा का अत्यन्त लाल गुलाल के समान दुकूल गुलाब के लाल फूल की भाँति शोभायमान है । उसकी काली केश-राशि भीरो के समान सुशो-

भित है । काले रेशम की डोरियो मे बँधे हुए गुंज पलाश-पुष्प की भाँति शोभा से सम्पन्न है । उसके मोती कदम्ब और आम की मजरियो के समान शोभायमान है । उसकी वाणी मे इतना माधुर्य है कि उसके वचनो को सुनकर कोयल भी लज्जित हो जाती है ।

‘तन चदन खोर कै बैठी भटू रही आजु सुधा की सुता मनसी ।
मनौ इदुबधून लजावन कौ सब ज्ञानिन काढि धरी गन-सी ।
रसखानि विराजति चौकी कुचौ बिच उत्तमताहि जरी तन-सी ।
दमकै दृग-बान के घायन कौ गिरि सेत के सधि के जीवन-सी ॥’

अपने शरीर पर चन्दन लगाकर बैठी हुई वह सुधा की मानस-पुत्री राधा ऐसी प्रतीत हो रही है मानो चन्द्रमा की पत्नियो तारिकाओ को लज्जित करने के लिए सब प्रकार से अपनी समग्र सात्विक शोभा को बाहर निकालकर बैठी हुई हो । उसके कुचो के बीच मे हार का चदा इस प्रकार सुशोभित है जैसे सौन्दर्य को ही उसके शरीर मे जड दिया गया हो । वह चन्दा ऐसा प्रतीत होता है मानो दृग वाणो का घाव दमक रहा हो, अथवा श्वेत पर्वत के सधि-स्थान मे कोई जलाशय हो ।

‘आज सँवारति नेकु भटू तन, मद करी रति की दुति लाजै ।
देखत रीझि रहे रसखानि सु, और कहा विधिना उपराजै ।
आए है न्यौते तरैयन के मनो सग पतग पतग जुराजै ।
ऐसे लसै मुकुतागन मै तिल तेरे तरौना के तीर बिराजै ॥’

कोई गोपी राधा से उसके सौन्दर्य का वर्णन करती हुई कहती है कि हे सखि ! आज तनिक अपना शरीर सभाल लो, क्योंकि इसके समक्ष रति का सौन्दर्य भी मद हो गया है और वह इसी कारण लज्जित हो रही है । आनन्द-सागर कृष्ण तुम्हारी शोभा को देखकर रीझ रहे हैं । तुम ब्रह्मा की सौन्दर्य-सृष्टि की चरम पराकाष्ठा हो । मोतियो से युक्त तुम्हारे तरौना के किनारे पर सुशोभित तिल इस प्रकार शोभा दे रहा है मानो सूर्य के साथ सारे नक्षत्र आकर एकत्र हो गये हो ।

यह राधिका का स्वाभाविक सौन्दर्य है, किन्तु कवि ने उस सौन्दर्य का भी वर्णन किया है जो आभूषणो एवं परिधानो के कारण द्विगुणित हो रहा है । यथा —

‘प्यारी की चारु सिगार तरगन जाय लगी रति की दुति कूलनि ।
जोवन जेव कहा कहिए उर पै छवि मजु अनेक दुकूलनि ।

कचुकी सेत में जावक-विन्दु विलोकि मरै मधवानि की सूलनि ।

पूजे है आजु मनी रसखान सु भूत के भूप वधूक के फूलनि ॥'

अर्थात् राधा के सुन्दर सौन्दर्य की लहरें रति की शोभा के किनारों से जा लगी ह । उसके यौवन की काति का तो कहना ही क्या ? उसके हृदय पर अनेक वस्त्रों की शोभा सुशोभित है । उसकी श्वेत कचुकी में लाल रंग के विन्दु को देखकर तो मनुष्य इन्द्र के वज्र की चोट की भाँति भारी चोट खाकर मर जाता है । उसके कुचों पर पड़ा हुआ लाल वस्त्र इस प्रकार प्रतीत हो रहा है मानो वधूक के फूलों से शिव की पूजा की गई हो ।

राधा की शरीर-काति इस प्रकार चमकती है जैसे दिव्य की बाती उकसा दी गई हो —

'वाँकी मरोर गही भुकुटीन लगी अँखियाँ तिरछानि तिया की ।

टाँक सी लाँक भई रसखानि सुदामिन तें द्युति दूनी तिया की ।

सीहँ तरंग अनग की अगनि ओष उरोज उठी छतिया की ।

जोवन-जोति सु यौ दमकै उसकाड दई मनो बाती दिया की ॥'

राधा के शरीरावयवों के सौन्दर्य-वर्णन में परम्परागत उपमानों का ही प्रयोग किया गया है । यथा—

'जाको लसै मुख चद समान कुमानी सी भीह गुमान हरै ।

दीरघ नैन सरोजहुँ तै मृग खजन मीन की पाँत दरै ।

रसखान उरोज निहारत ही मुनि कौन समाधि न जाहि टरै ।

जिहि नीके नवै कटि हार के भार सो तासो कहे सब काम करै ।

इस मंत्रये में मुख के लिए चन्द्रमा का, भीह के लिए कुमानी का, नेत्रों के लिए कमल, खजन, मृग और मीन का उपमान ग्रहण किया गया है । ये उपमान उपर्युक्त उपमेयों के लिए परम्परागत हैं ।

इस विवेचन के उपरान्त यह कहा जा सकता है कि यद्यपि रसखान ने सौन्दर्य के दोनों पक्षों का—ग्रान्तरिक पक्ष और बाह्य पक्ष का—वर्णन किया है, पर इनके वर्णन में व्यापकता नहीं है । गिने-चुने शरीरावयवों की तथा भावों की परम्परागत उपमानों के द्वारा शोभा वर्णित की गई है अतः पुनरावृत्ति भी पाई जाती है । यह पुनरावृत्ति मुक्तक काव्य में किसी प्रकार की बाधा भी नहीं है । निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि अपनी सौन्दर्य-भावना को व्यक्त करने के लिए कवि ने जिस सीमित क्षेत्र को चुना है, उसमें वे काफी सफल रहे हैं ।

रसखान की अलंकार-योजना

‘अलंकार’ शब्द दो शब्दों के योग से बना है—अलंकार, जिसका अर्थ है अलंकृत अथवा विभूषित करने वाला । जिस प्रकार शरीर की शोभा के लिए हारादिक का प्रयोग किया जाता है, उसी प्रकार वाणी की शोभा के लिए—सजकत अभिव्यजना के लिए—उपमा आदि अलंकारों का प्रयोग किया जाता है । यहाँ पर यह बता देना भी आवश्यक है कि यदि आभूषणों का उचित प्रयोग न होगा तो वे शरीर की शोभा में बाधक ही होंगे । इसी प्रकार वाणी के अलंकार भी तभी अभिव्यजना में सहायक होते हैं, जब उनका प्रयोग स्वाभाविक रीति से होता है । प्रयत्न साध्य अलंकार-प्रयोग काव्य के काव्यत्व को हानि ही पहुँचाते हैं ।

अलंकारों के मुख्यतया दो भेद माने गये हैं—शब्दालंकार और अर्थालंकार । जब चमत्कार शब्द पर आश्रित होता है तो वहाँ शब्दालंकार माना जाता है और जब वह अर्थ पर आश्रित होता है तो वह अर्थालंकार माना जाता है । कुछ आचार्यों की मान्यता यह है कि शब्दालंकार केवल चमत्कारक होते हैं, भाव-वर्द्धक नहीं, पर यह मान्यता उचित नहीं है । स्वाभाविक रीति से प्रयुक्त शब्दालंकार भी भावों को सबल बनाते हैं, उनकी प्रेषणीयता में सहायक सिद्ध होते हैं ।

रसखान के काव्य में दोनों ही प्रकार के अलंकारों का प्रचुर प्रयोग मिलता है । यहाँ पर यह भी स्मरण रखना चाहिए कि रसखान का साध्य भावों की अभिव्यक्ति थी, चमत्कारों का प्रदर्शन नहीं । अतः इनके काव्य में प्रयुक्त अलंकार भाववर्द्धक हैं ।

शब्दालंकार

रसखान के काव्य में शब्दालंकारों का प्रयोग प्रचुर मात्रा में पाया जाता है । अनुप्रास, यमक, सिहावलोकन, वीप्सा, श्लेष, वक्रोक्ति आदि अलंकारों

को इन्होंने बहुत ही सफलता से प्रयोग किया है। यह बात निम्नलिखित विवेचन से स्वतः सिद्ध हो जाती है।

१. अनुप्रास—जहाँ समान व्यंजनो की स्वर-सहिता अथवा स्वर-रहित आवृत्ति हो, वहाँ अनुप्रास अलंकार होता है। इसके पाँच भेद माने गये हैं—छेकानुप्रास, वृत्त्यनुप्रास, श्रुत्यनुप्रास, लाटानुप्रास और अन्त्यानुप्रास। जहाँ अनेक वर्णों की एक बार समता हो, वहाँ छेकानुप्रास होता है। जहाँ वृत्तिगत अनेक वर्णों का एक वर्ग की अनेक बार समता हो, वहाँ वृत्त्यनुप्रास होता है। जहाँ कण्ठ, तालु आदि किसी एक ही स्थान से उच्चरित होने वाले वर्णों की आवृत्ति हो, वहाँ श्रुत्यनुप्रास होता है। जहाँ आवृत्त वाक्यों में तात्पर्य भेद से अर्थ की भिन्नता हो, वहाँ लाटानुप्रास होता है। छन्द की अन्तिम तुक को अन्त्यानुप्रास कहते हैं। रसखान-काव्य में ये सभी भेद उपलब्ध हैं। यथा—

‘मानुष ही तौ वही रसखानि वसीं ब्रज गोकुल गाँव के ग्वारन ।
जौ पसु ही तौ कहा वस मेरो चरी नित नद की वेनु मेंभारन ।
पाहन ही तौ वही गिरि को जो धर्यी कर छत्र पुरदर धारन ।
जौ खग ही तौ वसेरो करी मिलि कानिदी कूल कदव की डारन ।

इस मवेये में ‘वसीं ब्रज’ में ‘व’ की, ‘गोकुल गाँव’ में ‘ग’ की, ‘नित नद’ में ‘न’ की और ‘कानिदी कूल’ में ‘क’ वर्णों की आवृत्ति है। अतः यहाँ छेकानुप्रास है। इसी प्रकार—

‘मंकर से सुर जाहि जपै चतुरानन ध्यानन धर्म बढ़ावै ।
नैक हिये जिहि आनत ही जड मूढ महा रसखानि कहावै ।
जा पर देव अदेव भू-अगना वारत प्रानन प्रानन पावै ।
ताहि अहीर की छोहरिया छलिया भरी छाछ पै नाच नचावै ॥

इसमें ‘मंकर से सुर’ में ‘स’ की, ‘ध्यानन धर्म’ में ‘ध’ की, ‘देव अदेव’ में ‘द’ और ‘व’ की, ‘प्रानन पावै’ में ‘प’ की ‘छोहरिया छलिया’ में ‘छ’ की ‘नाच नचावै’ में ‘न’ की आवृत्ति होने से छेकानुप्रास है।

वृत्त्यनुप्रास में वृत्तिगत अनेक वर्णों की या एक वर्ण की अनेक बार समता होती है। यथा—

‘सिप गनेस महेस दिनेस सुरेसहु जाहि निरन्तर गावै ।
जाहि अनादि अनत अखड अछेद अभेद सुवेद बतावै ।

नारद से सुनि व्यास रहै पचि हारे तऊ पुनि पार न पावै ।

ताहि अहीर की छोहरियाँ छछिया भरि छाछ पै नाच नचावै ॥'

इस सवैये मे 'स', 'अ', 'द', 'प', और 'घ' वर्ग की अनेक बार आवृत्ति है ।

अतः यहाँ कोमलावृत्ति से युक्त वृत्त्यनुप्रास है । इसी प्रकार—

'गावै गुनि गनिका गधरब औ सारद सेप सवै गुन गावत ।' मे 'ग' और 'स' वर्ण की अनेक बार आवृत्ति होने के कारण वृत्त्यनुप्रास है ।

वृत्त्यनुप्रास के अन्य उदाहरण ये हैं—

१ 'साज समाज सवै सिरताज औ छाज की बात नही कहि आवै ।' - -

२ 'सेष सुरेस दिनेस गनेस अजेस धनेस महेस मनावौ ।

३. 'है कुच कचन के कलसा न ये आम की गाँठ मढीक की चाम मे ।'

४. 'लाडली लाल लसै लखियै अलि पु जनि कु जनि मै छवि गाढी ।'

५ 'बालन लाल लिये बिहरै छहरै वर मोरपखी सिर ठाढी ।'

'मोतिन माल बनी नट के, लटकी लटवा लट धूँधरवारी ।

अग ही अग जराव लसै अरु सीस लसै पगिया जरतारी ।

पूरव पुन्यनि ते रसखानि सु मोहिनी भूरति आनि निहारी ।

चार्यौ दिसनि को लै छवि आनि कै भाँके झरोखे मै बाँके बिहारी ॥'

इस सवैये मे 'त, न, ल' वर्ग दन्त्य स्थान के, 'ट और र, मूर्धन्य स्थान के 'प व, म' औष्ठ्य स्थान के हैं । अतः यहाँ श्रुत्यनुप्रास है ।

५. यमक—जहाँ एक ही शब्द की दो बार आवृत्ति हो, किन्तु आवृत शब्द भिन्नार्थक हो, वहाँ यमक अलकार होता है । यह आवृत्ति तीन प्रकार से हो सकती है—

१. जहाँ दोनो शब्द सार्थक हो ।

२. जहाँ दोनो शब्द निरर्थक हो ।

३. जहाँ एक शब्द सार्थक और एक निरर्थक हो ।

रसखान के काव्य मे तीनों प्रकार के यमक पाये जाते हैं ।

'बैन वही उनको गुन गाइ औ कान वही उन बैन सो सानी ।

हाथ वही उन गात सरै अरु पाइ वही जु वही अनुजानी ।

जान वही उन आन के सग औ मान वही जु करै मनमानी ।

त्यौ रसखानि वही रसखानि जु है रसखानि सो है रसखानी ॥'

इस सवैये की अंतिम पंक्ति मे 'रसखानि शब्द की आवृत्ति है । दोनो

शब्द सार्थक है। अतः यहाँ यमक अलंकार है।

‘आजु गई हुती भोर ही हौ रसखानि रई वाहि नद के भौनहि ।
वाकौ जियौ जुग लाख करोर जसोमति को सुख जात कह्यौ नहि ।
तेल लगाइ लगाइ के अजन भोहे बनाइ बनाइ डिठौनहि ।
आलि हमेलनि हारि निहारत वारत ज्यौ पुचकारत छौनहि ॥’

इस सवैया की अंतिम पंक्ति में प्रयुक्त ‘वारत’ और ‘पुचकारत’ इन शब्दों में ‘आरत’ शब्द की आवृत्ति है। दोनों ही शब्द निरर्थक हैं। अतः यमक अलंकार है।

‘लाल लमै पगिया सबके सबके पट कोटि सुगन्धनि भीने ।
अगनि अग सजै सब ही रसखानि अनेक जराउ नवीने ।
मुकता गलमाल लमै सब के सब ग्वार कुमार सिंगार सो कीने ।
मै सिगरे ब्रज केहरि की हरि ही के हरै हियरा हरि लीने ॥’

यहाँ अंतिम पंक्ति में ‘केहरि’ में ‘हरि’ और ‘हरि’ शब्द की आवृत्ति है। ‘केहरि’ का ‘हरि’ निरर्थक है। अतः यहाँ पर एक निरर्थक और एक सार्थक पद की आवृत्ति है। यहाँ यमक अलंकार है।

यमक के अन्य कुछ उदाहरण ये हैं—

१. ‘जो रसना रस ना बिनसै तेहि देहु सदा निज नाम उचारन ।’
२. ‘जो पै राखनहार है माखन चाखनहार ।’
३. ‘बिमल सकल रसखानि मिलि, भई सकल रसखानि ।
सोई नव रसखानि को, चित चातक रसखानि ॥’
४. ‘तामरस-लोचन खरोचन कौ ठाढ़े है ।’
५. ‘ताते तिन्है तजि जनि गिर्यौ गुन सौगुन औगुन गाँठि परैगी ।’
६. ‘सो कवि देख आनन्दन नन्द जू अगनि अंग समात न फूलै ।’
७. ‘राधिका जी है तो जीहै सबै न तौ पीहै हलाहल नन्द के द्वारै ।’
८. ‘यो पछितावो यहै जु सखी कि कलंक लग्यौ पर अंक न लागी ।’

३. **सिंहावलोकन**—जिस प्रकार सिंह पीछे मुड़कर देखता है, उसी प्रकार अलंकार में एक चरण के वर्गों की दूसरे चरण के प्रारम्भ में आवृत्ति होती है। इसे संस्कृत आचार्यों ने मुक्तपदग्राह्य यमक कहा है। रसखान-काव्य में इस अलंकार का केवल एक उदाहरण मिलता है जो यह है—

‘भेती जु पै कुबरी ह्याँ सखी भरि लातन मूका बकोटती लेती ।
लेती निकाहि हिये की सबै नक छेदि कै कौडी पिराइ कै देती ।
देती नचाइ कै नाच वा राँड को लाल रिभावन को फल सेती ।
सेती सदा रसखानि लिये कुबरी के करेजनि सूल सी भेती ॥’
इस सवैया में ‘भेती’, ‘लेती’, ‘देती’ और ‘सेती’ वर्णों की आवृत्ति है ।

४. वीप्सा—जहाँ किसी भाव को सबल बनाने के लिए उन्हीं शब्दों की आवृत्ति की जाती है, वहाँ वीप्सा अलंकार होता है । रसखान ने इस अलंकार का भी बड़ी कुशलता से भावपूर्ण प्रयोग किया है । यथा—

‘तै न लख्यौ जब कुंजनि ते बनिके निकस्यौ भटक्यौ मटक्यौ री ।
सोहत कैसो हरा टटक्यौ अरु कैसो किरीट लसै लटक्यौ री ।
को रसखानि फिरै भटक्यौ हटक्यौ ब्रज-लोग फिरै भटक्यौ री ।
रूप सबै हरिवा नट को हियरे भटक्यौ अटक्यौ अटक्यौ री ॥’

इस सवैया में ‘अटक्यौ’ शब्द की तीन बार आवृत्ति के कारण कृष्ण के प्रति गोपी के प्रेम की अधिक प्रगाढता व्यजित हुई है । इसी प्रकार—

‘काननि दै अँगुरी रहिवो जबही मुरली धुनि मद बजै है ।
मोहनी ताननि सो रसखानि अटा चढि गोधन गैहै तो गैहै ।
टेरि कहौ सिगरे ब्रज-लोगनि काल्हि कोऊ सु कितौ समुझैहै ।
माइ री वा मुख की मुसकानि सम्हारी न जैहै न जैहै न जैहै ।

इस सवैया की चतुर्थ पंक्ति में ‘न जैहै’ शब्द की तीन बार आवृत्ति है जो कृष्ण की मुस्कान के आकर्षण को कई गुना बढ़ा देती है ।

५. श्लेष—जहाँ कोई शब्द एक से अधिक अर्थों का द्योतन करने के कारण चमत्कारक होता है, वहाँ श्लेष अलंकार होता है । इसके दो भेद किये गये हैं—सभंग श्लेष और अभंग श्लेष । सभंग श्लेष में पद को भग काने से एकाधिक अर्थ की प्राप्ति होती है और अभंग श्लेष में पद को भग नहीं करना पड़ता । सभंग श्लेष की अपेक्षा अभंग श्लेष में अर्थ की रमणीयता अधिक रहती है । इसीलिए भाव-प्रवण कवियों की रचनाओं में सभंग श्लेष की अपेक्षा अभंग श्लेष के उदाहरण ही मिला करते हैं । रसखान में तो केवल अभंग श्लेष ही मिलता है । यथा—

‘ए सजनी लोनो लला, लह्यौ नद के गेह ।
चितयौ मृदु मुसकाइ कै, हरी सबै सुधि देह ॥’

यहाँ पर 'हरी' शब्द के हरण 'करना' और 'प्रसन्न होना' ये दो अर्थ हैं ।
इसी प्रकार—

‘स्याम सधन वन घेरि कै, रम वरस्यौ रसखानि ।

भई दिमानी पानि करि, प्रेम मद्य मन मानि ॥’

इस दोहे में 'स्याम' और 'रस' शब्द श्लिष्ट हैं ।

इसी प्रकार के अन्य उदाहरण भी रसखान-काव्य से प्रस्तुत किये जा सकते हैं ।

६ वक्रोक्ति—जब वक्ता कोई बात कहे और श्रोता उस बात का अन्य अर्थ, जो वक्ता का अभीष्ट नहीं है, काकु या श्लेष के बल से ग्रहण करता है, तो वक्रोक्ति अलकार होता है । वक्रोक्ति अलकार के दो भेद हैं—श्लेष वक्रोक्ति और काकु वक्रोक्ति । श्लेष वक्रोक्ति की अपेक्षा काकु वक्रोक्ति में अर्थ की अधिक रणनीयता होती है । इसी कारण अनेक आचार्यों ने काकु वक्रोक्ति को अर्थालंकारों के अन्तर्गत माना है । रसखान-काव्य में काकु-वक्रोक्ति के ही उदाहरण मिलते हैं । यथा—

‘कौन ठगौरी भरि हरि आजु वजाई है वाँसुरिया रग-भीनी ।

तान सुनी जिनही तिनही तबही तित लाज विदा करि दीनी ।

धूमै घरि घरि नन्द के द्वार नवीनी कहा कहूँ बाल प्रवीनी ।

या ब्रज-मडल मैं रसखानि सु कौन भटू जू लटू नही कीनी ॥’

इस सवैया की अंतिम पंक्ति में गोपी ने अपनी सखी को काकु के द्वारा बताया है कि इस ब्रज-मडल की प्रत्येक गोपी को कृष्ण ने मोहित कर रक्खा है । इसी प्रकार—

‘फागुन लाग्यौ सखी जब तै तब तै ब्रज मडल धूम मच्यौ है ।

नारि नवेली बचै नहि एक विसेख यहै सबै प्रेम अच्यौ है ।

साँझ सकारे वही रसखानि सुरग गुलाल लै खेल रच्यौ है ।

को सजनी निलजी न भई अरु कौन भटू जिहि मान बच्यौ है ॥’

इसमें 'को सजनी निलजी न भई अरु कौन भटू जिहि मान बच्यौ है' में काकुवक्रोक्ति अलकार है ।

‘वा रसखानि सुनौ सुचिकै हियरा सत टूक है फाटि गयो है ।

जानति है न कछु हम ह्याँ उनवाँ पढि मत्र कहा धौ दयो है ।

साँची कहैं जिय मै निज जानि कै जानति है जस जैसो लयौ है ।

लोग लुगाई सबै ब्रज माँहि कहै हरि चेरी को चेरो भयो है ॥'

यहाँ पर 'जस जैसो लयौ है' में काकु के द्वारा यह बताया गया है कि वे बहुत बदनाम हो गए हैं । अतः काकु वक्रोक्ति अलंकार है ।

अर्थालंकार

रसखान जैसे भावुक कवि की भाषा में अर्थालंकारों का प्रवाह आ जाना स्वाभाविक है । इनके द्वारा प्रयुक्त कुछ अर्थालंकारों के उदाहरण प्रस्तुत किये जा रहे हैं ।

१. उपमा—उपमान और उपमेय के सादृश्य वर्णन में उपमा अलंकार होता है । रसखान ने इस अलंकार का बहुत मात्रा में और बहुत कुशलता से प्रयोग किया है । यथा—

‘सुनियै सबकी कहिये न कछू रहियै इमि या भव-बागर मै ।

करियै व्रत-नेम सचाई लिये जिनते तरियै भव-सागर मै ।

मिलियै सबसो दुरभाव बिना रहियै सतसग उजागर मै ।

रसखानि गुबिन्दहि कौ भजियै जिमि नागरि कौ चित्त गागर मै ॥'

भगवद्-भजन के लिए नागरी के चित्त की एकाग्रता का सादृश्य दिखलाया गया है । अतः यहाँ उपमा अलंकार है । इसी प्रकार—

‘लाडली लाल लसै लखियै अलि पुजनि कुजनि मै छवि गाढी ।

ऊजरी ज्यौ बिजुरी सी जुरी चहूँ गुजरी केलि-कला सम काढी ।

त्यों रसखानि न जानि परै सुखमा तिहूँ लोकन की अति बाढी ।

बालन लाल लिये बिहरै छहरै बर मोरपखी सिर ठाढी ।'

‘ऊजरी ज्यौ बिजुरी सी जुरी चहूँ गुजरी केलि-कला सम काढी’ में उपमा अलंकार है । इस अलंकार के अन्य उदाहरण ये हैं—

१ सुन्दर हास सुधानिधि सो मुख मूरति रग सुधारस-सानी ।'

२. ‘ऐचे आवत धनुष से छूटे सर से जाहि ।'

३ ‘जा रसखानि बिलोकत ही सहसा ढरि राँग सो आँग ढर्यो है ।'

४ ‘तिरछी वरछी सम मारत है दृग-वान कमान सुकान लग्यो ।'

५ ‘जाको लसै मुख चन्द समान सुकोमल अगनि रूप लपेटी ।'

६ ‘चन्द सो आनन मैन मनोहर बैन मनोहर मोहत ही मन ।'

२. रूपक—उपमेय में उपमान के निषेध-रहित आरोप को रूपक अलंकार कहते हैं। इसके मुख्यतया दो भेद हैं— साग रूपक और निरग रूपक। जहाँ उपमेय के अवयवों के सहित उपमान के अवयवों का आरोप किया जाता है, वहाँ साग अथवा सावयव रूपक होता है और जहाँ अवयवों से रहित उपमान का उपमेय में आरोप किया जाता है, वहाँ निरग अथवा निरवयव रूपक अलंकार होता है। रसखान ने इस अलंकार का भी प्रचुर मात्रा में प्रयोग किया है। यथा—

‘अति सुन्दर री ब्रजराज कुमार महामृदु बोलनि बोलत है ।
लखि नैन की कोर कटाछ चलाइकै लाज की गाँठन खोलत है ।
सुनि री सजनी अलबेलौ लला वह कुंजनि कुंजनि डोलत है ।
रसखानि लखे मन बूझि गयो मधि रूप के सिन्धु कलोलत है ॥’

यहाँ सौन्दर्य पर सागर का आरोप किया गया है, पर अवयवों का उल्लेख नहीं है। अतः यहाँ निरग रूपक है। और—

‘नैन दलालनि चौहटें, मन-मानिक पिय हाथ ।
रसखान ढोल बजाइकै, बेच्यौ हिय जिय साथ ॥’

यहाँ भी नैनो पर दलालो का, मन पर मानिक का आरोप किया गया है। अतः यहाँ पर निरग रूपक अलंकार है।

‘दमकै रवि कु डल दामिनि से धुरवा जिमि गोरज राजत है ।
मुकताहल-वारन गोपन के सु तौ वृन्दन की छवि छाजत है ।
ब्रजवाल नदी उमही रसखानि मयक-वधू दुति लाजत है ।
यह आवन श्री मनभावन की बरपा जिमि आज विराजत है ॥’

इस सबैये में कृष्ण के आगमन पर वर्षा-ऋतु का आरोप किया गया है। सभी अंगों का वर्णन है। अतः यहाँ साग रूपक अलंकार है।

इस अलंकार के अन्य उदाहरण ये हैं—

१. ‘मत्त भयो मन सग फिरै रसखानि सरूप सुधारस घूट्यौ ।’
२. ‘लटकी लट यो दृग-मीननि सो बनसी जियवा नट की अटकी ।’
३. ‘मो मन-मानिक लै गयो चितै चोर नदनद ।’
४. ‘रसखानि महावत रूप सलोने को मारग ते मन मोहत है ।’
५. ‘तिरछी बरछी सम मारत है दृग-वान कमान सुकान लग्यौ ।’
६. ‘भौह कमान सो जोहन को सर वेधत आनन नन्द को छोनो ।’

३. उत्प्रेक्षा—जहाँ प्रस्तुत की—उपमेय की—अप्रस्तुत रूप में—उपमान रूप में—सभावना की जाये, वहाँ उत्प्रेक्षा अलंकार होता है। इस अलंकार के प्रयोग में भावों में प्रभावशीलता आती है। अतः रसखान ने उपमा और रूपक का भाँति इस अलंकार का प्रयोग भी बहुलता से किया है। यथा—

‘साँभ समै जिहि देखति ही तिहि पेखन कौ मन यौ ललकै री।
ऊँची अटान चढी ब्रजवाम सु लाज सनेह दुरै उभकै री।
गोधन धूरि की धूँधरि मैं तिन्हि छवि यौ रसखान तकै री।
पावक के गिरि ते बुछि मानौ धुँवा-लपटी लपटै लपकै री॥’

यहाँ गोरज से धूसरित कृष्ण की छवि में आग के पहाड़ से बुझकर उठते हुए धुँए के बादल की सभावना की गई है, अतः उत्प्रेक्षा अलंकार है। इसी प्रकार—

‘मैन-मनोहर बैन बजै सु सजे तन सोहत पीत पटा है।
यौ दमकै चमकै भमकै दुति दामिन की मनौ स्याम घटा है
ए सजनी ब्रजराजकुमार अटा चढि फेरत लाल बटा है।
रसखानि मठा मधुरी मुख की मुसकानि करै कुलकानि कटा है॥’

यहाँ पर कृष्ण की पीत-वस्त्र से चमकती हुई क्रांति में बादल में चमकती हुई बिजली की सभावना के कारण उत्प्रेक्षा अलंकार है। इस अलंकार के अन्य उदाहरण ये हैं।—

१. ‘टोकत ही टटकार लगी रसखानि भई मनौ कारिख-पेटी।’
२. ‘नटक ते सिख नील निचोल लपेटे सखी सम भाँति कँपै डरपै।
मनौ दामिनि सावन के घन मैं निकसै नही भीतर ही तरपै॥’
३. ‘कंचुकी सेत में जावक बिन्दु बिलौकि मरै मधवानि की सूलनि।
पूजे है आजु मनौ रसखान सु पूत के भूप बधूक के फूलनि॥’
४. ‘जोवन-जोति सु यौ दमकै उसकाइ दई मनो बाती दिया की।’

४. अतिशयोक्ति—लोक-मर्यादा के विरुद्ध वर्णन करने को—प्रस्तुत को बड़ा-चढ़ाकर कहने को—अतिशयोक्ति अलंकार कहते हैं। रसखान ने इसका भी सफलता से प्रयोग किया है। यथा—

‘या छवि पै रसखानि अब, वारौ कोटि मनोज।
जाकी उपमा कविन नहि पाई रहे सुखोज॥’

कृष्ण की छवि की उपमा अभी तक कवियों को नहीं मिली और वे अभी

तक पूर्ण परिश्रम के साथ उस उपमा को खोज रहे हैं। यह कथन प्रस्तुत को बड़ा-चढ़ाकर कहने का द्योतक है। अतः यहाँ अतिशयोक्ति अलंकार है। इस अलंकार के अन्य उदाहरण ये हैं—

१. 'जाको लसै मुख चंद समान कमानि सी भौह गुमान हरै ।
दीरघ नैन सरोजहुँ तै मृग खजन मीन की पात दरै ।
रसखान उरोज निहारत ही मुनि कौन सपाधि न जाहि टरै
जिहि नीके नवै कटि हार के भार सो तामो कहै सब काम करै ।'

२. गोकुल नाथ वियोग प्रलै जिमि गोपिन नद जसोमतिजू पर ।
वहि गयी अँसुवान प्रवाह भयी जल में ब्रजलोक तिहूँ पर ।
तीरथराज सी राधिका प्रान सु तो रसखान मनी ब्रज भू पर ।
पूरन ब्रह्म है ध्यान रह्यो पिय औधि अखँवट पात के ऊपर ॥

५. विरोधाभास—जहाँ कथन में विरोध का आभास हो, पर वास्तव में विरोध न हो, यहाँ विरोधाभास अलंकार होता है। रसखान ने इसका कुशलता से प्रयोग किया है। यथा—

'सकर से सुर जाहि जपै चतुरानन ध्यानन धर्म बढावे ।
नैक हिये जिहि आवत ही जड मूढ महा रसखान कहावै ।
जा पर देव अदेव भू-अगना वारत प्रानन प्रानन पावै ।
ताहि अहीर की छोहरियाँ छछिया भरि छाछ पै नाच नचावै ॥'

इस सबैये की तीसरी पंक्ति में प्रयुक्त 'वारत प्रानन प्रानन पावै' ये विरोधाभास अलंकार है। इसी प्रकार—

'एरी चतुर सुजान, भयी अजान हि जान कै ।
तजि दीनी पहचान, जान अपनी जान को ॥

मेरी 'भयी अजान हि जान कै' के कारण विरोधाभास अलंकार है।

६. समाधि—जहाँ अचानक और कारणों के आ पड़ने से काम सुगम हो जाये, वहाँ समाधि अलंकार होता है। इसे समहित अलंकार भी कहते हैं। रसखान ने इस अलंकार का अधिक प्रयोग नहीं किया, फिर जो उदाहरण है, वे पूर्णतया प्रभावपूर्ण हैं। यथा—

'कन कुद्यों सुनि वानी अकास की ज्यावनहारहि मारन धायी ।
भादव साँकरी आठई को रसखान महाप्रभु देवकी जायौ ।

रैनि अँधेरी मे लै बसुदेव महावन मै अरगै धरि आयौ ।

काहु न चौजुग जागत पायौ सो राति जसोमति सोवत पायौ ॥’

जिस कृष्ण को योगी भी अपनी जागृत अवस्था में प्राप्त नहीं कर सकते, वही यशोदा को आसानी से प्राप्त हो गया । अतः यहाँ समाधि अलंकार है ।

७. उल्लेख—जहाँ एक ही वर्णनीय विषय का विभिन्न-भेद से अनेक प्रकार का वर्णन हो, वहाँ उल्लेख अलंकार होता है । निम्नलिखित सवैया में कृष्ण के अनेक रूपों का वर्णन है—

‘वेई ब्रह्म ब्रह्मा जाहि सेवत है रैन-दिन

सदाशिव सदा ही भरत ध्यान गाढै है ।

वेई विष्णु जाके काज मानी मूढ राज रक,

जोगी जती है कै सीत सह्यौ अग डाढै है ।

वेई ब्रजचंद रसखानि प्रान प्राननि के,

जाके अभिलाख लाख लाख भाँति बाढै है ।

जसुधा के आगे बसुधा के मान-मोचन ये,

तामरस-लोचन खरोचन कौ ठाढै है ॥’

इसी प्रकार—

‘सोई है रास मै नैसुक नाचि कै नाच नचायौ कितौ सबको निज ।

सोई है की रसखानि किते पउहारनि सूधेँ चितौत न हो छिन ।

तो पै धौ कौन मनोहर भाव बिलोकि भयौ बस हा हा करी तिन ।

औसर ऐसो मिलै न मिलै फिर लगर मौडो कनौडो करै कन ॥’

मे भी उल्लेख अलंकार है ।

८. अत्युक्ति—सम्पत्ति, सौन्दर्य, शौर्य, औदार्य, सौकुमार्य आदि गुणों के मिथ्या वर्णन को अत्युक्ति अलंकार कहते हैं । रसखान ने कृष्ण-प्रीति के प्रतिपादन में इस अलंकार का प्रयोग किया है । यथा—

‘कचन-मदिर ऊँचे बनाइ कै मानिक लाइ सदा भलकैयत ।

प्रात ही ते सगरी नगरी नग मोतिन ही की तुलानि तुलैयत ।

यद्यपि दीन प्रजान प्रजापति की प्रभुता मघवा ललचैयत ।

ऐसे भये तौ कहा रसखानि जौ साँवरे ग्वार सो नेह न लैयत

इस सवैया में कृष्ण की प्रीति बढा-चढाकर वर्णन करने के कारण अत्युक्ति अलंकार है ।

६. अपन्हृति—जहाँ प्रकृत का—उपमेय का—निषेध करके अप्रकृत का—आरोप किया जाता है, वहाँ अपन्हृति अलंकार होता है। रसखान ने इस अलंकार का प्रयोग निम्न लिखित सवैया में किया है।

‘है छल की अप्रतीत की सूरति मोड बढावै बिनोद कलाम मे।

हाथ न ऐहै कछु रसखान तू वयो वहकै विप पीवत काम मे

है कुच कचन के कलसा नये आम की गाँठ मढीक की चाम मे।

बैनी नही मृगनैनिन की ये नसैनी लगी यमराज के धाम मे।

यहाँ पर कुच और चोटियों का निषेध करके इन पर आम की गाँठ और नसैनी का आरोप किया गया है। अतः अपन्हृति अलंकार है।

१०. व्यतिरेक—जहाँ उपमान की अपेक्षा उपमेय के उत्कर्ष का वर्णन किया जाये, वहाँ व्यतिरेक अलंकार होता है। यथा—

‘धूरि भरे अति सोभित स्याम जू तैसी बनी सिर सुन्दर चोटी।

खेलत खात फिरै अगना पग पैजनी बाजति पीरी कछौटी।

वा छवि को रसखानि बिलोकत बारत काम कला निज कोटी।

काग के भाग बडे सजनी हरि-हाथ सो लै गयी माखन-रोटी।”

इस सवैया में कामदेव के सौन्दर्य की अपेक्षा कृष्ण के सौन्दर्य का उत्कर्षपूर्ण वर्णन है। इसी प्रकार—

‘जाको लसै मुख चन्द समान कमानी सी भीह गुमान हरै।

दीरघ नैन सरोजहुँ तै मृग खजन मीन की पाँत दरै।

रसखान उरोज निहारत ही मुनि कौन समाधि न जाहि टरै।

जिहि नीके नवै कटि हार के भार सो तासो कहै सब काम करै।”

इस सवैया में मृग, खजन और मीन की अपेक्षा राधा के नेत्रों की शोभा का उत्कर्षपूर्ण वर्णन है। अतः यहाँ व्यतिरेक अलंकार है।

११. दृष्टान्त—जहाँ उपमेय, उपमान और साधारण धर्म का विम्ब-प्रतिविम्ब भाव हो, वहाँ दृष्टान्त अलंकार होता है। यथा—

‘जा दिन तै निरख्यौ नन्दनन्दन कानि तजी घर वधन छूट्यौ।

चारु विलोकनि कीनी सुमार सम्हार गई मन यार ने लूट्यौ।

सागर को सलिला जिमि धावै न रोकी रहै कुल को पुल दूट्यौ।

मत्त भयौ मन संग फिरै रसखान सरूप सुधारस घूट्यौ ॥”

१२. अर्थान्तरन्यास—जहाँ विशेष से सामान्य का, या सामान्य से विशेष

का साधर्म्य वा वैधर्म्य के द्वारा समर्थन किया जाये, वहाँ अर्थान्तरन्यास अल-
कार होता है। यथा—

‘मोहक रूप छकि बन डोलति घूमति री तजि लाज विचारै ।
बक विलोकनि नैन विसाल सु दम्पति कोर कटाछन मारै ।
रगभरी मुख की मुसकान लखे सखी कौन जू देह सम्हारै ।
ज्यौ अरविन्द हिमन्त-करी भकभोरि कै तोरि मरोरि कै डारै ।’

यहाँ मुसकान विशेष का हिमन्त-करी सामान्य से साधर्म्य के द्वारा समर्थन
किया गया है। अतः अर्थान्तरन्यास अलकार है।

१३. प्रतीप—जहाँ उपमेय को उपमान कल्पित कर लिया जाये, वहाँ
प्रतीप अलकार होता है। यथा—

‘मोहन के मन की सब जानति जोहन के पग मोहि लिखो मन ।
मोहन सुन्दर आनन चद ते कुंजन देख्यौ मै स्याम सिरोमन ।
ता दिन ते मेरे नैननि लाज तजी कुलकानि की डोलति हौ बन ।
कैसी करौ रसखानि लगी जकरी पकरी पिय के हित को मन ॥’

यहाँ चन्द्र की अपेक्षा आनन का उत्कर्ष वर्णित है। अतः प्रतीप अलकार
है। इस अलकार के अन्य उदाहरण ये हैं—

१. ‘कल काननि कु डल मोरपखा उर पै बनमाल विराजति है ।
मुरली कर मै अघरा मुसकानि-तरंग महाछवि छाजति है ।
रसखानि लखै तन पीत पटा सत दामिनि की दुति लाजति है ।
वहि वाँसुरी की धुनि कान परै कुलकानि हियो तजि भाजति है ॥’

२. ‘सोई हुती पिय की छतियाँ लगी बाल प्रवीन महा मुद मानै ।
केस खुने घहरै बहरै फहरै छवि देखत मै न अमानै ।
वा रस मे रसखानि पगी रति रैन जगी अखियाँ अनुमानै ।
चन्द पै बिम्ब औ बिम्ब पै कैरव कैरव पै मुकता न प्रमानै ।’

१४ सदेह—जहाँ किसी वस्तु के सम्बन्ध में सादृश्य-मूलक सदेह हो,
वहाँ सदेह अलकार होता है। यथा—

‘वा मुख की मुसकानि भटू अखियानि ते नेकु टरै नहि टारी ।
जौ पलकै पल लागति है पल ही पल माँझ पुकारै पुकारी ।
दूसरी ओर ते नेकु चितै इन नैनन नेम गह्यौ बजमारी ।
प्रेम की बानि कि जोग कलानि गही रसखानि विचार विचारी ॥’

इस सवैये की अन्तिम पक्ति मे सदेह अलकार है । इस अलकार का एक अन्य उदाहरण और देखिये —

‘दूव दुह्यौ सीरो पर्यौ तातो न जमायो कर्यो,
जामन दयौ सो घर्यौ घर्यौई खटाइगौ ।
आन हाथ आन पाइ सव ही के तव ही ते,
जव ही ते रसखानि ताननि सुनाइगौ ।
ज्यौही नर त्योंही नारी तैसी यै तरुन वारी,
कहियै कहा री सव ब्रज विललाइ गौ ।
जानियै न आली यह छोहरा जसोमति को,
वाँसुरी वजाइगौ कि विष बगदरइ गौ ॥’

१५. असंगति—कारण-कार्य की स्वाभाविक सगति के अभाव मे असंगति अलकार होता है । यथा—

‘श्री वृषभान की छान धुजा अटकी लरकान ते आन लई री ।
वा रसखान के पानि की जानि छुडावति राधिका प्रेम मई री ।
जीवन-मूरी सी नेम लिये इनहूँ चितयौ उनहूँ चितई री ।
लाल लली दृग जोरत ही सुरधानि गुडी उरभाय दई री ।’
यहाँ सुलभाने वाली गुडी उलभा देती है । अत असंगति अलकार है ।

इस विवेचन के पश्चात् यह कहना कठिन नहीं कि रसखान की अलकार योजना बहुत ही सफल और प्रभाववर्द्धक है । इन्होंने अलकारों का प्रयोग श्रम द्वारा नहीं किया, वरन् ये तो स्वतः भावावेग मे आ गये हैं । स्वाभाविक रूप से आये हुए अलंकार भाषा मे अधिक प्रभाव और गति उत्पन्न कर देते हैं । यह निर्विवाद मत है । जहाँ अलकार अभिव्यक्ति के साधन और सहायक होते हैं, वही इनका प्रयोग सार्थक होता है । रसखान की अलकार-योजना ऐसी ही है ।

: १० :

रसखान की भाषा

भाषा भावों की अभिव्यक्ति का माध्यम होता है। जो कवि जितना अधिक समर्थ होता है, उतना ही अधिक उसका भाषा पर अधिकार होता है। शब्द, अलंकार, गुण, छंद, लोकोक्ति और मुहावरे भाषा के प्राणदायक अंग होते हैं। अतः किसी कवि की भाषा की समीक्षा करने के लिए इन अंगों का विश्लेषण करना आवश्यक होता है। रसखान की भाषा का विवेचन भी इसी आधार पर करना उचित है।

शब्द-योजना

यह सच है कि शब्द-समूह से भाषा का निर्माण होता है, पर प्रत्येक शब्द-समूह सफल एवं प्रभावशाली भाषा को जन्म नहीं दे सकता। सफल भाषा के लिए भावानुसारिणी शब्द-योजना की संयोजना भी आवश्यक है। जहाँ तक शब्द-योजना का प्रश्न है, रसखान इस कसौटी पर खरे उतरते हैं। इनका शब्द-चयन अभीष्ट भावों को व्यक्त करने में पूर्णतया समर्थ एवं सफल है। यथा—

‘वात सुनी न कहूँ हरि की, न कहूँ हरि सो मुख बोल हँसी है।
काल्हि ही गोरस बेचन कौ निकसी ब्रजवासिनि बीच सखी है।
आजु ही वारक ‘लेहु दही’ कहिकै कछु नैनन में बिहँसी है।
बैरिनि बाहि भई मुसकानि जुवा रसखान के प्रान बसी है॥’

यहाँ पर ‘बैरिनि’ शब्द का प्रयोग अत्यन्त सार्थक एवं भावपूर्ण है। इस शब्द से आक्रोश और आत्मीयता दो विरोधी भाव परस्पर अविच्छिन्न रूप से सम्बद्ध हो गये हैं।

‘अत मे न लयौ माही गाँवरे को जायौ,
माई बापरे जिवायौ प्याइ दूध वारे-वारे को।

सोई रसखानि पहिचानि कानि छाँडि चाहै,
 लोचन नचावत नचैया द्वारे-द्वारे को ।'
 मैया की सी सोच कछु मटकी उतारे को न,
 गोरस के द्वारे को न चीर भीरि द्वारे को ।
 सहै दुख भारी गहै डगर हमारी माँझ,
 नयर हमारे ग्वाल वगर हमारे को ॥'

इस कवित्त में शब्दों की योजना अत्यन्त भावपूर्ण है। 'नचैया' शब्द आत्मीयता का सूचक है।

'कान्हू भरा वस वाँसुरी के अरु कोन सखी हमको चाहि है ।
 निसद्योस रहे सग-साध लगी यह मोतिन तापन क्यों सहि है ।
 जिन मोहि लियो मनमोहन को रसखानि नदा हमको दहि है ।
 मिलि आओ सवै सखी! भागि चले अरु तो व्रज में वेंसुरी रहि है ॥'

इस सवैया में वाँसुरी के प्रति गोपियों का सपत्नी-भाव व्यंजित है। इसमें 'कोन' शब्द कृष्ण के लिए प्रयुक्त हुआ है जो अत्यन्त आत्मीयता का सूचक है। 'मनमोहन' शब्द का प्रयोग भी साभिप्राय है, इससे वाँसुरी की महत्ता सूचित होती है, क्योंकि जो कृष्ण सबका मन मोहने के कारण मनमोहन बने हुए है, वे स्वयं वाँसुरी द्वारा मोहित कर लिये गए हैं। 'मिलि आओ सवै' में सभी सखियों के दुख की तथा समान दुख होने से उनकी एकता की व्यंजना होती है।

'कल काननि कु डल मोरपखा उर पै वनमाल बिराजति है ।
 मुरली कर में अधरा मुसकानि-तरंग महाछवि छाजति है ।
 रसखानि लखें तन पीत पटा सत दामिनि की दुति लाजति है ।
 वहि वाँसुरी की धुनि कानि परें कुल-कानि हियो तजि भाजति है ॥'

इसमें 'वहि' शब्द का प्रयोग वाँसुरी के उन प्रभावों की ओर मकेत करता है जिनसे प्रभावित होकर गोपियाँ अपने कुल की लाज छोड़कर कृष्ण के आगे पीछे दौड़ने लगती हैं।

शब्द-योजना के द्वारा वर्ण्य वस्तु का चित्र प्रस्तुत करने में भी रसखान सिद्धहस्त दिखाई पड़ते हैं। चित्रात्मकता का यह उदाहरण देखिए—

'जल की न घट परें पग की न पग वरै,
 घर की न कछु करै बैठी भरै माँसु री ।

एके सुनि लोट गई एकै लोट-पोट भई,
 एकनि के दृगनि निकसि आए आँसु री ।
 कहै रसखानि सो सबै ब्रज-वनिता बधि,
 वधिक कहाय हाय भई कुल हाँसु री ।
 करियै उपाय वाँस डारियै कटाय,
 नाहि उपजैगौ बाँस नाहि बाजे फेरि वाँसुरी ॥'

रसखान की शब्द-योजना भावाभिव्यक्ति में पूर्णतया समर्थ एवं सफल है । साग रूपक की योजना प्रस्तुत करते समय प्रायः दुरुहता आ जाती है, पर रसखान के काव्य में यह दोष भी दिखाई नहीं देता । वर्ण-विषयक यह साग रूपक देखिए—

'दमकै रवि कुंडल दामिनि से धुरवा जिमि गोरज राजति है ।
 मुकताहल-वारन गोपन के सु तौ बूँदन की छवि छाजत है ।
 ब्रजवाल नदी उमही रसखानि मयकबधू-दुति लाजत है ।
 यह आवन श्री मनभावन की बरखा जिमि आज बिराजत है ॥'

संगीतात्मकता भी रसखान की शब्द योजना की एक प्रमुख विशेषता है । प्रत्येक शब्द अपने स्थान पर इस प्रकार बिठाया गया है कि क्या मजाल, कही भी संगीतात्मकता को क्षति पहुँचे अथवा जिह्वा तथा स्वर की गति में बाधा पड़े । रसखान का समूचा काव्य इसका उदाहरण है, फिर भी दो सवैये प्रस्तुत हैं—

१. 'नद को 'दन है दुसकदन प्रेम के फदन बाँधि लई हौ ।
 एक दिना ब्रजराज के मंदिर मेरी अली इक बार भई हौ ।
 हेर्यौ लला ललचाइ कै मोहन जोहन की चकडोर पई हौ ।
 दौरी फिरौ दृग डोरनि मैं हिय मैं अनुराग की बेलि बई हौ ॥'
२. 'दृग दूने खिचे रहै कानन लौ लट आनन पै लहराइ रही ।
 छकि छैल छबीली छटा लहराइ कै कौतुक कोटि दिखाइ रही ।
 भुकि भूमि भूमाकनि चूमि अमी चहि चाँदनी चद चुराइ रही ।
 मन पाइ रही रसखानि महा छवि मोहन की तरसाइ रही ॥'

इस विवेचन के उपरांत यह कहना अन्यथा न होगा कि रसखान की शब्द-योजना भावानुसारिणी, भावाभिव्यजक एवं सफल है ।

अलंकार-योजना

काव्य में अलंकारों का प्रयोग भाव-समृद्धि के लिए किया जाता है। जो अलंकार श्रमसाध्य होते हैं, अथवा भाव-सौन्दर्य में किसी प्रकार से सहायक नहीं होते, वे हेय समझे जाते हैं। सफल कवियों की वाणी में भावों के साथ अलंकार भी स्वतः फूटते चलते हैं। अलंकारों का यह स्वतः स्फुटन काव्य और साहित्य की अमर एवं भव्य निधि है।

अलंकारों के मुख्यतया दो भेद किये गये हैं—शब्दालंकार और अर्थालंकार। जो अलंकार शब्दाश्रित होते हैं, उन्हें शब्दालंकार और जो अर्थाश्रित होते हैं, उन्हें अर्थालंकार कहते हैं। रसखान ने दोनों प्रकार के अलंकारों का ही प्रयोग किया है। पहले हम शब्दालंकारों को लेते हैं।

शब्दालंकारों में रसखान ने अनुप्रास और यमक का सबसे अधिक प्रयोग किया है। इस प्रयोग को देखकर यदि इन्हें अनुप्रास और यमक सम्राट् कहा जाये तो अनुचित न होगा। अनुप्रास के कुछ उदाहरण प्रस्तुत हैं।

‘गावै गुनी गनिका गधरव्व श्री सारद सेस सवै गुन गावत ।

नाम अनंत गनत गनेस ज्यौ ब्रह्म त्रिलोचन पार न पावत ।

जोगी जती तपसी अरु सिद्ध निरतर जाहि समाधि लगावत ।

ताहि अहीर की छोहरिया छछिया परि छाछ पै नाच नचावत ॥’

इस सवैये में ‘ग’, ‘स’, ‘न’ ‘त’, ‘प’, ‘ज’, ‘द’ और ‘न’ वर्णों की आवृत्ति है। अतः यह वृत्त्यनुप्रास है।

मानुष ही तौ वही रसखानि बसी ब्रज गोकुल गाँव के ग्वारन ।

जो पसु ही तौ कहा वस मेरो चरौ नित नद की धेनु मँभारन ।

पाहन ही तो वही गिरि को जो धर्यौ कर छत्र पुरन्दर धारन ।

जौ खग ही तौ वसेरो करौ मिलि कालिन्दी कूल-कदम्ब की डारन ॥’

इस सवैये में ‘व’, ‘ग’, ‘न’ और ‘क’ वर्ण की आवृत्ति है। यह छेकानुप्रास है।

अनुप्रास की भाँति रसखान ने यमक का भी प्रचुरता से प्रयोग किया है।

यमक के मुख्यतया तीन भेद होते हैं—

१. जहाँ दोनों आवृत्त वर्ग सार्थक हों।

२. जहाँ दोनों आवृत्त वर्ग निरर्थक हों।

३, जहाँ आवृत्त वर्गों में से एक वर्ग सार्थक और एक वर्ग निरर्थक हो।

रसखान ने इन तीनों प्रकार के यमकों का सफलतापूर्वक प्रयोग किया है। यथा—

‘बैन वही उनको गुन गाइ औ कान वही उन बैन सो सानी ।
हाथ वही उन गात सरै अरु पाइ वही जु वही अनुजानी ।
जान वही उन आन के सग औ मान वही जु करै मनमानी ।
त्यौ रसखानि वही रसखानि जु है रसखानि सो है रसखानी ।’

इस सवैया की अन्तिम पंक्ति में ‘रसखानि’ शब्द की आवृत्ति है। दोनों शब्द सार्थक हैं।

आजु गई हुती भोर ही हौ रसखानि रई वहि नन्द के भौनहि ।
वाकौ जियौ जुग लाख करोर जसोमति को सुख जात कह्यौ नहि ।
तेल लगाइ लगाइ कै अजन भौहे वनाइ वनाइ ढिठौनहि ।
डालि हमेलनि हार निहारत वारत ज्यौ चुचकारत छौनहि ।’

इस सवैया की अन्तिम पंक्ति में ‘वारत’ और ‘चुचकारत’ में ‘रत’ वर्णों की आवृत्ति है। दोनों ही आवृत्ति निरर्थक है।

‘लाल लसै पगिया सबके सबके यह कोटि सुगन्धनि भीने ।
अगनि अग सजे सब ही रसखानि अनेक जराउ नवीने ।
मुकता गलमाल लसे सबके सब ग्वार कुमार सिगार सो कीने ।
पै सिगरे ब्रज केहरि हो हरि ही के हरै हियरा हरि लीने ।

इस सवैया की अन्तिम पंक्ति में ‘केहरी’ और ‘हरी’ शब्द की आवृत्ति है। ‘केहरी’ का ‘हरी’ निरर्थक है।

अनुप्रास और यमक के अतिरिक्त रसखान ने सिंहावलोकन, वीप्सा, श्लेष, वक्रोक्ति शब्दालंकारों का भी प्रयोग किया है। इन अलंकारों के उदाहरण निम्नलिखित हैं—

सिंहावलोकन—

‘होती जु पै कुबरी ह्याँ सखी भरि लातनि मूका बकोटती लेती ।
लेती निकाहि हिये की सबै नक छेदि कै कौड़ी पिराइ कै देती ।
देती नचाइ कै नाच वा राँड को लाल रिभावन को फल सेती ।
सेती सदा रसखान लिये कुबरी के करेजनि सूल सी भेती ।’

वीप्सा।

‘तै न लख्यौ जब कुँजनि ते बनिके निकस्यौ भटक्यौ मटक्यौ री ।
सोहत कैसो हरा टटक्यौ अरु कैसो किरीट लसै लटक्यौ री ।
को रसखानि फिरै भटक्यौ हटक्यौ ब्रजलोग भिरै भटक्यौ री ।
रूप सबै हरि या नट को हियरे अटक्यौ अटक्यौ अटक्यौ री ।’

श्लेष—

‘स्याम सघन घन घेरि कै, रस वरस्यौ रसखानि ।
भई दिमानी पानि करि, प्रेम मद्य मन मानि ।’

वक्रोक्ति—

‘कौन ठगौरी भरी हरि आजु बजाई है वाँसुरिया रग-भीनी ।
तान सुनी जिनही तिनही तबही तित लाज विदा करि दीनी ।
धूमै घरी घरी नन्द के द्वार नवीनी कहा कहूँ बाल प्रवीनी ।
या ब्रजमण्डल मे रसखानि सु कौन पटू जु लटू नहिं कीनी ।’

रसखान द्वारा प्रयुक्त शब्दालंकार केवल चमत्कारक नहीं, जैसा कि प्रायः शब्दालंकारों के विषय में कहा जाता है, वरन् ये भावों का उत्कर्ष करने वाले भी हैं। इनके द्वारा प्रयुक्त अनुप्रास शब्दों को संगीत प्रदान करके भावों को और भी अधिक ग्राह्य बना देते हैं। संगीतात्मकता अनुप्रास का गुण है और रसखान द्वारा प्रयुक्त अनुप्रास में यह गुण प्रचुर मात्रा में पाया जाता है। यमक को विलम्बित्व का रूप माना जाता है। इसीलिए सुकर और दुष्कर भेद इसके किये गये हैं। लेकिन रसखान ने यमक का स्वाभाविक और भावपूर्ण प्रयोग करके यह सिद्ध कर दिया है कि यमक भी अन्य अलंकारों की भाँति प्रसादगुण-सम्पन्न हो सकता है। इसी प्रकार रसखान ने अन्य शब्दालंकारों का प्रयोग भी भावपूर्ण किया है।

शब्दालंकारों की भाँति अर्थालंकारों का प्रयोग भी रसखान ने भावोत्कर्ष के लिए किया है। ये प्रयोग कवि की वाणी से स्वतः प्रस्फुटित हुए हैं, उसे इनके लिए कोई श्रम नहीं करना पड़ा है। यही कारण है कि जो भी अलंकार जहाँ प्रयुक्त हुआ है, वह अपने स्थान पर ठीक युक्ति-मग्न और भावपूर्ण है। रसखान ने अनेक अर्थालंकारों का प्रयोग किया है। उदाहरण के लिए कुछ अलंकारों के उदाहरण प्रस्तुत किये जाते हैं।

उपमा

उपमान और उपमेय के सादृश्य वर्णन में उपमालकार होता है। रसखान के इस अलकार का बहुत मात्रा में और बहुत कुशलता से प्रयोग किया है।
यथा—

‘सुनियै सबकी कहिये न कह्य रहिए डमि या भव-बागर मै ।
करिए व्रत नेम सचाई लिये जिनते तरियै भव-सागर मै ।
मिलियै सबसो दुरभाव बिना रहिए सत सग उजागर मै ।
रसखानि गुविन्दहि यौ भजियै जिमि नागरि को चित गागर मै ॥’

भगवद्-भजन के लिए नागरी के चित्र की एकाग्रता का सादृश्य दिख-
लाया गया है।

रूपक

उपमेय में उपमान के निषेध रहित आरोप को रूपक अलकार कहते हैं। इसके मुख्यतया दो भेद हैं—साग रूपक और निरग रूपक। जहाँ उपमेय अवयवों के सहित उपमान के अवयवों का आरोप किया जाता है, वहाँ साग अथवा सावयव रूपक होता है और जहाँ अवयवों से रहित उपमान का उपमेय में आरोप किया जाता है वहाँ निरग अथवा निरवयव रूपक अलकार होता है। रसखान ने इस अलकार का भी प्रचुर मात्रा में प्रयोग किया है।
यथा—

‘अति सुन्दर री ब्रजराजकुमार महामृदु बोलनि बोलत है ।
सखि नैन की कोर कटाछ चलाइ कै लाज की गाठन खोलत है ।
सुनि री सजनी अलबेलो लला वह कुजनि कुंजनि डोलत है ।
रसखानि लखे मन बूडि गयी मधि रूप के सिंधु कलोलत है ।’

यहाँ सौन्दर्य पर सागर का आरोप किया गया है, पर अवयवों का उल्लेख नहीं अतः यहाँ निरग रूपक है।

उत्प्रेक्षा

जहाँ प्रस्तुत की—उपमेय की—अप्रस्तुत रूप में—उपमान रूप में—सभावना की जाए, वहाँ उत्प्रेक्षा अलकार होता है। इस अलकार के प्रयोग से भावों में प्रभावशीलता आती है। अतः रसखान ने उपमा और रूपक की भाँति इस

अलंकार का प्रयोग भी बहुलता से किया है। यथा—

‘साभ सभै जिहि देखति ही तिहि पेखन की मन भी ललके री ।
जँची अटान चढी ब्रजवाम सुलाज सनेह दुरै उभके री ।
गोधन धूरि की धू धरि मै तिनकी छवि यौ रसखान तकै री ।
पावक के गिरि ते बुझि मानौ धुँवा-लपटी लपटै लपकै री ॥’

यहाँ गोरज से धूसरित कृष्ण की दृष्टि में आग के पहाड़ में बुझकर उठते हुए धुँए के बादल की सभावना की गई है, अतः उत्प्रेक्षा अलंकार है।

अतिशयोक्ति

लोक-मर्यादा के विरुद्ध वर्णन करने को—प्रस्तुत को बड़ा-चढ़ाकर कहने को—अतिशयोक्ति अलंकार कहते हैं। रसखान ने इसका भी नफल प्रयोग किया है—

“या छवि पै रसखानि अब, वारी कोटि मनोज ।

जाकी उपमा कविन नहि पाई रहे सु खोज ॥”

कृष्ण छवि की उपमा अभी तक कवियों को नहीं मिली है। वे अभी तक पूर्ण परिश्रम के साथ उस उपमा को खोज रहे हैं। यह कथन प्रस्तुत को बड़ा-चढ़ाकर कहने का द्योतक है। अतः यहाँ अतिशयोक्ति अलंकार है।

विरोधाभास

जहाँ कथन में विरोध का आभास हो, पर वास्तव में विरोध न हो, वहाँ विरोधाभास अलंकार होता है। रसखान ने इसका कुशलता से प्रयोग किया है। यथा—

‘सकर से सुर जाहि जपे चतुरानन ध्यानन धैर्य बढावै ।

नैक हिये जिहि आनन ही जड मूढ महा रसखानि कहावै ।

जा पर देव अदेव-भू अगना वारत आनन आनन पावै ।

ताहि अहीर की छोहरिया छछिया भरि छाछ पै नाच नचावै ।’

इस सवैया की तीसरी पंक्ति में प्रयुक्त—‘वारत आनन आनन पावै’ में विरोधाभास अलंकार है।

समाधि

जहाँ अचानक और कारणों के आ पड़ने से काम सुगम हो जाये, हाँ समाधि अलंकार होता है। इसे समाहित अलंकार भी कहते हैं। रसखान ने

इस अलंकार का अधिक प्रयोग नहीं किया, परन्तु जो उदाहरण है वे पूर्णतया प्रभावपूर्ण है। यथा—

‘कस कुड्यौ सुनि वानि अकास की ज्यावनहारहि मारन घायौ ।
भादव साँवरी आठई को रसखानि महा प्रभु देवकी जायौ ।
रैनि अँधेरी मैं लै वसुदेव महावन मै अरगै धरि आयौ ।
काहु न भौ जुग जागत पायौ सो राति जसोमति सोवत पायौ ।’

जिस कृष्ण को योगी भी अपनी जागृत अवस्था में प्राप्त नहीं कर सकते, वही यशोदा को आसानी से प्राप्त हो गया। अतः यहाँ समाधि अलंकार है।
उल्लेख—

जहाँ एक ही वर्णनीय विषय का निमित्त भेद से अनेक प्रकार का वर्णन हो, वहाँ उल्लेख अलंकार होता है। निम्नलिखित सबैये में कृष्ण के अनेक रूपों का वर्णन है—

‘वेई ब्रह्म ब्रह्मा जाहि सेवत है रैन-दिन,
सदा शिव सदा ही धरत ध्यान गाढ है ।
वेई विष्णु जाके काज मानी मूढ राजा रक,
जोगी जती ह्वै कै सीत सतयौ अग डाढ है ।
वेई ब्रजचन्द रसखानि प्रान प्राननि के,
जाके अभिलेख लाख लाख भाँति बाढ है ।
जसुधा के आगे वसुधा के मान मोचन पै,
तामरस-लोचन खरोचन को ठाढ है ॥’

अत्युक्ति

संपत्ति, सौंदर्य, शौर्य, औदार्य सौकुमार्य आदि गुणों के मिथ्या वर्णन को अत्युक्ति अलंकार कहते हैं। रसखान ने कृष्ण प्रीति के प्रतिपादन में इस अलंकार का प्रयोग किया है। यथा—

‘कचन-मदिर ऊँचे बनाइ कै मानिक लाइ सदा भलकैयत ।
प्रात ही ते सदा सगरी नगरी नग मोतिन ही की तुलानि तुलैयत ।
जदपि दीन प्रजान प्रजापति की प्रभुता मघवा ललचैयत ।
ऐसे भये तो कहा रसखानि जौ सावरे ग्वार सों नेहन लैयत ।’

इस सबैये में कृष्ण की प्रीति का बड़ा-चढ़ाकर वर्णन करने के कारण अत्युक्ति अलंकार है।

अपह्नुति—

जहाँ प्रकृत का—उपमेय का—निषेध करके अप्रकृत का—उपमान का—आरोप किया जाता है वहाँ अपह्नुति अलंकार होता है। रसखान ने इस अलंकार का प्रयोग निम्नलिखित सवैया में किया है।—

“है छलकी अप्रतीत की मूरति मोद बढावै विनोद कलाम मे ।

हाथ न एहै कछु रसखान तू क्यो बहकै विष पीवत धाम मे ।

है कुच कंचन के कलसा न ये आम की गांठ मठीक की चाम मे ।

बैनी नही मृगनैनिन की ये नसैनी लगी यमराज के धाम मे ॥’

यहाँ पर कुच और चोटियों का निषेध करके इन पर आम की गांठ और नसैनी का आरोप किया गया है।

व्यतिरेक

जहाँ उपमान की अपेक्षा उपमेय के उत्कर्ष का वर्णन किया जाए, वहाँ व्यतिरेक अलंकार होता है। यथा—

‘धूरि भरे अति सोभित स्याम जू तैसी वनी सिर सुन्दर चोटी ।

खेलत खात फिरै अगना पग पैजनी वाजत पीरी कछौटी ।

या छवि को रसखानि विलोकत वारत काम कला निज कोटी ।

काग के भाग बडे सजनी हरि हाथ सो लै गयी माखन रोटी ।’

इस सवैया में कामदेव के रूप की अपेक्षा कृष्ण के सौन्दर्य का उत्कर्षपूर्ण वर्णन है।

दृष्टांत

जहाँ उपमेय, उपमान और साधारण वर्म का बिम्ब-प्रतिबिम्ब भाव हो, वहाँ दृष्टांत अलंकार होता है। यथा—

‘जा दिन तै निरख्यो नन्द नन्दन कानि तजी घर बंधन छूट्यो ।

चारु विलोकनि कीनी मुमार सम्हार गई मन मोर न लूट्यो ।

सागर को सलिला जिमि घावे न रोकी रहै कुल को पुल टूट्यो ।

मत्त भयी मन संग फिरै रसखान सरूप सुधारस छूट्यो ।’

अर्थान्तरन्यास

जहाँ विशेष से सामान्य का, या सामान्य से विशेष साधर्म्य का वैधर्म्य के द्वारा समर्थन किया जाए, वहाँ अर्थान्तरन्यास अलंकार होता है। यथा—

‘मोहन रूप छली बनी डोलति धूमति री तजि लाज विचारै ।
 वंक विलोकनि नैन विसाल सु दम्पति कोर कटाछन मारै ।
 रगभरी मुख की मुस्कान लसै सखी कौन जू देह सम्हारै ।
 ज्यो अरविन्द हिमत करी भकभोरि कै तोरि मरोरि कै डारै ।’
 यहाँ मुस्कान विशेष का हिमत करी सामान्य से साधर्म्य के द्वारा समर्थन
 किया गया है ।

प्रतीप

जहाँ उपमेय को उपमान कल्पित कर लिया जाए, वहाँ प्रतीप अलंकार
 होता है । यथा—

‘मोहन के मन की सब जानति जोहन के मग मोहि लियो मन ।
 मोहन सुन्दर आनन चन्द ते कुजन देख्यो मै स्याम सिरोमन ।
 ता दिन ते मेरे नैननि लाज तजि कुल कानि की डौलत ही बन ।
 कैसी करौ रसखानि लगी जकरी पकरी पिय केहित को पन ॥’
 यहाँ चन्द्र की अपेक्षा आनन का उत्कर्ष वर्णित है, अतः प्रतीप अलंकार है ।

संदेह

जहाँ किसी वस्तु के सम्बन्ध में सादृश्य-मूलक संदेह हो, वहाँ संदेह अलं-
 कार होता है । यथा—

“वा मुख की मुस्कानि पटू अखियनि ते नेकु टरै नहि टारी ।
 जो पलकै पल लागति है पल ही पल साँझ पुकारै पुकारी ।
 दूसरी ओर ते नेकु चितै इन नैनन नेम गह्यो बज्र मारी ।
 प्रेम की बानि की जोग कलानि गहि रसखानि विचार विचारी ।”
 इस सवैया की अंतिम पंक्ति में संदेह अलंकार है ।

असंगति

कारण कार्य की स्वाभाविक सन्नति के अभाव में असंगति अलंकार होता
 है । यथा—

‘श्री वृषभान की छान छुजा अटकी सरकान ते आन लई री ।
 वा रसखान के पानि की जानि छुड़ावति राधिका प्रेममयी री ।
 जीवन मूरि सी नेज लिये इनहूँ चितयो उनहूँ चितई री ।
 लाल लली दृग जोरत ही सुरभानि गुड़ी उरभाय दई री ।’

यहाँ सुलभाने वाली गुड़ी उलझा देती है । अतः असंगति अलंकार है ।

इस विवेचन के पश्चात् यह कहना कठिन नहीं कि रसखान की अलंकार योजना बहुत ही सफल और प्रभाववर्द्धक है । इन्होंने अलंकारों का प्रयोग श्रम द्वारा नहीं किया वरन् ये तो स्वतः भावावेग से आगए हैं । स्वाभाविक रूप से आए हुए अलंकार भावों में प्रभाव और गति उत्पन्न कर देते हैं, यह निर्विवाद मत है । जहाँ अलंकार अभिव्यक्ति के माधन और सहायक होते हैं वही इनका प्रयोग सार्थक होता है । रसखान की अलंकार-योजना ऐसी ही है ।

गुण-योजना

रस के उत्कर्ष को बढ़ाने वाले धर्मों को गुण कहा जाता है । वस्तुतः गुण शब्द-योजना का ही दूसरा नाम है । वही काव्य सर्वोत्तम माना जाता है जो भाव-गरिमा से भी मण्डित हो और विलम्ब भी न हो; अर्थात् प्रमादगुण-सम्पन्न हो । रसखान के काव्य में यह विशेषता पाई जाती है । उनका शब्द-चयन अत्यन्त प्रचलित शब्दों का है । संस्कृत, उर्दू तथा फारसी के वे ही शब्द इन्होंने अपनाए हैं जो खूब प्रचलित हैं । इनके पदों की भाव-मयता और गरलता में प्रायः होड़ सी लगी हुई है । प्रमादगुण के उदाहरणार्थ उनका समूचा काव्य प्रस्तुत किया जा सकता है; फिर भी कुछ पदों को उद्धृत करना उचित प्रतीत होता है । नायिका की सुकुमारता से सम्बद्ध दो सर्वश्रेष्ठ देखिए—

‘कौन की नागरि रूप की आगरि जाति लिये सग कौन की बेटी ।
जाको लसै मुख चन्द समान सुकोमल अगनि रूप-लपेटी ।
लाल रही चुप लागिहै ठीठि मुजाके कहैं उर बात न पेटी ।
टोकत ही टटकार लगी रसखानि भई मनो कारिस-पेटी ॥’

X

X

X

‘यह जाको लसै मुख चन्द समान कमान सी भाँह गुमान हरै ।
अति दीरघ नैन नरोजहू तैं मृग खजन मीन की पाँति दरै ।
रसखानि उरोज निहारत ही मुनि कौन समाधि न जाहि टरै ।
कही नीके नवै कटि हार के भार सो तामो कहैं सब काम करै ॥’

छन्द-योजना

छन्द और काव्य का परस्पर वनिष्ठ सम्बन्ध है । आदिकाल से ही काव्य में छन्द की महिमा मानी गई है । वेदों में एक कथा आती है जिसमें बताया गया है कि देवताओं ने अपनी रक्षा के लिए छन्द का परिधान ग्रहण किया

समीक्षा भाग

था। इसका तात्पर्य यह है कि छन्द काव्य को अमरता प्रदान करता है। प्राचीन साहित्य की जीवन-रक्षा के एकमात्र आधार छन्द ही है। छन्द-प्रयोग से ही काव्य में सरसता, सजीवता एवं प्रभावोत्पादकता आती है।

रसखान ने अपने काव्य में तीन छन्दों का प्रयोग किया है—सवैया, कवित्त और दोहा। सवैया वर्णिक वृत्त है। इसके लय तथा सौष्ठव की आचार्यों द्वारा भारी प्रशंसा की गई है। लय के आरोह और अवरोह के साथ पाठक अथवा श्रोताओं के हृदयों को चमत्कृत कर देना इस छन्द की प्रमुख विशेषता है। इसमें एक निश्चित स्वर-विधान होता है जिसके कारण इसमें एक अनूठे संगीत का जन्म होता है। गणों तथा अन्त के गुरु-लघु अक्षरों की दृष्टि से सवैया के अनेक भेद हो सकते हैं, पर इसके तान भेद मुख्य हैं—

१. भगणाश्रित सवैया

२. सगणाश्रित सवैया

३. जगणाश्रित सवैया

भगणाश्रित सवैया के मदिरा, मोद, मत्तयमद, चकोर, अरसात और किरीट छ भेद माने गये हैं। मदिरा में सात भगण और अन्त का अक्षर गुरु होता है। मोद में पाँच भगण, एक सगण और अन्त का अक्षर गुरु होता है। मत्तयमद में सात भगण और अन्त का अक्षर गुरु होता है। चकोर में सात भगण और अन्त के अक्षर गुरु-लघु होते हैं। अरसात में सात भगण और अन्त में रगण होता है। किरीट में आठ भगण होते हैं। भगणाश्रित सवैया के इन भेदों को इस प्रकार प्रस्तुत किया जा सकता है—

मदिरा

भगण ७ + ५

मोद

भगण ५ + सगण + सगण + ५

मत्तयमद

भगण ७ + ५

चकोर

भगण ७ + ५ + १

अरसात

भगण ७ + रगण

किरीट

भगण ८

जगणाश्रित सवैया के तीन भेद होते हैं—सुमुखी, मुक्तहरा और बाम। सुमुखी में सात जगण और अन्त के अक्षर लघु-गुरु होते हैं। मुक्तहरा में आठ जगण होते हैं। बाम में सात जगण और एक यगण होता है। ये भेद इस प्रकार दिखाये जा सकते हैं—

सुमुखी	जगण ७+७।५
मुक्ताहरा	जगण ८
वाम	जगण ७+यगण

सगणाश्रित सवैया के भी तीन भेद होते हैं—दुर्मिल, सुन्दरी और अरविन्द । दुर्मिल में आठ सगण होते हैं । सुन्दरी में आठ सगण और अन्त का अक्षर लघु होता है । अरविन्द में आठ सगण और अन्त का अक्षर लघु होता है । इन भेदों को इस प्रकार दिवाया जा सकता है—

दुर्मिल	सगण ८
सुन्दरी	सगण ८+५
अरविन्द	सगण ८+१

रसखान के काव्य में इनमें से अधिकांश भेद मिल जाते हैं । सवैया लिखने में इन्हीं जैसी सफलता मिली है, वैसी हिन्दी के विरले कवियों को ही मिल पाई है । इसलिए रसखान और सवैया दोनों शब्द पर्यायवाची में बन गये हैं ।

कवित्त के अनेक भेद हो सकते हैं, पर मुख्य दो ही माने जाते हैं—मनहर और घनाक्षरी । मनहर में ३१ तथा घनाक्षरी में ३२ अक्षर होते हैं । आठ-आठ अक्षरों के बाद यति का विधान है । पर यह विधान लय पर निर्भर होता है, इसीलिए कभी-कभी १६ अक्षर के बाद भी विराम दिया जाता है । कहीं-कहीं पर आठ के स्थान पर ७ या ९ पर भी यति पड़ जाती है । इनके अतिरिक्त इनके विषय में और भी अनेक सूक्ष्म नियम हैं जो लय माधुरी के आधार पर निर्धारित किये गये हैं । दोहे में विषम चरणों में तेरह-तेरह मात्राएँ और सम चरणों में ग्यारह-ग्यारह मात्राएँ होती हैं । रसखान ने कवित्त और दोहे का भी प्रचुरता से प्रयोग किया है । प्रेम-वाटिका तो दोहों में ही रची गई है ।

अतः कहा जा सकता है कि छन्द-योजना की दृष्टि से भी रसखान सफल है ।

लोकोक्तियाँ

लोकोक्तियों के प्रयोगों से भाषा में सजीवता आती है । रसखान ने अपने कवित्तों में और सवैयों में यथावसर लोकोक्तियों के प्रभावशाली प्रयोग किये हैं । यथा—

१. 'मोल कला के लला न विकैहो'

२. नाहिं उपजैगो बाँस नाहिं बाजै फेर बाँसुरी'

३. 'छोरा जायो कि मेव मँगायो'

४. 'नेम कहा जब प्रेम कियो'

इस विवेचन के उपरान्त यह कहना अनुचित नहीं कि रसखान की भाषा सभी दृष्टियों से सफल एवं सार्थक है। एक विशिष्ट भाषा में जिन गुणों की अपेक्षा होती है, वे सब रसखान की भाषा में मिलते हैं। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के शब्दों में—

‘इनकी (रसखान की) भाषा बहुत चलती, सरल और शब्दाडम्बर मुक्त होती थी। शुद्ध व्रजभाषा का जो चलतापन और सफाई रसखान और घनानंद की रचनाओं में है, वह अन्यत्र दुर्लभ है।’

: ११ :

स्वच्छन्दधारा और रसखान

रीतिकाल में दो धाराएँ प्रमुख थी—रीतिवद्ध धारा और रीति-मुक्तधारा। रीतिवद्ध धारा के कवि और आचार्य परम्परा के निर्वाह में सदैव सतर्क और जागरूक रहते थे। भावों की अपेक्षा वे परम्परा तथा काव्य शास्त्रीय नियमों को प्राथमिकता देते थे। रीतिमुक्तधारा के कवियों के आदर्श रीतिवद्धधारा के कवियों के आदर्शों के विलकुल विपरीत थे। वे काव्यशास्त्रीय नियमों तथा परम्परा की अपेक्षा भावों को अधिक महत्व देते थे। इसीलिए इस धारा को स्वच्छन्दधारा भी कहा जाता है। इस धारा की निम्नलिखित विशेषताएँ हैं—

१. भावावेश का प्राधान्य
२. कृत्रिम व्यापारों का त्याग
३. भावों की प्रधानता
४. आत्म-निवेदन
५. विरह-वेदना
६. आत्मानुभूति
७. प्रेम का स्वस्थ निरूपण
८. भक्ति का वास्तविक रूप

१. भावावेश का प्राधान्य—रीतिवद्ध और रीतिमुक्त कवियों के काव्य-रचना के प्रयोजनों में आकाश-पाताल का अन्तर था। रीतिवद्ध कवि केवल दो प्रयोजनों से काव्य-रचना किया करते थे—आश्रयदाता का मनोरंजन और पांडित्य-प्रदर्शन। इसलिए इनके काव्य प्रायः श्रमसाध्य होते थे। इसके विपरीत रीतिमुक्त कवि भावावेश के कारण ही काव्य-रचना करते थे। इस विषय की ओर संकेत करते हुए घनानन्द ने लिखा है—

‘लोग है लाग कवित्त बनावत मोही तो मेरे कवित्त बनावत ।’

यही कारण है कि रीति बद्ध कवियों की अपेक्षा रीति मुक्त कवियों के काव्यों में अधिक भावप्रवणता है ।

२. कृत्रिम व्यापारों का त्याग—रीतिमुक्त कवियों का काव्य भावनापूर्ण था, अतः इसमें अभिव्यक्ति व कृत्रिम व्यापारों का त्याग स्वाभाविक ही था । इन कवियों ने न तो श्रम करके शब्दों की योजना की है और न भाषा के रूप को सँवारा है । इनकी भाषा सहज और स्वाभाविक है । उसमें कहीं भी कृत्रिमता दृष्टिगोचर नहीं होती । अलंकार और लोकोक्तियाँ आदि के प्रयोग भी स्वाभाविक होने के कारण भावाभिव्यक्ति में पूर्णतः सहायक हुए हैं ।

इनके अतिरिक्त विषयों की कृत्रिमता भी इन कवियों को ईप्सित नहीं थी । बाह्य कृत्रिमताओं को सोचना और उनका वर्णन करना इन कवियों को न तो रुचता था और न वे इस ओर ध्यान ही देते थे । ये उन व्यापारों के प्रदर्शन की चेष्टाओं को भी निरर्थक मानते थे । यही कारण है कि स्वच्छन्द-धारा के कवियों में विरह और मिलन दोनों में प्रेमियों के हृदय के आन्तरिक पक्षों को उद्घाटित करने की होड़ सी लगी रही है ।

३. भावों की प्रधानता—इन कवियों के काव्यों में भावों की प्रधानता है । भाव-प्रधान होने के कारण इनके काव्यों में चिन्तन-पथ दुर्बल है । रीतिबद्ध कवि बुद्धि के बल से ही भावों का अनुमान करते थे और बुद्धि के बल से ही प्रेम के बाह्य रूप का विधान करते थे । रीतिमुक्त कवि हृदय को ही प्रधान मानते थे और अपने समूचे काव्य की रचना हृदय की प्रेरणा के आधार पर ही करते थे ।

४. आत्म-निवेदन—अपने भावों को अभिव्यक्ति में ये कवि इतने निर्भीक हैं कि जो कुछ कहना चाहते हैं, स्पष्ट कह देते हैं । किसी अन्य माध्यम का सहारा नहीं लेते । रीतिबद्ध कवि अपनी प्रेमाभिव्यजना के लिए, सामाजिक भय के कारण जिन आवरणों को लपेटते चलते हैं, उनका इन कवियों के काव्यों में एकदम अभाव है । साथ ही इन कवियों में भक्ति की सच्ची एवं वास्तविक अनुभूति थी, अतः अपने आराध्य के समक्ष अपना हृदय खोलकर रख देने की इनमें क्षमता है ।

५. विरह-वेदना—इन कवियों ने प्रेम की हृदयगम्य अभिव्यक्ति की है और इनका प्रेम लौकिक से अलौकिक बना है, अतः इनमें प्रेम के विरह पक्ष की वास्तविकता मिलती है। ये कवि जिस प्रकार सयोग-वर्णन में अन्तर्मुख रहते हैं और उसी प्रकार वियोग वर्णन में भी रहते हैं। वलिक वियोग वर्णन में इनकी अन्तर्मुखता और भी अधिक बढ़ जाती है। इसीलिए इनके विरह-वर्णन में जो स्वाभाविकता और मार्मिकता है, वह रीतिवद्ध कवियों के काव्यों में नहीं मिलती। विरह के प्रायः सभी पक्षों को लेकर ये कवि चले हैं। इनमें विरह-वेदना की इतनी प्रधानता है कि सयोग में भी ये लोग एक प्रकार का वियोग-सा ही देखते हैं। अतः इन्हें न तो सयोग में शान्ति है और न वियोग में। इनका विरह-वर्णन अन्तर्मुखी है, रीतिवद्ध कवियों की भाँति वहिर्मुखी और मासल नहीं।

६. आत्मानुभूति—रीतिमुक्त कवियों ने सदैव हृदय को प्रवानता दी, फलतः इनके काव्यों में आत्मानुभूति का अश पर्याप्त मात्रा में पाया जाता है। रीतिवद्ध कवियों की भाँति बुद्धि के बल पर, इन्होंने दूर की कीड़ी लाने का कभी प्रयत्न नहीं किया, जिन भावों से इनका परिचय था और जो भाव इनके हृदय की सीमा में सहज स्वाभाविक रूप से आ सकते थे, उन्हें ही इन कवियों ने अपनाया और उन्हीं की अभिव्यक्ति की। इसीलिए इन कवियों के काव्यों में आत्मानुभूति का पक्ष प्रबल है।

७. प्रेम का स्वस्थ रूप—रीतिकालीन रीतिवद्ध कवियों ने लौकिक शृंगार को महत्ता दी और अथ से इति तक उसी का वर्णन किया। फलतः उनके काव्य में प्रेम का मासल रूप ही सुरक्षित रह गया। प्रेम-भाव के जो अन्य सूक्ष्म एवं उदात्त अंग होते हैं, उनकी ओर न तो इन कवियों ने कोई ध्यान ही दिया और न ऐसा करना इनके लिए आवश्यक था। अतः प्रेम इनकी दृष्टि में एक प्रकार का प्रमुखतम काम-भाव ही बनकर रह गया। इसके विपरीत रीतिमुक्त कवियों ने प्रेम को हृदय के एक उदात्त भाव के रूप में ग्रहण किया और इसकी स्वस्थता का आद्योपात्त वर्णन किया। इनकी दृष्टि में प्रेम का पथ ही एक ऐसा पथ है जो परमात्मा तक आत्मा को ले जाने में समर्थ है। एक बात और, रीतिवद्ध कवियों ने प्रेम के सम-रूप पर जोर दिया है और रीतिमुक्त कवियों ने विषम-रूप पर। इनकी दृष्टि से, स्वच्छन्द प्रेम

का चरम उत्कर्ष विषमता में ही निष्पन्न होता है। ये लोग सम-रूप को पारिवारिक प्रेम के लिए ही उचित समझते हैं।

८. भक्ति का वास्तविक रूप—भक्तिकाल में कृष्ण-भक्ति का जो आन्दोलन चला वह दिनप्रति दिन इतना जोर पकड़ता गया कि राधा और कृष्ण मानस मानस में रम गये। उनकी लीलाएँ सभी के मनो को आप्लावित करने लगी। रीतिकालीन रीतिबद्ध कवियों ने कृष्ण भक्ति की इस प्रसिद्धि का लाभ उठाया और भक्तिकाल से अत्यन्त सुपरिचित राधा और कृष्ण को नायिका तथा नायक के रूप में ग्रहण कर लिया और मन खोलकर इनके शृंगार का वर्णन किया। भक्तिकाल में जो शृंगार अलौकिक माना जाता था, रीतिकाल में आकर वह अलौकिक और मासल बन गया। रीतिकालीन कवियों ने राधा और कृष्ण को अपनाया इसलिए था कि उनके काव्य में प्रभावोत्पादकता तथा चमत्कार आ जाये। राधा-कृष्ण की भक्ति से उनका दूर का भी कोई सम्बन्ध नहीं है। एक रीतिकालीन कवि ने तो स्पष्ट ही कहा है—

‘आगे के सुकवि रीझें हैं तो कविताई,

न तु राधिका कन्हाई सुमिरन को बहानो है।’

‘सुमिरन के बहाने में’ भक्ति की वास्तविकता कितनी होती है, यह बताने की आवश्यकता नहीं है। इसके विपरीत रीतिमुक्त कवियों के हृदयों में भक्ति की सच्ची एवं स्वाभाविक भावना थी। ये योग पहले भक्त थे और बाद में कवि। कविता इनके लिए साधन थी, रीतिबद्ध कवियों की भाँति साध्य नहीं।

स्वच्छन्द धारा की इन प्रमुख विशेषताओं पर दृष्टिपान करने के पश्चात् अब इनके आधार पर रसखान के काव्य की समीक्षा करना आवश्यक है।

रसखान और स्वच्छन्द मार्ग

रसखान का काव्य भावों की मजूपा है। जिधर भी देखिये, इनके काव्य में भावों का अजस्र स्रोत प्रवाहित होता हुआ दृष्टिगोचर होता है। यदि ये भक्ति-परक भावों की अभिव्यजना करते हैं तो उसी हृदय से जो एक वास्तविक भक्त का हृदय होता है। अपने आराध्य के प्रति पूर्ण विश्वास भक्त-हृदय की पूर्णतम विशेषता होती है। रसखान भी इसी विश्वास को धारण किये हुए हैं और कहते हैं कि कृष्ण जिसका रक्षक है, उसका कोई कुछ नहीं बिगाड़ सकता, यहाँ तक कि यमराज भी उसे कुछ हानि नहीं पहुँचा सकता—

‘द्रौपदी औ गनिका गज गीध अजामिल सो कियो सो न निहारो ।
गौतम गेहिनी कैसी तरी, प्रह्लाद की कैसे हर्यो दुख भारो ।
काहे को सोच करै रसखानि कहा करि है रविनन्द विचारो ।
ताखन जाखन राखियै माखन-चाखनहारो सो राखनहारो ॥’

रसखान ने जिस विषय का भी प्रस्तुतीकरण किया है, उसी को अत्यन्त भावपूर्ण रीति से व्यवत किया है । यथा —

रूप-माधुरी—

‘आवत है वन ते मनमोहन गाडन सग लस ब्रज-गवाला ।
वेनु बजावत गावत गीत अभीत दूतै करिगौ कछु स्थाला ।
हेरत हेरि थकै चहुँ ओर ते भाँकि भरोखन ते ब्रज-वाला ।
देखि सु आनन को रसखानि तज्यो सब दीस को ताप-कसाता ॥’

वक्र दृष्टि—

‘आती लला घन सो अति सुन्दर तैसो लसै पियरो उपरैना ।
गडनि पै छलकै छवि कु डल मडित कु तल रूप की सैना ।
दीरघ वक्र विलोकनि की अवलोकनि चारति चित्त को चैना ।
सो रसखानि हर्यो चित्त री मुसकाइ कहे अधरामृत वैना ॥’

मुसकान माधुरी—

‘वा मुख की मुसकान भटू अँखियनि ते नेकु टरै नहि टारी ।
जो पलकै पल लागति है पल ही पल माँझ पुकारै पुकारी ।
दूसरी ओर ते नेकु चितै इन नैनन नेम, गह्यो बजमारी ।
प्रेम की वानि कि जोग कलानि गहो रसखानि विचार विचारो ॥’

सौन्दर्य-वर्णन—

‘भोरपखा सिर कानन कु डल कुंतल सो छवि गडनि छाई ।
वक्र विसाल रसाल विलोचन है दुख मोचन मोहन माई ।
आली नवीन महाघन सो तन पीत पटा ज्यो छटा वनि आई ।
हो रसखानि जकी सी रही कछु टोना चलाइ ठगौरी सी लाई ॥’

कुंजलीला—

‘कुंजगली मैं अली निकमी तहाँ साँकरे ढोटा कियौ मटभेरो ।
माई री वा मुख की मुसकानि गयी मन बूडि फिरै नहि फेरो ।
जोरि लियौ दृग चोरि लियौ चित्त डार्यौ है प्रेम को फद घनेरो ।
कैसी करौ अब क्यौ निकसौ रसखानि परयौ तन रूप को घेरो ॥’

रसखान- काव्य में कृत्रिम व्यापारों का अभाव है । वर्णन और चेष्टा दोनों में ही स्वाभाविकता है । नटखट कृष्ण गोपियों से छेड़छाड़ करते हैं । गोपियाँ कितनी स्वाभाविक भाषा में उसकी भर्त्सना करती हैं—

‘अन्त ते न आयौ याही गाँवरे को जायौ,
माई वापरे जिवायौ प्याइ दूध वारे बारे को ।
सोई रसखानि पहिचानि कानि छाँडि चाहै,
लोचन नचावत नचैया द्वारे द्वारे को ।
मैया की सौ सोच कछु मटकी उतारे को न,
गोरस के द्वारे को न चीर चीरि डारे को ।
यहै दुख भारी गहै डगर हमारी माँझ,
नगर हमारे ग्वाल बगर हमारे को ॥’

चेष्टाओं का भी रसखान ने स्वाभाविक वर्णन किया है । कृष्ण किसी गोपी को मार्ग में ही घेर लेते हैं । उनकी आँखें चार होती हैं । तब कृष्ण अपना नटखटपना शुरू करते हैं । तब बेचारी विवश गोपी अपनी लज्जा बचाने के लिए अपने ही वस्त्रों में इस प्रकार लिपट जाती है जैसे सावन के बादल में छिपकर बिजली भीतर ही भीतर तडप रही हो—

‘पहले दधि लै गई गोकुल मैं चख चारि भए नट नागर पै ।
रसखानि करी उनि मैं नमई कहै दान दै दान खरे अरपै ।
नख ते सिख नील निचोल लपेटे सखी सम भॉति कँपै डरपै ।
मनौ दामिनि सावन के घन मैं निकसै नही भीतर ही तरपै ॥’

वस्तुतः रसखान की दृष्टि में प्रेम एक अत्यन्त उदात्त भाव है । इन उदात्त भावों से सम्बद्ध भावों में कृत्रिमता लाना इसके औदात्य को नष्ट करना है । इसीलिए इन्होंने सर्वत्र स्वाभाविकता का ध्यान रखा है ।

रसखान का काव्य भाव-प्रधान है । शब्दों का सचयन और संयोजन

इतनी कुणलता से किया गया है कि सर्वत्र भावों की प्रबल धारा अपनी अबाध और सहज गति से प्रवाहित हो रही है। कोई गोपी अपनी सखी से अपने प्रेम को किम सरलता किन्तु भावपूर्ण ढंग से व्यक्त करती है—

‘काल्हि पट्ट मुरली-धुनि मैं रसखानि लियो कहूँ नाम हमारी ।
ता दिन तैं भई बैरिन माग लितो कियो भाँजन देति न दारो ।’
‘होत चबाव बनार गी आनी रो जो भगि आँखिन भेंटियँ प्यारी ।’
‘वाट परी अब हो छिटनयो हियरे अटायो पियरे पटवारो ।’

‘पियरे पटवारो’ में अनन्त भावों की गन्धि के साथ-साथ अपार आत्मीयता सन्निहित है। ‘दानलीला’ में कृष्ण-गाथा-नवाद के अन्तर्गत और भी अधिक भावप्रवणता दृष्टिगोचर होती है। यथा—

कृष्ण—

‘एरी कहा वृषभानुपुंग की तो दान दिये बिन जान न पैती ।
जो दधि-गावन देव जू चाखन भूमन लागन या मग ऐही ।
नाहि तो जो रस मो रस लँहो जु गोरन बेचन फेरि न जैही ।
नाहक नारि तू रारि बढावति गारि दिये फिरि आपहि दैही ॥’

राधा—

‘गारी के देवैया बनवारी तुम कहो कोन,
हम तो वृषभान की कुमारी सब जानो है ।
जोर तो करोगे जाउ जामो हरि पार पाड,
भुरही ते आजु मो सो कैसे हठ टानो है ।
बूझि देखो मन माँहि अरुभत मग जात,
बूझि हो निदान कान्हू जीन बहो मानो है ।
मेरे जान कोऊ मीरखान आवै दहो छीनै,
तू तो है अहीर मोहि नाहि पहिचानो है ।’

आत्म-निवेदन भक्त की एक प्रमुख विशेषता होती है। इसके द्वारा भक्त अपने जीवन के सारे कार्यों का—विशेषतः पापों का—अनावरण अपने आराध्य के समक्ष कर देता है। इस अनावरण का कारण होता है अपने आराध्य के प्रति अगाध विश्वास। रसखान में मूर अधवा तुलसी जैसा आत्म-

निवेदन तो नहीं मिलता, पर अपने आराध्य के प्रति इन्होंने अगाध विश्वास अवश्य व्यक्त किया है। यथा—

‘कहा करै रसखान का कोई चुगुल लबार ।
जो पै राखन हार है माखन चाखन हार ॥’

इस प्रकार के अनेक उदाहरण रसखान-काव्य में मिलते हैं।

आत्म-समर्पण भी अगाध विश्वास का एक अंग है। रसखान जिस विधि से स्वयं को अपने भगवान के प्रति समर्पित करते हैं, वह विलक्षण है। इस विषय में इनका निम्नलिखित सबैया बहुत प्रचलित है—

‘मानुष हौ तौ वही रसखानि बसौ ब्रज गोकुल गाँव के ग्वारन ।
जौ पसु हौ तौ कहा बस मेरो चरौ नित नद की धेनु मँभारन ।
पाहन हौ तौ वही गिरि को जो धर्यौ कर छत्र पुरदर धारन ।
जौ खग हौ तौ बसेरो करौ मिलि कालिदी-कुल-कदम्ब की डारन ॥’

विरह-वेदना की अभिव्यक्ति भक्तों के लिए प्रमुख रही है। फारसी-साहित्य में तो यही एकमात्र सोपान है जिससे प्रियतम अथवा आराध्यदेव तक पहुँचा जा सकता है। रसखान के विरह का अत्यन्त सजीव एवं स्वाभाविक वर्णन किया है। यथा—

‘बाल गुलाब के नीर उसीर सो पीर न जाइ हियै जिन ढारौ ।
कज की माल करौ जु बिछावन होत कहा पुनि चंदन गारौ ।
एते इलाज बिकाज करौ रसखानि को काहे को जारे पै जारौ ।
चाहति ही जु जिवायौ पट्ट तौ दिखावौ बड़ी-बड़ी आँखनिवारौ ॥’

प्रियतम के सान्निध्य के बिना विरहिणी की विरह-वेदना का और उपचार ही क्या हो सकता है।

कही-कही परम्परा के अवाञ्छित चक्कर में आकर अथवा फारसी-प्रभाव के कारण रसखान ऊहात्मक वर्णन भी कर गये हैं। पर ऐसे स्थल कम ही हैं।

वास्तविक काव्य-आत्मानुभूति की अभिव्यक्ति के अतिरिक्त और कुछ है भी नहीं। रसखान किसी काव्य-शास्त्रीय नियम से न तो अवगत ही है और न यह विशेषता इनके लिए आवश्यक ही है। अपने भावावेश में ही इनकी

वाणी फूटती है और वाणी का यही प्रस्फुटन सरस एवं सच्चे काव्य को जन्म देता है ।

अन्य स्वच्छन्दवादी कवियों की भाँति रसखान ने भी प्रेम के स्वस्थ रूप का चित्रण किया है । प्रेम इनकी दृष्टि में हृदय की सबसे उदात्त भावना है । इनके मत से शुद्ध और वास्तविक प्रेम वही है जिसमें अकारण ही आकर्षण हो । गुण, यौवन, रूप आदि के आकर्षण से जो प्रेम होता है, उसे शुद्ध नहीं कहा जा सकता । पुत्र, कलम आदि के प्रति किया गया प्रेम भी स्वाभाविक और सच्चा नहीं है । वास्तव में प्रेम भगवान का ही दूसरा रूप है । रसखान ने प्रेम का सागोपाग विवेचन किया है एतद्विषयक इनके दोहे 'प्रेम-वाटिका' में संग्रहित हैं ।

रसखान सच्चे हृदय से भक्त थे । रीतिकालीन कवियों की भाँति भक्ति का वहाना इन्होंने नहीं लिया था । इसलिए इनके काव्य में आद्योपांत कृष्ण-भक्ति की धारा प्रवाहित होती हुई दिखाई देती है । इनकी भक्ति साधना में वे सभी विशेषताएँ मिलती हैं जो वैष्णव-भक्ति के लिए अनिवार्य हैं ।

अतः कहा जा सकता है कि रसखान-काव्य में वे सभी गुण विद्यमान हैं जो स्वच्छन्द काव्यधारा में पनपे हैं । डा० मनोहरलाल गौड़ के शब्दों में—

“...रसखान में अपने समय की-काव्य प्रवृत्तियों तथा अनुभूति-विधानों का परिचय तो दिखाई पड़ता है, पर अनुसरण नहीं । उन्होंने अपना ही स्वानुकूल मार्ग बनाया । उस मार्ग में विशुद्ध अप्रतिहत प्रेम की अनुभूति का प्राचुर्य था और उसकी अनावृत्त अभिव्यक्ति थी जो स्वच्छन्द मार्ग की ओर सकेत करती है, शास्त्रीय परम्परा की ओर नहीं । इसका तात्पर्य यह तो कदापि नहीं कि रसखान ने जान-बूझकर शास्त्रीय मार्गों का संगठन किया है, या वे काव्य के स्वच्छन्द मार्ग से यथाविविध परिचित थे । उनके जीवन का संयोग मुसलमान प्रेमी भक्त होने के नाते विविध पद्धतियों के सम्मिश्रण का कारण बन गया था । वैसा ही सम्मिश्रण कबीर में भी हुआ था, पर कबीर जानमार्गी होकर कठोर भी हो गये और खडन-परायण भी । हृदय की अनुभूतियों को अपने ढंग से व्यक्त करने की सरस प्रवृत्ति उनमें नहीं आई जो रसखान में आ गई ।”

सुजान-रस खान

1

2

3

4

5

6

7

8

9

10

11

12

13

14

भक्ति-भावना

सवैया

मानुष हो ती वही रसखानि वसौ ब्रज गोकुल गाँव के ग्वारन ।
जो पसु ही तो कहा वसु मेरो चरौ नित नन्द की धेनु मँभारन ।
पाहन ही तो वही गिरि को जो धर्यौ कर छत्र पुरन्दर धारन ।
जो खग ही तो वसेरो करौ मिलि कालिन्दी-कूल-कदम्ब की डारन ॥१॥

शब्दार्थ—मानुष ही=यदि मुझे आगामी जन्म मे मनुष्य-योनि मिले ।
मँभारन=मध्य मे । पाहन=पत्थर । छत्र=छाता । पुरन्दर=इन्द्र ।
धारन=गर्व नष्ट करने के लिए । कालिन्दी-कूल-कदम्ब=यमुना के तट पर
खड़े हुए कदम्ब के वृक्ष जिन पर कृष्ण अनेक प्रकार की क्रीडाएँ किया करते
थे । डारन=डालियो मे ।

अर्थ—कृष्ण के प्रति अपनी स्वतन्त्र भाव की भक्ति की अभिव्यक्ति
करते हुए रसखान कहते हैं कि यदि मुझे आगामी जन्म मे मनुष्य-योनि मिले
तो मैं वही मनुष्य बनूँ जिसे ब्रज और गोकुल गाँव के ग्वालो के साथ रहने
का अवसर मिले । आगामी जन्म पर मेरा कोई बस नहीं है, ईश्वर जैसी
योनि चाहेगा, दे देगा, इसलिए यदि मुझे पशु-योनि मिले तो मेरा जन्म ब्रज
या गोकुल मे ही हो, ताकि मुझे नित्य नन्द की गायो के मध्य मे विचरण
करने का सौभाग्य प्राप्त हो सके । यदि मुझे पत्थर-योनि मिले तो मैं उसी
पर्वत का बनूँ जिसे श्रीकृष्ण ने इन्द्र का गर्व नष्ट करने के लिए अपने हाथ
पर छाते की भाँति उठा लिया था । यदि मुझे पक्षी-योनि मिले तो मैं ब्रज
मे ही जन्म पाऊँ ताकि मैं यमुना के तट पर खड़े हुए कदम्ब के वृक्ष की
डालियो मे निवास कर सकूँ ।

विशेष—१ कवि ने अपना सम्बन्ध उन्ही वस्तुओं से जोड़ने की इच्छा
प्रकट की है, जिनसे कृष्ण का सम्बन्ध रहा है । भक्त को चाहे जिस अवस्था
मे रहना पड़े, उसे उसके आराध्यदेव के दर्शन नित्य मिलते रहे, यही उसके

जीवन का लक्ष्य होता है। रसखान ने भी उपर्युक्त सर्वे में इस लक्ष्य की भावमयी अभिव्यजना की है।

२. 'वसी ब्रज गोकुल गाँव के ग्वारन' में तथा 'कालिन्दी-कूल-कदम्ब की' में छेकानुप्रास अलंकार है।

३. 'पाहन ही तो वही गिरि को जो वर्यी कर छत्र पुरन्दर-धारन' में निम्नलिखित अन्तर्कथा निहित है—

कृष्ण के आदेश से ब्रजवालो ने इन्द्र की पूजा छोड़कर गौओं की पूजा करनी आरम्भ कर दी। इस बात से इन्द्र अत्यन्त कुपित हुआ। उसने ब्रज को डवाने के लिए मूसलाधार वर्षा कर दी। कृष्ण ने ब्रज की रक्षा के लिए गोवर्धन पर्वत को उठाकर छाते की भाँति ब्रज के अपर लगा दिया। तब इन्द्र ब्रज का कुछ भी न बिगाड़ सका। उसका गर्व नष्ट हो गया।

'पाठान्तर—'मानुष हों तो वही रसखानि वसी नित गोकुल गाँव के ग्वारन।

जो पसु ही तो कहा वसु मेरो चरौ नित नन्द की वेनु मँभारन।

पाहन ही तो वही गिरि को जो कियो ब्रज छत्र पुरन्दर-धारन।

जो खग ही तो वसेरो करौ वही कालिन्दी-कूल-कदम्ब की डारन।'

सुलना—'ब्रज के लता पता मोहि कीजै।' —हरिश्चन्द्र

सर्वैया

जो रसना रस ना विलसै तेहि देहु सदा निज नाम उचारन।

मो कर नीकी करै करनी जु पै कुज-कुटीरन देहु बुहारन।

सिद्धि ससृद्धि सबै रसखानि नहीं ब्रज-रेनुका-अग-सवारन।

खास निवास लियो जु पै तो वही कालिन्दी-कूल-कदम्ब की डारन ॥२॥

शब्दार्थ—रसना=जीभ। रस=इन्द्रियो को आनन्द देने वाले मधुर, अम्ल, लवण, कटु, वषाय और तिक्त रस। नीकी=अच्छी। बुहारन=साफ करना, झाड़ू देना। रेनुका=धूल। कालिन्दी-कूल=यमुना का तट।

अर्थ—रसखान अपने आराध्यदेव से प्रार्थना करते हुए कहते हैं कि हे देव, मुझे सदा अपने नाम का स्मरण करने दो, ताकि मेरी जीभ इन्द्रियो के आनन्द में डूब जाये। मुझे कुंजी में बनी हुई अपनी कुटियो में झाड़ू लगाने दो,

जिससे मेरे हाथ सत्कार्य करते रहे । मुझे ब्रज की धूल में अपने शरीर को धूसरित करने दो, जिससे मुझे अणिमा आदि आठो सिद्धियों का सुख मिल जाये । यदि आप मुझे निवास करने के लिए कोई स्थान देना चाहते हैं तो यमुना-तट पर खड़े हुए उन्ही कदम्ब की डालियों में दीजिए जहाँ पर आप अनेक प्रकार की क्रीडाएँ किया करते थे ।

विशेष—‘जो रसना रसना विलसे’ में यमक तथा ‘करै करनी,’ ‘कु ज-कुटीरन,’ ‘सिद्धि-समृद्धि’ और ‘कालिदी-कूल-कदम्ब की’ में छेकानुप्रास-अलंकार हैं ।

सवैया

‘बैन वही उनको गुन गाइ औ कान वही उन बैन सो सानी ।
हाथ वही उन गात सरै अरु पाइ वही जु वही अनुजानी ।
जान वही उन आन के सग औ मान वही जु करै मनमानी ।
त्यौ रसखान वही रसखानि जु है रसखानि सो है रसखानी ।’

शब्दार्थ—बैन=वाणी । सानी=मुक्त । सरै=माला पहनाये । पाइ=पैर, चरण । अनुजानी=अनुगामी । जान=प्राण । रसखानी=अन्तिम पवित्र ।
मे यह शब्द चार बार प्रयुक्त हुआ है, अतः इसके अर्थ क्रमशः ये हैं—(१) कवि का नाम, (२) आनन्द का भण्डार, (३) श्री कृष्ण, (४) प्रेम का खजाना, अर्थात् अत्यन्त प्रेम करने वाला ।

अर्थ—मनुष्य-जीवन की सफलता एवं सार्थकता तभी है जब वह स्वयं को अपने आराध्य देव के प्रति पूर्णतया समर्पित कर दे, इसी भाव को प्रकट करते हुए रसखान कहते हैं कि वही वाणी सार्थक है जो कृष्ण के गुणों का गान करती है, वे ही कान सार्थक हैं जो कृष्ण की वाणी से युक्त रहते हैं, वे ही हाथ सार्थक हैं जो कृष्ण के शरीर पर माला पहनाते हैं; वे ही चरण सार्थक हैं जो कृष्ण का अनुगमन करते हैं, उनके पीछे-पीछे चलते हैं, वे ही प्राण सार्थक हैं जो सदैव कृष्ण के साथ रहते हैं; वही मान सार्थक है जो कृष्ण को द्रवित करके उनसे मनमानी बात करा लेता है । इसी प्रकार वही आनन्द के भण्डार श्री कृष्ण हैं जो अपने भक्तों को अत्यन्त प्यार करते हैं ।

विशेष—इस सवैया की अन्तिम पवित्र में यमक अलंकार का अत्यन्त चमत्कारपूर्ण एवं भावपूर्ण प्रयोग है ।

दोहा

कहा करै रसखानि को, कोऊ चुगुल लवार ।

जो पै राखनहार है, माखन चाखनहार ॥४॥

शब्दार्थ—चुगुल=चुगलखोर । लवार=भूठा, दुष्ट । राखनहार=रक्षक । माखनमाखनहार=श्रीकृष्ण ।

अर्थ—श्रीकृष्ण जिसके रक्षक हैं, उनका कोई कुछ नहीं बिगाड़ सकता, इस भाव को प्रकट करते हुए रसखान कहते हैं कि यदि श्रीकृष्ण मेरे रक्षक हैं तो मेरा कोई भी चुगलखोर तथा दुष्ट व्यक्ति कुछ नहीं बिगाड़ सकता ।

विशेष—१. 'जो पै राखनहार है, माखन-चाखनहार' में यमक अलंकार है ।

२. कहते हैं कि बादशाह अकबर ने रसखान को दीने-इलाही में दीक्षित होने के लिए कहा, किन्तु ये दोने-इलाही में सम्मिलित न होकर कृष्ण-भवत बन गये । तब किसी व्यक्ति ने बादशाह से आकर इनकी चुगली की और उन्हें कठोर दण्ड देने का परामर्श दिया । इस घटना की प्रतिक्रिया-स्वरूप रसखान ने उपर्युक्त दोहे की रचना की ।

पाठान्तर—कहा करै रसखान को, लपट लोग लवार ।

जो पत राखनहार है, माखन-चाखनहार ॥

तुलना—१. 'जो प राखि है राम तो मारि है कोरे ।'

—तुलसीदास

२. रहिमान को कोऊ का करै, ज्वारी चोर लवार ।

जो पत राखनहार है, माखन-चाखनहार ॥

—रहीम

दोहा

विमल सरल रसखानि, भई सकल रसखानि ॥

सोई नव रसखानि को, चित चातक रसखानि ॥५॥

शब्दार्थ—विमल=शुद्ध । रसखानि मिलि=कृष्ण से मिलकर । रसखानि=कृष्ण ।

अर्थ—रसखान कवि कहते हैं कि शुद्ध एवं सरल स्वभाव वाली गोपिया जिस कृष्ण से मिलकर उसी का रूप बन गई, मेरा मन उसी दयालु रसखान (आनन्द-सागर कृष्ण) का घातक बना हुआ है।

विशेष—१. यमक अलकार।

२. चातक का प्रेम आदर्श प्रेम माना गया है, अतः अपने प्रेम की अभिव्यक्ति सभी भक्त-कवियों ने चातक के माध्यम से ही की है। गोस्वामी तुलसीदास ने तो चातक प्रेम का सागोपाग ही वर्णन किया है।

दोहा

सरस नेह लवलीन नव, द्वै सुजान रसखानि ।
ताके आस विसास सो पगे प्राण रसखानि ॥६॥

शब्दार्थ—नेह=प्रेम। लवलीन=तन्मय। नव=नूतन। द्वै=दोनों, कृष्ण और राधा।

अर्थ—कवि कृष्ण और राधा के मिलन की स्तुति करता हुआ कहता है कि जो राधा और कृष्ण के सरस तथा नूतन प्रेम में तन्मय हैं, उन्हीं की दया की आशा और विश्वास से मेरे प्राण सदैव सम्पृक्त हैं।

कृष्ण का अलौकिकत्व

सवैया

सकर से सुर जाहि जपै चतुरानन ध्यानन धर्म बढावै ।
नैक हिये जिहि आनत ही जड़ मूढ महा रसखानि कहावै ।
जा पर देव अदेव भू-अगना वारत प्राणन प्राणन पावै ।
ताहि अहीर की छोहरियाँ छछिया भरि छाछ पै नाच नचावै ॥७॥

शब्दार्थ—सकर से सुर=शिव जैसे देव। चतुरानन=ब्रह्मा। नैक=थोड़ा-सा। आनत ही=लाते ही। जड़ मूढ=अत्यन्त मूर्ख। महा रसखानि=विपुल ज्ञान के भंडार। अदेव=किन्नर। भू-अगना=पृथ्वी पर रहने वाली स्त्रियाँ। वारत प्राणन=प्राणों को न्यौछावर करके।

अर्थ—कृष्ण की भक्त-वत्सलता एवं लौकिक लीला का वर्णन करते हुए रसखान कहते हैं कि जिस कृष्ण का जप शकर जैसे देव करते हैं, जिनका

ध्यान करके वह्मा अपने धर्म में वृद्धि करते हैं, जिसका तनिक सा ध्यान भी हृदय में लाते ही अत्यन्त मूर्ख भी विपुल ज्ञान के भंडार बन जाते हैं, जिस पर देव, किन्नर और पृथ्वी पर रहने वाली स्त्रियाँ अपने प्राणों को न्यौछावर करके सजीवता प्राप्त करती हैं, उसी कृष्ण को अहीर की लड़कियाँ छछिया-भर छाछ के लिए नाच नचाती हैं ।

विशेष—‘सकर से सुर’, ‘ध्यानन धर्म’, ‘छोहरिया छछिया भरि छाछ’ में छेकानुप्रास तथा वृत्त्यनुप्रास, ‘नैक हिये जिहि आनत ही जड़ मूढ महा रसखानि कहावै’ में द्वितीय विभावना, ‘वारत प्रानन प्रानन पावै’ में विरोधाभास और जापर देव अदेव भू-अगना’ में यमक अलंकार है ।

पाठान्तर—इस सवैया की तृतीय पंक्ति के निम्नलिखित पाठांतर मिलते हैं—

१. जापर सुन्दर देववधू नहि वारत प्रान अवार लगावै ।
२. जापर देव भुवंग वरगना वारति प्रान सु प्रान से पावै ।
३. जापर देव अदेव भुवंगम वारत प्रानन पार न पावै ।

सवैया

सेप गनेस महेस दिनेस सुरेसहु जाहि निरन्तर गावै ।
जाहि अनादि अनंत अखण्ड अछेद अभेद सु वेद बतावै ।
नारद से सुक व्यास रहै पचि हारे तऊ पुनि पार न पावै ।
ताहि अहीर की छोहरिया छछिया भरि छाछ पै नाच नचावै ॥८॥

शब्दार्थ—सेप=शेषनाग । महेस=शिव । दिनेस=सूर्य ! सुरेस=इन्द्र ।
अछेद=अच्छेद्य, अमर । अभेद=अभेद्य, जिसका रहस्य न जाना जा सके ।
पचि=कोशिश करके ।

अर्थ—कृष्ण की भक्त-वत्सलता एवं लौकिक लीला का वर्णन करते हुए रसखान कहते हैं कि जिस कृष्ण के गुणों का शेषनाग, गरुडेश, शिव, सूर्य, इन्द्र निरन्तर स्मरण करते हैं । वेद जिसके स्वरूप का निश्चित ज्ञान प्राप्त न करके उसे अनादि, अनन्त, अखण्ड, अच्छेद्य, अभेद्य आदि विशेषणों से युक्त करते हैं । नारद, सुकदेव और व्यास जैसे प्रकांड पंडित भी अपनी पूरी कोशिश करके जिसके स्वरूप का पता न लगा सके और हार मानकर बैठ गए, उन्हीं कृष्ण को

निरन्तर । सेस = शेषनाग । तिरलोक मे = तीनों लोकों मे । सुनारद = सहस्रि
नारद । साख = साक्षी ।

अर्थ—कृष्ण के अलौकिकत्व का प्रतिपादन करते हुए रसखान कहते हैं कि ब्रह्मा आदि अनेक योगी उस कृष्ण को जानने के लिए समाधि लगाये हुए हैं, पर वे उसका अन्त नहीं पाते, अर्थात् कृष्ण दुर्वोध्य और अनन्त हैं । शेष-नाग अपनी सहस्रों जिह्वाओं से निरन्तर उसका नाम जपते रहते हैं । महर्षि नारद अपने हाथ मे वीणा लेकर उसे बजाते हुए तीनों लोकों मे घूँट फिरे हैं, पर कोई भी ऐसी साक्षी नहीं मिली, जिसके आधार पर वे यह दावा कर सकें कि उन्होंने कृष्ण के रूप को जान लिया है । ऐसे दुर्वोध्य, अनन्त कृष्ण को अहीर की लड़कियाँ एक मटकी छाछ के लिए नाच नचाती हैं ।

विशेष—यह सर्वैया श्री विश्वनाथप्रसाद मिश्र द्वारा सम्पादित 'रसखान-ग्रन्थावली' मे नहीं है ।

सर्वैया

गुंज गरें सिर मोरपखा अरु चाल गयद की मो मन भावै ।
साँवरो नन्दकुमार सबै ब्रजमंडली में ब्रजराज कहावै ।
साज समाज सबै सिरताज औ लाज की बात नहीं कहि आवै ।
ताहि अहीर की छोहरियाँ छछिया भरि छाछ पै नाच नचावै ॥११॥

शब्दार्थ—गुंज = गले मे पहनने का एक आभूषण । गयंद = हाथी ।
छाज = शोभा ।

अर्थ—कोई गोपी अपनी सखी से कृष्ण की शोभा का तथा उनकी लौकिक लीला का वर्णन करती हुई कहती है कि उनके गले मे गुंज नामक आभूषण है, सिर पर मोर-पखों का बना हुआ मुकुट है । हाथी जैसी मस्तानी चाल है जो मुझे बहुत ही अच्छी लगती है । यह साँवरा कृष्ण सारे ब्रज का शिरोमणि है, इसीलिए ब्रजराज कहलाता है । यह सारी शोभा का और सारे समाज का सिरताज है । इसकी शोभा का वर्णन नहीं किया जा सकता । ऐसे कृष्ण को अहीर की लड़कियाँ छछिया भर छाछ के लिए नचाती रहती हैं ।

विशेष—'साज समाज सबै सिरताज' मे वृत्त्यनुप्रास है ।

सवैया

ब्रह्म मै हूँढ्यौ पुरानन गानन वेद-रिचा सुनि चौगुने चायन ।
देख्यौ सुन्यौ कबहूँ न कितूँ वह कैसे सरूप औ कैसे सुभायन ।
टेरत हेरत हारि पर्यौ रसखानि बतायौ न लोग लुगायन ।
देखौ दुरौ वह कुज-कुटीर मै बैठौ पलोटत राधिका पायन ॥१२॥

शब्दार्थ—पुरानन गानन=पुराण के गीतो मे । चायन=चाव से ।
कितूँ=कही भी । सुभायन=स्वभाव । टेरत=पुकारता हुआ । हेरत=
खोजता हुआ । लुगायन=स्त्रियो ने । दुरौ=छिपा हुआ । पलोटत राधिका
पायन=राधा के पैर दबा रहा है ।

अर्थ—कृष्ण की प्रेमाधीनता का वर्णन करते हुए रसखान कहते हैं कि
मैंने ब्रह्म को पुराणों के गीतो मे हूँढा, वेद-ऋचाओं को चौगुने चाव से इमी-
लिए सुना कि शायद उन्हीं से ब्रह्म का पता चल जाये । मेरे सारे प्रयत्न
निष्फल हुए । मैंने उसे न तो कही सुना और न कही देखा । मैं यह भी नहीं
जान पाया कि उसका स्वरूप और स्वभाव कैसा है । उसे पुकारते हुए, उसकी
खोज करते हुए मैं थक गया और किसी भी नर या स्त्री ने उनका पता नहीं
बताया । अन्त मे वह मुझे कुज-कुटीर मे छिपकर बैठे हुए राधा के पैरो को
दबाता हुआ दिखाई दिया ।

सवैया

कस कुढ्यौ सुनि बानी अकास की ज्यावनहारहि मारन धायौ ।
भादव साँवरी आठई को रसखान महाप्रभु देवकी जायौ ।
रैनि अँधेरी मे लै वसुदेव महावन मे अरगै धरि आयौ ।
काहु न चौजुग जागत पायौ सो राति जसोमति सोवत पायौ ॥१३॥

शब्दार्थ—बानी अकास=आकाशवाणी । ज्यावनहारहि=जन्म लेने
वाला ही, देवकी के गर्भ से उत्पन्न होने वाला ही । भादव साँवरी आठई
को=भादौ की कृष्ण अष्टमी को । अरगै=धीरे-धीरे, चुपचाप । चौजुग=
चारों युगों मे—सतयुग, द्वापर, त्रेता और कलियुग । जागत=जागृत
अवस्था ।

अर्थ—कृष्ण-जन्म का वर्णन करते हुए रसखान कहते हैं कि जब कस ने
यह आकाशवाणी सुनी कि देवकी के गर्भ से उत्पन्न होने वाला पुत्र ही तुझे

मारने के लिए अवतार ले रहा है तो वह बहुत अप्रसन्न हुआ। आकाशवाणी के अनुसार ही भादो की कृष्णाष्टमी को आनन्द सागर महाप्रभु कृष्ण ने देवकी के गर्भ से जन्म लिया। कस के भय से भयभीत होकर वसुदेव उस नवजात शिशु को अँधेरी रात में चुपचाप लेकर महावन (मथुरा) की ओर चल दिए। जिस कृष्ण को चारों कालों का कोई भी योगी अपनी समाधि की जागृतावस्था में भी प्राप्त नहीं कर सका है, उसी कृष्ण को यशोदा ने रात को अपने पास सोते हुए पाया।

विशेष १. समाधि अलकार।

२. यह सबैया श्री विश्वनाथ मिश्र द्वारा सापादित 'रसखान ग्रन्थावली' में नहीं है।

तुलना १. 'गावत वेद विरंच न पायौ सो गोधन गावत गोपन पायौ।

—केशव

२ 'जग जाकी गोद में सो जसुदा की गोद में।'

—ब्रजेश

कवित्त

सभु घरै ध्यान जाको जपत जहान सब,
ताते न महान् और दूसर अवरेख्यौ मैं।
कहै रसखान वही बालक सरूप घरै,
जाको बहू रूप रग अद्भुत अवलेख्यौ मैं।
कहा कहूँ आली बहू कहती वनै न दसा,
नन्द जी के अँगना में कौतुक एक देख्यौ मैं।
जगत को ठाटी महापुरुष विराटी जो,
निरजन निराटी ताहि माटी खात देख्यौ मैं ॥१४॥

शब्दार्थ—अवरेख्यौ मैं=मैंने देखा। अवलेख्यौ मैं=मैंने देखा। कौतुक=तमाशा। जगत को ठाटी=ससार की रचना करने वाला, सृष्टि-सृष्टा। विराटी=विराट रूप धारण करने वाला। निरंजन=विमल, प्रभावातीत। निराटी=अकेला, एकमेव।

अर्थ—कोई गोपी अपनी सखी से कृष्ण की अलौकिकता और उनकी

बाल-लीला का वर्णन करती हुई कहती है कि हे सखि । शिव जिसको आराध्य मानकर ध्यान करते हैं, सारा ससार जिसकी पूजा करता है, जिससे महान् और दूसरा देव मैंने कोई नहीं देखा । वही कृष्ण साकार बनकर अवतरित हुआ है जिसका रूप-रंग मुझे कुछ-कुछ अद्भुत सा लगा है । हे सखि ! क्या कहूँ, मुझसे तो उसकी उस अवस्था का वर्णन ही नहीं हो पा रहा है । वस यह जान लो कि नद जी के आँगन में मैंने एक तमाशा देखा है । जो कृष्ण ससार की रचना करने वाला है, महापुरुष है, विराट रूप धारण करने वाला है, किसी भी प्रकार के प्रभावों से परे है—प्रभावातीत है, केवल एक हैं; अर्थात् वही एक केवल सत्ताव्रत है, और सारा ससार तो उसी की सत्ता की माया है, उसे मैंने मिट्टी खाते हुए देखा है ।

विशेष—१. इस कविता का भावपक्ष निर्वल और दार्शनिकता सबल है ।

२. श्री विश्वनाथ प्रसाद मिश्र द्वारा सम्पादित 'रसखान-ग्रंथावली' में यह कवित्त नहीं है ।

तुलना—'शृणु सखि कौतुकमेक नद निकेतागणे मया दृष्टम् ।
गोधूलि धूसरागो नृत्यति वेदान्त सिद्धात ॥'

कवित्त

वेई ब्रह्म ब्रह्मा जाहि सेवत है रैन-दिन,
सदासिव सदा ही धरत ध्यान गाढे है ।
वेई विष्णु जाके काज मानी मूढ राजा रक,
जोगी जती ह्वै कै सीत सह्यौ अग डाढे है ।
वेई ब्रजचद रसखानि प्रान प्रानन के,
जाके अभिलाख लाख-लाख भॉति वाढे है ।
जसुधा के आगे वसुधा के मान-मोचन मे,
तामरस-लोचन खरोचन कौ ठाढे है ॥ १५ ॥

शब्दार्थ—वेई=वही कृष्ण । सदासिव=सदा भक्त वत्सल शिव । गाढे=गभीर । जाके काज=जिसके लिए ! मानी=अहकारी । मूढ=मूर्ख । रंक=निर्धन । ब्रजचद=कृष्ण । रसखानि=आनंद के भंडार । जसुधा=यशोदा । वसुधा=पृथ्वी, पृथ्वी पर रहने वाले लोग । मान-मोचन=अहकार को नष्ट करने वाले । तामरस-लोचन=कमलनयन । खरोचन=खुरचनी ।

अर्थ—प्रस्तुत कवित्त में रसखान कृष्ण के अलौकिकत्व एवं बाल-लीला की ओर संकेत करते हैं कि वही कृष्ण ब्रह्म जिनकी पूजा ब्रह्मा जी रात-दिन किया करते हैं, भक्त-वत्सल शिव जिनका सदा गभीर ध्यान करते हैं; वही कृष्ण-विष्णु जिनके लिए अहकारी, मूर्ख, राजा, निर्धन, सभी प्रकार के लोग भोगी बनकर गीतादि के द्वारा अपने अंगों को शिथिल बनाते हैं, वही आनंद के भंडार कृष्ण जो प्राणों के प्राण हैं और जिन्हें देखने के लिए लाखों अभिलाषायें लाखों प्रकार से बढ़ती हैं, जो पृथ्वी पर रहने वाले लोगों का हृदय मिटाने वाले हैं कमल के समान सुन्दर नेत्रों वाले हैं, यशोदा के सामने खुरचनी लेने के लिए खड़े हुए हैं।

विशेष—१ इस कवित्त में कृष्ण के ब्रह्म-रूप की ओर संकेत है।

२ जसुधा के आगे वसुधा के मान-मोचन में और तामरस-लोचन खरोचन को ठाढ़े हैं। ये यमक अलंकार हैं।

३ कृष्ण का अनेक रूपों में वर्णन होने से उल्लेख अलंकार है।

तुलना—आगे नंदरानी के तनक मम पीत्रे काज,
तीन लोक ठाकुर सो सुनुक्त ठाढ़ो है।

—पद्माकर

अनन्य भाव

सवीया

सेप सुरेस दिनेस गनेस ब्रजेस घनेस महेस मनावी।

कोऊ भवानी भजी मन की सब आस सब विधि जाइ पुरावी।

कोऊ रमा भजि लेहु महा धन कोऊ कहूँ मन वाछित पावौ।

पै रसखानि वही मेरो साधन और त्रिलोक रहौ कि नसावौ ॥ १६ ॥

शब्दार्थ—सेप=शेषनाग। सुरेस=इन्द्र। दिनेस=सूर्य। अजेस=ब्रह्मा। घनेस=कुबेर। महेस=शिव। भवानी=पार्वती। पुरावी=पूर्ण करे। रमा=लक्ष्मी। नसावौ=नष्ट हो जाये।

अर्थ—अनन्य भाव की भक्ति की अभिव्यक्ति करते हुए रसखान कहते हैं कि चाहे कोई शेषनाग, इन्द्र, सूर्य, गणेश, ब्रह्मा, कुबेर और शिव की भक्ति करे। चाहे कोई पार्वती की भक्ति करके अपने मन की सभी अभिलाषाओं को सभी प्रकार पूर्ण कर ले। चाहे कोई लक्ष्मी की पूजा करके भारी धन

प्राप्त कर ले । चाहे कोई किसी भी प्रकार अपना मनोवाञ्छित फल पाले, किन्तु मेरा तो एकमात्र साधन कृष्ण ही है । कृष्ण के अतिरिक्त तीनों लोक चाहे रहे, या नष्ट हो जाये, मुझे इसकी कोई चिन्ता नहीं है ।

विशेष—‘सेष सुरेस दिनेस गनेस अजेस धनेस महेस’ मे छेकानुप्रास और श्रुत्यनुप्रास अलंकार है ।

तुलना—‘मेरे तो राधिका नामक ही गति लोक दुःख रही कै नसि जायौ ।’

—हरिश्चन्द्र

सवैया

द्रौपदी अ ' गनिका गज गीध अजामिल सो कियो सो न निहारो ।
गौतम-गेहिनी कैसी तरी, प्रह्लाद को कैसे हरयौ दुख भारो ।
काहे की सोच करै रसखानि कहा करि है रविनन्द विचारो ।
ता खन जा खन राखियै माखन-चाखनहारो सो राखनहारो ॥१७॥

शब्दार्थ—द्रौपदी=पांडवों की स्त्री । गज=हाथी, जिसकी कृष्ण ने ग्राह से रक्षा की थी । गीध=जटायु, जो सीता की रक्षा करते समय रावण के बाणों से घायल हुआ था और अन्त में राम ने जिसका उद्धार किया था । अजामिल=एक व्यवित का नाम । गौतम-गेहिनी=गौतम की स्त्री अहिल्याबाई । रवि नन्द=यमराज । ताखन=उस समय । जा खन=जिस समय । माखन-चाखनहारो=श्रीकृष्ण । राखनहारो=रक्षक ।

अर्थ—जब कृष्ण रक्षक है तो मनुष्य को किसी भी प्रकार की चिन्ता नहीं करनी चाहिए, इस भाव को व्यक्त करते हुए रसखान कहते हैं कि कृष्ण इतने दयालु हैं कि अपने भक्तों की डेर सुनते ही तुरन्त उनकी रक्षा के लिए कटिबद्ध हो जाते हैं । द्रौपदी, गणिका, गज, गीध और अजामिल ने अपने जीवन में क्या कार्य किये थे, क्या उनके कार्य उनका उद्धार करने में समर्थ थे ? इन बातों पर कृष्ण ने कोई ध्यान नहीं दिया और तुरन्त उनका उद्धार कर दिया । इसी प्रकार गौतम—स्त्री अहिल्याबाई को भी मुक्ति प्रदान की तथा हिरण्य-कशिपु को मारकर प्रह्लाद के भारी दुख का हरण किया । अतः हे मनुष्य ! जिस समय श्रीकृष्ण तुम्हारे रक्षक है, उस समय तुम्हें कोई चिन्ता नहीं करनी

चाहिए, क्योंकि उस समय तो यमराज भी तुम्हारा कुछ भी नहीं विगाड़ सकता ।

विशेष—१. 'चाखनहारो सो राखनहारो' में यमक अलंकार है ।

२. 'विचारो' शब्द यमराज की दुर्बलता को साकार कर रहा है, अतः यह शब्द नितात औचित्यपूर्ण है ।

३. अन्तिम पंक्ति में यति-दोष है ।

सवैया

देस विदेस के देखे नरेसन रीझ की कोऊ न बूझ करैगी ।

ताते तिन्हें तजि जानि गिर्यौ गुन सौ गुन औगुन गाँठि परैगी ।

वाँसुरीवारो बडो रिझवार है स्याम जु नैसुक डार डरैगी ।

लाडलो छैल वही तौ अहीर को पीर हमारे हिये की हरैगी ॥ १८॥

शब्दार्थ—रीझ की=प्रेम की । गिर्यौ गुन=अवगुण । रिझवार=रीझने वाला, प्रेम करने वाला । नैसुक=तनिक भी । डार डरैगी=प्रीति करेगा । पीर=दुख ।

अर्थ—कृष्ण भक्त-वत्सल है, इसी भाव को अभिव्यक्त करते हुए रसखान कहते हैं कि हे मन ! तू देश-विदेश के राजाओं को परख ले, तेरे प्रेम का कोई भी सम्मान नहीं करेगा । उनके प्रति प्रेम करना अवगुण ही है, क्योंकि चाहे तुममें कितने ही गुण सही, पर उनके साथ रहने से वे अवगुण बन जायेंगे । वह वशीधर कृष्ण बहुत ही रीझने वाला है, भक्त-वत्सल है, यदि तू उससे तनिक भी प्रेम करेगा तो वह अहीर का लाड़ला पुत्र हमारे हृदय के सारे दुख को दूर कर देगा ।

विशेष—१. 'देश विदेश' में छेकानुप्रास; 'ताते तिन्हें तजि' में वृत्त्यनुप्रास और 'सौगुन औगुन गाँठि परैगी' में यमक अलंकार है ।

२. 'रिझवार' शब्द का प्रयोग अत्यन्त भावपूर्ण है ।

सवैया

सपति सौ सकुचाइ कुवेरहि रूप सौ दीनी चिन्ताँती अनगहि ।

भोग कै कै ललचाइ पुरन्दर जोग कै गगलई धर मगहि ।

ऐसे भए तौ कहा रसखानि रसै रसना जी जु मुक्ति-तरगहि ।

दै चित ताके न रग रच्यौ जु रह्यौ रचि राधिका रानी के रगहि ॥१९॥

शब्दार्थ—चिन्तौती=चुनौती । अनगहि=कामदेव को । भोग=ऐश्वर्य, पुरन्दर=इन्द्र । मगहि=सिर पर । मुक्ति तरगहि मुक्ति की तरंगों में, ज्ञान की चरम कोटि पर । रग=प्रेम । रंगहि=प्रेम में ।

अर्थ—रसखान मनुष्य को कृष्ण-प्रेम के लिए प्रेरित करते हुए कहते हैं कि हे मनुष्य ! चाहे तुमने इतनी सम्पत्ति प्राप्त कर ली है कि उसकी विपुलता देखकर कुबेर को भी सकोच होता है, चाहे तुम इतने रूपवान हो कि अपने सौन्दर्य से कामदेव को चुनौती दे सकते हो, चाहे तुम्हारे पास इतनी सम्पत्ति हो गई है कि जिसे देखकर इन्द्र का मन भी ललचा जाए; चाहे तुमने योग-साधना के द्वारा गगाधर शिव-रूप को प्राप्त कर लिया, चाहे तुम्हारी जीभ मुक्ति की लहरो में डूब गई है, अर्थात् तुम ज्ञान की चरम कोटि पर पहुँच गये हो; किन्तु यदि तुमने मन लगाकर उस कृष्ण से प्रेम नहीं किया जो राधा-रानी से प्रेम करते हैं तो तुम्हारी ये उपलब्धियाँ व्यर्थ और निस्सार हैं ।

सवैया

कचन-मन्दिर ऊँचे बनाइ कै मानिक लाइ सदा भलकैयत ।
प्रात ही ते सगरी नगरी नग मोतिन ही की तुलानि तुलैयत ।
जद्यपि दीन प्रजान प्रजापति की प्रभुता मघवा ललचैयत ।
ऐसे भए तौ कहा रसखानि जौ साँवरे ग्वार सो नेह न लैयत ॥२०॥

शब्दार्थ—कचन-मन्दिर=सोने के महल । मानिक=मोती । नग=हीरा । मघवा=इन्द्र । साँवरे ग्वार सो=कृष्ण से । नेह=स्नेह, प्रेम ।

अर्थ—कृष्ण के प्रति प्रेम ही मनुष्य की सर्वाधिक मूल्यवान सम्पत्ति है । जिसे कृष्ण से प्रेम नहीं, उसके सभी प्रकार के वैभव निरर्थक है । इसी भाव को प्रस्तुत सवैया में प्रकट करते हुए रसखान कहते हैं कि माना तुमने सोने के ऊँचे-ऊँचे महल बनाकर उन्हें मोतियों से सदैव भलका रक्खा है । तुम्हारे पास इतने हीरे और मोती हैं कि प्रातः काल से ही सारी नगरी उन्हें तराजुओं में तोलने लगती हैं और फिर भी वे तुल नहीं पाते । तुम इतने वैभवपूर्ण राजा बन गए हो कि तुम्हारा वैभव देखकर इन्द्र का मन भी ललचाता है, अर्थात् तुम्हारे वैभव की तुलना में वह अपने वैभव को अत्यन्त तुच्छ मानकर स्वयं को दीन-हीन अनुभव करता है और चाहता है कि तुम्हारा जैसा वैभव उसके पास भी हो । यदि तुमने कृष्ण से प्रीति नहीं की है तो तुम्हारा यह सब अपार

वैभव व्यर्थ है ।

कहने का भाव यह है कि कृष्ण की प्रीति ही सबसे विशाल वैभव है ।
सारे सासारिक वैभव उसके सामने तुच्छ और नगण्य है ।

विशेष—कृष्ण की प्रीति का अत्युक्तिपूर्ण वर्णन होने से इस सबैया में
अत्युक्ति अलंकार है ।

पाठान्तर—तीसरी पक्ति का यह रूप भी मिलना है—

‘पार्ल प्रजानि प्रजापति सो अरु सम्पति सो मघवाहि लजैयत ।’

तुलना—‘ऐसे भये तो कहा तुलसी जु पै जानकीनाथ के रग न राते ।’

—तुलसी

कवित्त

कहा रसखानि सुखसम्पत्ति सुमार कहा,

कहा तन जोगी ह्वै लगाए अग छार को ।

कहा साधे पचानल, कहा सोए बीच नल,

कहा जीति लाए राज सिंधु आर-पार को ।

जप वार-वार तप सजम वयार-व्रत,

तीरथ हजार अरे वृभक्त लवार को ।

कीन्हीं नहीं प्यार नहीं सेयी दरवार, चित,

चाह्यौ न निहार्यौ जी पै नद के कुमार को ॥२१॥

शब्दार्थ—रसखानि=आनन्द देने वाले भंडार । सुमार=गणना । छार=
धूल, भस्म । पचानल=पाँच प्रकार की अग्नियों से तप करना; चारो ओर
से जलने वाली चार अग्नियाँ तथा ऊपर से सूर्य की प्रखर गर्मी । नल=जल-
वयार-व्रत=वितकुल भूखा रहकर तप करना । लवार=मूर्ख । नन्द के कुमार
को=कृष्ण को ।

अर्थ—कृष्ण की भक्ति के बिना और सभी तप तथा योग सानाधएँ व्यर्थ
हैं, इस भाव को प्रकट करते हुए रसखान कहते हैं कि हे मनुष्य ! यदि तुमने
कृष्ण से प्रेम नहीं किया, उसकी शरण में नहीं गए, भावपूर्ण मन से उसे नहीं
चाहा और प्रेममयी दृष्टि से उसे नहीं देखा तो तुम्हारे आनन्द देने वाले सारे
भंडार व्यर्थ हैं, तुम्हारी सुख देने वाली सम्पत्ति की कोई गणना नहीं है, अर्थात्
वे भी नगण्य हैं । शरीर पर भस्म लगाकर योगी बनने से कोई लाभ नहीं

है, पाँच अग्नियों के मध्य बैठकर तप करना अथवा जल में समाधि लगाना भी निरर्थक है। समुद्र के आर-पार तक का राज्य जीत लेने से भी कोई लाभ नहीं है। हे मूर्ख ! कृष्ण के प्रेम के बिना बार-बार जप करने को, निराहार रहकर तप और सयम करने को तथा हजारों तीर्थों की यात्रा करने को कौन वृक्षता है ? अर्थात् ये सब बेकार है।

विशेष—१. 'कीन्हो नहीं प्यार, नहीं सेयौ दरबार, चित चाह्यौ, न निहारयौ जो मैं नन्द के कुमार को' में कोमल वर्णों से युक्त वृत्त्यनुप्रास है।

२ कृष्ण भक्तों की यह प्रमुख विशेषता है कि वे कृष्ण को छोड़कर अन्य प्रकार की साधनाओं को निरर्थक और आडम्बरपूर्ण मानते हैं। रसखान के प्रस्तुत कवित्त में यही विशेषता परिलक्षित होती है।

पाठान्तर—'कहा तन जोगी ह्वै' और 'कहा सोए बीच नल' के स्थान पर 'कहा महा जोगी ह्वै' और 'कहा सोए बीच जल' पाठ भी मिलते हैं।

कवित्त

कचन के मन्दिरनि दीठि ठहराति नाहि,
सदा दीपमाल लाल-मानिक-उजारे सो।
और प्रभुताई अब कहाँ लौ बखानौ, प्रति,
टारन की भीर भूप टरत न द्वारे सो।
गगाजी में न्हाइ मुक्ताहलहू लुटाइ, वेद,
बीस बार गाइ, ध्यान कीजत सवारे सो।

ऐसे ही भए तौ नर कहा रसखानि जो पै,
चित्त दैन कीनी प्रीति पीतपटवारे सो ॥२२॥

शब्दार्थ—कचन के मन्दिरनि=सोने के महलो पर। दीठि=दृष्टि। लाल मानिक=लाल मोती। प्रतिहारन की भीर=द्वारपालों की भीड़। मुक्ताहलहू=मोतियों को। सवारे सो=शीघ्रता से, प्रातःकाल में। पीतपटवारे सो=कृष्ण से।

अर्थ—कृष्ण की प्रीति के अभाव में दुनिया के सारे वैभव और सारी साधनाएँ निरर्थक हैं, इस भाव को व्यक्त करते हुए रसखान कहते हैं कि हे

मनुष्य ! यदि तुमने चित्त लगाकर कृष्ण से प्रीति नहीं की है तो तुम्हारे सोने के वे महल बेकार हैं जो सदा लाल मोतियों की दीपमालाओं से प्रकाशित रहते हैं और जिन्हे देखते ही दृष्टि चौधिया जाती है। तुम्हारी अधिक प्रभुता का तो क्या वर्णन करूँ, यदि तुम इतने प्रभुत्व सम्पन्न हो गए हो कि अनेक राजा तुम्हारे प्रतिहार बने हुए हैं और उनकी भीड़ कभी भी तुम्हारे द्वार से नहीं हटती तो कृष्ण के प्रेम के अभाव में यह प्रभुता व्यर्थ है। चाहे तुम—गंगाजी में स्नान करके मुक्त हस्त से मोतियों का दान करो, अनेक बार वेदों का पाठ करो और प्रातः काल ध्यानावस्थित हो, किन्तु जब तक तुम कृष्ण से प्रीति नहीं करोगे, तब तक तुम्हारी ये साधनाएँ निष्फल ही रहेंगी।

कहने का भाव यह है कि कृष्ण की भक्ति ही सर्वोपरि और सर्वोच्च भक्ति है।

विशेष—१. 'दीठि ठहराति नाहि' मुहावरे का भावपूर्ण प्रयोग है।

२. इस कवित्त में 'प्रतिहारन' शब्द खडित है, अतः यहाँ पद-भग दोष है।

सवैया

एक सु तीरथ डोलत है इक वार हजार पुरान बके हैं।

एक लगे जप में तप में इक सिद्ध समाधिन में अटके हैं।

चेत जु देखत हौ रसखान सु मूढ महा सिंगरे भटके हैं।

साँचहि वे जिन आपुनपौ यह स्याम गुपाल पै वारि दके हैं ॥२३॥

शब्दार्थ—बके हैं=कहे हैं, कथाएँ सुनाई हैं। चेत=सावधान। सिंगरे=सारे। आपुनपौ=अपनापन, स्वयं को। छके हैं=मस्त हैं।

अर्थ—तीर्थादि बाह्याडम्बरो का खडन और कृष्ण-प्रेम का मडन करते हुए रसखान कहते हैं कि कोई मनुष्य तो तीर्थों की यात्रा करता हुआ घूमता है, कोई हजारों बार पुराणों की कथाओं को सुनाता है, अर्थात् पुराणों का पाठ करता है। कोई जप-तप में लगा हुआ है, कोई सिद्ध बनकर समाधि में अटका हुआ है। रसखान कहते हैं कि यदि सावधान होकर इन्हे देखा जाता है तो यही निष्कर्ष निकलता है कि ये सब महामूर्ख बनकर भटक रहे हैं। सही तो वे मनुष्य हैं जो स्वयं को कृष्ण के लिए अर्पित करके उस समर्पण की मस्ती से

मस्त बने हुए है ।

विशेष १ अनन्यभाव का प्रेम अभिव्यजित है ।

२. 'वक' शब्द का प्रयोग कवि के मन की अतिशय घृणा का सूचक है ।

३. श्री विश्वनाथप्रसाद मिश्र द्वारा सम्पादित 'रसखान-ग्रथावली' में यह सवैया नहीं है ।

सवैया

सुनियै सब की कहिये न कछु रहियै इमि या भव-बागर मै ।

करियै ब्रत-नेम सचाई लिये जिन ते तरियै मन-सागर मै ।

मिलियै सब सो दुरभाव बिना रहिये सतसग उजागर मै ।

रसखानि गुबिन्दाहि यौ भजियै जिमि नागरि को चित गागर मै ॥२४॥

शब्दार्थ—इमि=इस प्रकार । भव-बागर मै=असत्य ससार मे । उजागर=प्रकाश । नागरि=स्त्री । गागर=पानी का बर्तन ।

अर्थ—रसखान सासारिक मनुष्य को उपदेश देते हुए कहते हैं कि हे मनुष्य ! तुम इस असत्य ससार मे इस प्रकार रहो कि सबकी सुनो, पर अपनी बात किसी से भी मत कहो । जो भी ब्रत और नियम ग्रहण करो वे सत्य हो । सत्य ब्रत और नियमों से ही मन का सागर पार किया जा सकता है, अर्थात् मन को अपने वश मे किया जा सकता है; सबसे अच्छी भावना लेकर मिलो और सदैव सतसग के प्रकाश मे रहो, अर्थात् अच्छी सगति मे ही उठो-बैठो और एकाग्रमन से कृष्ण की भक्ति करो तुम्हारा मन कृष्ण की भक्ति मे उसी प्रकार एकाग्रता से लगना चाहिए जिस प्रकार स्त्री का मन अपने पानी के बर्तन मे लगा होता है । (स्त्रियाँ अपने सिर पर जब पानी का बर्तन लेकर चलती हैं तो उसके हाथ नहीं लगाती । वह गिर न जाये, इसलिए उसका सन्तुलन बनाये रखने के लिए वह उसकी ओर एकाग्र मन लगाये रहती हैं) ।

विशेष—१ 'भव-बागर' और 'मन-सागर' मे रूपक अलंकार; 'मिलियै सब सो दुरभाव बिना' मे विनोक्ति अलंकार, 'रसखानि गुबिन्दाहि यौ भजियै जिमि नागरि को चित गागर मै' मे उपमा अलंकार है ।

२. 'जिमि नागरि को चित गागर मे' इस पदांश का एक अर्थ यह भी हो सकता है—

जिस प्रकार पनिहारी का ध्यान सिर पर रखे हुए पानी भरे घटे की ओर होता है। पनिहारी सिर पर जल का घड़ा लिए चलती-फिरती, हाथ हिलाती तथा बातें करती रहती है, पर उसका ध्यान अपने घटे की ओर से विचलित नहीं होता। (इसी प्रकार मनुष्य को समार में रहते हुए भी, उसके नैमित्तिक कार्यों को करते हुए भी, अपना एकाग्र ध्यान कृष्ण-भक्ति की ओर लगाये रखना चाहिए)।

तुलना—‘श्री हरिदास के स्वामी स्यामा कुंजविहारी सो चित्त ज्यो मिर पर दोहनी ।’
—हरिदास

सवैया

है छल की अप्रतीत की मूरति मोद बढ़ावै विनोद कलाम मे ।
हाथ न ऐहें कछु रसखान तू बयो बहकै विष पीवत काम मे ।
है कुच कचन के कलसा न ये आम की गाँठ मढीक की चाम मे ।
वैनी नही मृगनैनिन की ये नसैनी लगी यमराज के घाम मे ॥२५॥

शब्दार्थ—अप्रतीत=विश्वासघात । कलाम=बावय, वचन । काम=काम-वासना । वैनी=चोटी । नसैनी=सीढ़ी ।

अर्थ—नारियों के गोन्दर्य पर मुग्ध होकर कृष्ण-भक्ति को भूल जाने वाले मनुष्यों को चेतावनी देते हुए रसखान कहते हैं कि हे मनुष्यों ! ये सुंदर नारियाँ छल और विश्वासघात की मूर्ति हैं। विनोद के बावय कह-कहकर ये जो आनन्द प्रदान करती हैं, वह आनन्द झूठा है। अतः तुम काम-भावना के वशीभूत होकर तथा पथ-भ्रष्ट होकर बयो विष-पान कर रहे हो, इसने कुछ भी हाथ नहीं लगेगा। इनके उन्नत कुच स्वर्ण-कलश नहीं हैं, वरन् चान में मढी हुई आम की गाँठ हैं। ये सुन्दर नारियों की चोटियाँ नहीं हैं, वरन् नरक को ले जाने वाली सीढ़ियाँ हैं।

विशेष १ शुद्धापन्हति अलकार ।

२. श्री विश्वनाथ प्रसाद मिश्र द्वारा सम्पादित ‘रसखान ग्रन्थावली’ में यह सवैया नहीं है।

मिलन

सवैया

मोर के चन्दन मोर बन्यौ दिन दूलह है अली नद को नंदन ।
श्री वृषभानुसुता दूलही दिन जोरि बनी विधना सुखकदन ॥
आवै कह्यौ न कछू रसखानि ही दोऊ बँधे छवि प्रेम के फदन ।
जाहि विलोके सबै सुख पावत ये ब्रजजीवन है दुखदंदन ॥२६॥

शब्दार्थ—मोर के चंदन=मोर-पखो के चन्दवे । अली=सखी । श्रीवृष-
भानुसुता=राधा । सुखकदन=सुख देने वाली । ब्रजजीवन=कृष्ण ।
दुखददन=दुख दूर करने वाले ।

अर्थ—कोई गोपी अपनी सखी से राधा-कृष्ण के मिलन का वर्णन करती
हुए कहती है कि हे सखि ! मोर-पखों के चन्दवों का मुकुट पहने हुए कृष्ण
दूलह बने हुए है और अत्यन्त सुख देने वाली राधा दूलहिन बनी हुई है ।
रसखान कहते हैं कि उन दोनों की अवस्था का वर्णन नहीं किया जा सकता ।
दोनों प्रेम के बधन में बँधे हुए हैं । जिनको देखकर सभी लोगों को सुख प्राप्त
होता है, वे दुख दूर करने वाले श्री कृष्ण हैं ।

सवैया

मोहिनी मोहन सो रसखानि अचानक भेट भई बन माही ।
जेठ की घाम भई सुखधाम अनद ही अग ही अग समाही ॥
जीवन को फल पायौ भटू रस-वातन केलि सो तोरत नाही ।
कान्ह को हाथ कँधा पर है मुख ऊपर मोर किरीट की छाही ॥२७॥

शब्दार्थ—मोहिनी=राधा । घाम=धूप । सुखधाम=सुख का भण्डार ।

अर्थ—कोई गोपी अपनी सखी से राधा-कृष्ण के मिलन का वर्णन करती
हुई कहती है कि हे सखि ! आज अचानक राधा और कृष्ण की भेट बन के
अन्दर हो गई । उस मिलन में उन्हें जेठ की तपती हुई धूप भी सुख का भण्डार
बन गई । वे आनन्द के कारण अगो मे अगो को छिपाने का प्रयास करने लगे ।
हे सखि ! उन्होंने प्रेम-पूर्ण बातों के द्वारा ही जीवन का फल पा लिया, अर्थात्
उनका जन्म सफल हो गया । वे अपनी क्रीड़ा को अबाध गति से चलाते रहे ।

कृष्ण का हाथ राधा [के कन्धे पर था और उसके मुख पर मोर-मुकुट की छाया थी ।

पाठान्तर—कुछ थोड़े से परिवर्तनों के साथ इस सवैया का यह रूप भी मिलता है—

‘मोहनी मोहन सो रसखान अचानक भेट भई वन माही ।
जेठ को घाम भयौ सुखघाम अनग प्रभजन अग समाही ।
जीवन को फल पायौ भटू रस वातन की लरु तोरत नाही ।
कान्ह के हाथ कँधा पै लसै मुख ऊपर मोर किरीट की छाही ॥

सवैया

लाडली लाल लसै लखि वै अलि कुंजनि क जनि मैं छवि गाढी ।
ऊजरी ज्यौ विजुरी सी जुरी चहुँ गुजरी केलि-कला सम वाढी ।
त्यौ रसखानि न जानि परै सुखिया तिहुँ लोकन की अति वाढी ।
बालक लाल लिये विहर छहरै वर मोरमुखी सिर ठाढी ॥२८॥

शब्दार्थ—लाल=कृष्ण । अलि=सखी । कुंजनि=समूह । ऊजरी=उज्ज्वल ।
सुखमा=शोभा ।

अर्थ—कोई गोपी अपनी सखी से मिलन-लीला का वर्णन करती हुई कहती है कि हे सखी ! राधा और कृष्ण को कुंजों के समूहों में देखकर उन कुंजों की शोभा बहुत अधिक बढ़ गई । राधा के शरीर की उज्ज्वल कांति विजयी की कान्ति के समान मालूम होती थी जिसके चारों ओर घिरी हुई गुर्जरियाँ केलि-कला के समान चमक रही थी । रसखान कहते हैं कि इस प्रकार उस सौन्दर्य का वर्णन अगम्य था क्योंकि उसके कारण तीनों लोकों का सौन्दर्य बहुत अधिक बढ़ गया था । वह कृष्ण गोपियों के लिये हुए उन कुंजों में विहार कर रहे थे और उनके सिर के ऊपर सुन्दर मोरपखों का मुकुट सुशोभित था ।

विशेष—उपमा, वृत्त्यानुप्रास अलंकार ।

बाल-लीला

सवैया

लाल की आज छटी ब्रज लोग अनन्दित नन्द बड्यौ अन्हवावत ।
चाइन चारु वधाइन लै चहुँ ओर कुटुम्ब अघात न यावत ।

नाचत बाल बड़े रसखान छके हित काहू के लाज न आवत ।
तैसोइ मात पिताउ लह्यौ उलह्यौ कुल ही कुलही पहिरावत ॥२९॥
शब्दार्थ—लाल=कृष्ण । छटी=जन्म के छठे दिन का उत्सव । अन्ह-
वावत=स्नान कराते है । चाइन=चाव से । चारु=आनन्दपुर । छके हित=
प्रेम मे मस्त । उलह्यौ=आनन्द । कुल ही=सारा परिवार ही । कुल ही=
एक प्रकार की टोपी ।

अर्थ—कोई गोपी अपनी सखी से कृष्ण की छठी-उत्सव का वर्णन करती
हुई कहती है कि हे सखि ! आज कृष्ण के जन्म के छठे दिन का उत्सव है ।
सारे ब्रज के लोग आनन्द से भरे हुए है । नन्द अत्यन्त आनन्दित होकर कृष्ण
को स्नान करा रहे है । लोग चाव से तथा चारो ओर से आनन्दप्रद बघाइया
लेकर आ रहे हैं । कुटुम्ब मंगल-गीत गाता हुआ तृप्त नहीं हो रहा है ।
इच्चे और बड़े सभी आनन्द-सागर कृष्ण के प्रेम से इतने मस्त होकर नाच
रहे है कि उन्हें किसी प्रकार की लज्जा का अनुभव नहीं हो रहा है । इसी
प्रकार का आनन्द माता यशोदा और पिता नन्द को भी प्राप्त हो रहा है ।
सारा परिवार उन्हें कुलही पहिना रहा है ।

विशेष—१. अन्तिम पक्ति मे यमक अलकार ।

२. यह सवैया श्री विश्वनाथप्रसाद मिश्र द्वारा सम्पादित
'रसखान-ग्रन्थावली' मे नहीं है ।

सुलना—'आजु भोर तमचुर के दोल ।

गोकुल मे आनन्द होत है, मंगल-धुनि महराने टोल ।

फूले फिरत नन्द अति सुख भयी, हरपि मगावत फूल-तमोल ।

फूली फिरति जसोदा तन-मन, उवटि कान्ह अन्हवाइ अमोल ।'

—सूरदास

सवैया

'ता' जसुदा कह्यो धेनु की ओट ढिंढोरत ताहि फिरै हरि भूलै ।

हूँढन कूँ पग चारि घलै मचलै रज माँहि विथूरि दुकूलै ।

हेरि हँसे रसखान तबै उर भाल तै टारि कै बार लटूलै ।

सो छवि देखि अनन्दन नन्दजू अंगन अग समात न कूलै ॥३०॥

शब्दार्थ—‘ता’ जसुदा कह्यो घेनु की ओट=यशोदा ने कृष्ण को खिलाते समत गाय की ओट में होकर ‘ता’ शब्द कहा। ढिंढोरत ताहि=यशोदा को ढूँढते हैं। रज माँहि विथूरि दुकूलै=अपने वस्त्रों को धूल से लथपथ कर लेते हैं। उर भाल तें=मस्तक के बीच से। वार लूटलै=लम्बे-लम्बे वाल।

अर्थ—कृष्ण की वाल-लीला का वर्णन करती हुई कोई गोपी अपनी सखी से कहती है कि हे सखी ! कृष्ण को खिलाने के लिए यशोदा ने गाय की ओट में होकर ‘ता’ शब्द कहा जिसे सुनकर कृष्ण अपनी और बातों को भूलकर उन्हे ढूँढते हैं। वे उन्हे ढूँढने के लिए कुछ ही पग चलते हैं, किन्तु यशोदा को न पाकर वे मचल जाते हैं और पृथ्वी पर लोट-लोटकर अपने वस्त्रों को धूल से लथपथ कर लेते हैं। तब यशोदा उनके पास आती हैं। उन्हे देखकर कृष्ण हँसने लगते हैं और यशोदा उनके मस्तक पर पड़े हुए लम्बे-लम्बे वालों को हटाकर उनका मुँह चूम लेती हैं। इस शोभा को देखकर नन्द इतने प्रसन्न होते हैं कि उनकी प्रसन्नता उनके अंगों में नहीं समा पाती।

विशेष—१. वाल-लीला का अत्यन्त स्वाभाविक वर्णन है।

२. अन्तिम पंक्ति में यमक अलंकार है।

३. श्री विश्वनाथ मिश्र द्वारा सम्पादित ‘रसखान-ग्रन्थावली’ में यह सवैया नहीं है।

तुलना—‘गैया की सुओट ह्वै ललैया बिलुकैया दै दै,
जसोमति मैया जब कन्हैया सो ‘ता’ कहै।’

—अज्ञात

सवैया—

आजु गई हुती भोर ही ही रसखान रई वटि नन्द के भौनहि।

वाकौ जियौ जुग लाख करोर जसोमति को सुख जात कह्यौ नहि।

तेल लगाग लगाइ कै अँजन भौहे वनाइ वनाइ डिंगै नहि।

डाँलि हमेलनि हार निहारत वारत ज्यौ चुचकारत छौनहि ॥३१॥

शब्दार्थ—रई=अनुरक्त हो गई। भौनहि=भवन में। जुग=युग।

अँजन=काजल। डिठौनहि=डिठौने को; अपने पुत्र को नजर से बचाने के लिए माताएँ उनके मुख पर काजल का काला दाग लगा देती हैं, जिसे डिठौना

कहते हैं । छौनहिं=पुत्र को, कृष्ण को ।

अर्थ—कोई गोपी अपनी सखी से कृष्ण के सौन्दर्य का वर्णन करती हुई कहती है कि हे सखि ! मैं आज ही प्रातःकाल नन्द के उस भवन में गई थी जहाँ रस के सागर कृष्ण थे । मैं उन्हें देखते ही उनमें अनुरक्त हो गई । उन जैसा पुत्र पाकर यशोदा जी को जो सुख मिला है, उसका वर्णन नहीं किया जा सकता । मैं तो भगवान् ने प्रार्थना करती हूँ कि उनका पुत्र लाख करोड़ युगों तक जीवित रहे । यशोदा जी ने उसके सिर पर तेल लगाकर और आँखों में काजल लगाकर तथा उसकी भौहों को सँवार कर उसके मुख पर डिठौना लगा दिया । उसके गले में हमेल और हार डालकर यशोदा जी उनके सौन्दर्य को निहारती रही, उस पर स्वयं को न्यौछावर करती रही और उसे चूमती रही ।

विशेष—‘डालि हमेलनि हार निहारत वारत ज्यो चुचकारत छौनहिं’ के दोनों पदों में यमक अलंकार है ।

सवैया—

धूरि भरे अति सोभित श्यामजू तैसी बनी सिर सुन्दर चोटी ।

खेलत खात फिरै अगना पग पैजनी बाजति पीरी कछोटी ।

वा छवि को रसखानि बिलोकत वारत काम कला निज कोटी ।

काग के भाग बडे सजनी हरि-हाथ सो लै गयौ माखन-रोटी ॥३२॥

शब्दार्थ—धूरि भरे=धूल से सने हुए । पीरी=पीली । वारत=न्यौछावर करती है । काम=कामदेव । कला=सुन्दरता । कोटी=कोटि, करोड़ो ।

अर्थ—कोई गोपी अपनी सखी से कृष्ण की सुन्दरता का वर्णन करती हुई कहती है कि धूल से सने हुए शरीर वाले श्री कृष्ण अत्यन्त शोभायमान थे । ऐसी ही शोभा से युक्त उनके सिर की सुन्दर चोटी बनी हुई थी । वे खेलते हुए और माखन-रोटी खाते हुए अपने आगन में घूम रहे थे । उनके पैरों की पैजनी बज रही थी । वे पीली लगोटी पहने हुए थे । उनकी उस समय की शोभा को देखकर कामदेव भी अपनी करोड़ों सुन्दरताओं को उस पर न्यौछावर कर रहा था । हे सखि ! उस कौवे का बहुत बड़ा सौभाग्य है

है जो कृष्ण के हाथ से माखन-रोटी भपटकर उड़ गया ।

विशेष—१. कृष्ण की बाल-लीला का सुन्दर एवं स्वाभाविक वर्णन है ।

२. 'बा छवि की रसखानि विलोकत वारत काम कला निज कोटी' में व्यतिरेक अलंकार है ।

पाठान्तर—चतुर्थ पक्ति का यह पाठ भी मिलता है

काग के भाग कहा कहिए हरि हाथ सो ले गयी माखन-रोटी ।

तुलना— 'सोभित कर नवनीत लिए ।

घुटुरनि चलत रेनु तन मण्डित, मुख दवि लेप किए ।

चारु कपोल, लोल लोचन, गोरोचन-तिलक दिए ।

लट-लटकनि मनु मत्त मधुप-गन मादक मधुहि पिए ।

कटुला-कठ, ब्रज केहरि-नख, राजत रुचिर हिए ।

धन्य सूर एको पल इहि सुख, का सत कल्प जिए ॥

—सूरदास

रूप-माधुरी

सवैया

मोतिन माल बनी नट के, लटकी लटवा लट घूँघरवारी ।

अँग ही अँग जराव लसै अरु सीस लसै पगिया जरतारी ॥

पूरव पुन्यनि ते रसखानि सु मोहिनी मूरति आनि निहारी ।

चार्यौ दिसानि की लै छवि आनि, कैं भाँके भरोखे मै बाँके बिहारी । ३३

शब्दार्थ—लट=केश-राशि । जराव=जड़ाऊ आभूषण । जरतारी=जरीवाली ।

अर्थ—कोई गोपी अपनी सखी से कृष्ण की शोभा का वर्णन करती हुई कहती है कि उस नटवर कृष्ण के गले में मोतियों की माला पड़ी हुई है । घूँघरदार केश-राशि लटक रही है । अँग के प्रत्येक भाग में जड़ाऊ आभूषण और मिर पर जरी वाली पगड़ी सुशोभित है । रसखान कहते हैं कि पूर्व जन्म के पुण्यों के कारण ही इस मोहिनी मूर्ति के दर्शन हुए हैं । चारों दिशाओं की शोभा लेकर बाँके कृष्ण आकर तभी भरोखे में भाँकने लगे ।

विशेष—कृष्ण की रूप-माधुरी का परम्परागत वर्णन है ।

पाठान्तर—इस सवैया का यह रूप भी मिलता है—

‘मोतिन माल हिये लटकै लटकै लट चौलट घूँघरवारी ।
अंगनि अग जराव कसे अह सीस लसै पगिमा जरतारी ।
पूरव पूरे ही पुन्यनि ते रसखान ये मूरति नैन निहारी ।
चारौ दिसा के महा अघ हाँके जो भाँके भरोकनि वाँके विहारी ॥

सवैया

आवत है बन ते मनमोहन गाइन सग लसै ब्रज-ग्वाला ।
वेनु बजावत गावत गीत अभीत इतै करिगौ कछु ख्याला ॥
हेरत टेरि ककै चहुँ ओर तै भाँकि भरोखन ते ब्रज-वाला ।

देखि सु आनन को रसखानि तज्यौ सव द्यौस को ताप-कसाला ॥३४॥

शब्दार्थ—गाइन=गायो के । लसै=सुशोभित हो रहे हैं । अभीत=निडर होकर । ख्याला=खेल । द्यौस=दिन । ताप-कसाला=थकान ।

अर्थ—श्रीकृष्ण गाये चराकर शाम को बन से ब्रज लौट रहे हैं । गायों के साथ ब्रज के ग्वाले सुशोभित हो रहे हैं । बशी बजाते हुए गोचारण के गीत गाते हुए निडर होकर कृष्ण इधर कुछ खेल-सा कर गये हैं । उन्हें देखने के लिए चारो ओर से ब्रजवालाये आकर भरोखो से भाँकने लगी हैं । रसखान कवि कहते हैं कि उनके मुख की शोभा को देखकर सारी ब्रज-वनिताएँ अपनी दिन-भर की थकान को भूल गई, अर्थात् उनके जीवन में नवीन चेतना और स्फूर्ति आ गई ।

पाठान्तर—‘आवत है बन ते मनमोहन गाइन सग लसै ब्रज-ग्वाला ।

वेनु बजावत गावत गीत अभीत इतै करिगौ कछु ख्याला ।

हेरत टेर थकी चहुँ ओर तै भाँकि भरोकनि सो ब्रजवाला ।

देखत आनन को रसखान तज्यौ सव द्यौस को ताप कसाला ॥’

कवित्त

गोरज विराजै भाल लहलही बनमाल,

आगे गैयाँ पाँचे ग्वाल गावै मृदु तानि री ।

तैसी धुनि वाँसुरी की मधुर मधुर जैसी,

वक चितवनि मन्द मन्द मुसकानि री ।

कदम विटप के निकट तटनी के तट,
 अटा चढि चाटि पीत पट फहरानि री ।
 रस वरसावै तन तपनि बुझावै नैन,
 प्राननि रिभावै वह आवै रसयानि री ॥३५॥

शब्दार्थ—लहलही=सुन्दर । विटप=वृक्ष । तटनी=नदी, यमुना नदी ।
 रस=आनन्द । तन-तपनि=शरीर के दुख ।

अर्थ—कोई गोपी अपनी सखी से कृष्ण के सौन्दर्य का वर्णन करती हुई कहती है कि उसके मस्तक पर गोरज तथा हृदय पर सुन्दर बनमाला सुशोभित है । उसके आगे आगे गाये हैं, पीछे-पीछे ग्वाले हैं । गायी और ग्वालों के मध्य में वह मनोहर बांसुरी बजा रहा है । जितनी सुन्दर बासुरी की ध्वनि है, उतनी ही सुन्दर उसकी वक्र चितवन और मन्द हँसी है । वह यमुना नदी के तट पर कदम्ब वृक्ष के पास है । हे सखि ! यदि तू उसके पीले वस्त्रों के फहराने को देखना चाहती है तो अटारी पर चढ़कर देख ले । आनन्द की वर्षा करता हुआ, शरीर के दुखों को नष्ट करता हुआ तथा नेत्र और प्राणों का मोहित करता हुआ वह आनन्द-सागर कृष्ण आ रहा है ।

सवेया

अति सुन्दर री ब्रजराजकुमार महामृदु बोलनि बोलत है ।
 लखि नैन की कोर कटाछ चलाइ केँ लाज की गाँठन खोलत है ॥
 सुनि री सजनी अलवेलो लला वह कुजनि कुजनि डोलत है ।
 रसखानि लखे मन बूडि गयी मधि रूप के सिधु कलोलत है ॥३६॥

शब्दार्थ—महामृदु=अत्यन्त मधुर । बूडि गयी=डूब गया । मधि=मध्य में, अन्दर । कलोलत है=किल्लोले करता है ।

अर्थ—कोई गोपी अपनी सखी से कृष्ण की शोभा का वर्णन करती हुई कहती है कि हे सखि ! कृष्ण अत्यन्त सुन्दर है और वे अत्यन्त मधुर वाणी बोलते हैं । वे मुझे देखकर अपने नेत्रों की कोरों से कटाक्ष चलाकर लाज को दूर कर देते हैं, अर्थात् उनसे इतना प्रेम हो जाता है कि लोक-लाज की कोई चिन्ता नहीं रहती । हे सजनी ! सुनो, वह विलक्षण कृष्ण प्रत्येक कुंज में घूमता रहता है । उस आनन्द-सागर कृष्ण को देखकर मेरा मन उसके रूप-सागर में डूबकर किल्लोले करता है ।

विशेष—रूपक अलंकार ।

पाठान्तर—इस सवैया की दूसरी पक्ति का यह रूप भी मिलता है—

‘वह नैन की कोर कटाछन लाय कै लाज की ग्रथनि खोलत है ।’

तुलना—‘चित्त चप जाय परे सोभा के समुद्र मॉझ,

रही न सभार कछु और भई पल मे ।

मन मेरो गरुवो गयौ री बूडि मै न पायौ,

नैन मेरे हरुवे तिरत रूप जल मे ।’

गग कवि

सवैया

तै न लख्यौ जव कुंजनि ते बनिकै निकस्यौ भटक्यौ मटक्यौ री ।

सोहत कैसो हरा टटक्यौ अठ कैसो किरीट लसै लटक्यौ री ॥

को रसखानि फिरै भटक्यौ हटक्यौ ब्रज लोग फिरै भटक्यौ री ।

रूप सबै हरि वा नट को हियरे अटक्यौ अटक्यौ अटक्यौ री ॥३७॥

शब्दार्थ—बनिकै=सुन्दर रूप धारण करके । हरा=हार । किरीट=मुकुट । भटक्यौ=रूप से भकभोरा हुआ । हटक्यौ=मना करने पर भी ।

अर्थ—कोई गोपी अपनी सखी से कृष्ण के सौन्दर्य का वर्णन करती हुई कहती है कि हे सखि ! तब कृष्ण भटकता हुआ और मटकता हुआ सुन्दर रूप धारण करके कुंज में से निकाला था, तब तूने उसे नहीं देखा । उसके हृदय पर पड़ा हुआ हार कितना शोभायमान था और सिर पर लटकता हुआ मुकुट कितना सुन्दर दिखाई पड़ रहा था । रसखान कहते हैं कि ब्रजवासियों के मना करने पर भी वह रूप से भकभोरा हुआ कृष्ण भटकता हुआ फिर रहा था । उस नटवर कृष्ण का सारा सौन्दर्य मेरे हृदय में अटक गया है, अर्थात् उसके सौन्दर्य का गम्भीर प्रभाव मेरे हृदय पर पड़ा है ।

विशेष—अन्तिम पक्ति में ‘अटक्यौ’ शब्द की तीन बार आवृत्ति प्रभाव-शीलता में सहायक है । वीप्सा अलंकार ।

पाठान्तर—इस सवैया की अन्तिम पक्ति का यह रूप भी मिलता है—

‘रूप सबै हरि वा नट को हियरे फटक्यौ भटक्यौ अटक्यौ री ।’

सवैया

नैननि वक विसाल के वाननि भेलि राकै अम कीन नवेली ।
 वेधत है हिय तीछन कोर सुमार गिरी तिय कोटिक हेली ॥
 छोटे नही छिनहूँ रसखानि सु लागी फिरै द्रुम सो जनु वेली ।
 रोरि परी छवि की ब्रजमडल कुंडल गंडनि कुतल केली ॥३८॥

शब्दार्थ नवेली=नई, युवती । सुमार=भयकर मार से । कोटिक=करोड़ो । हेली=सखी । द्रुम=वृक्ष । रोरि=कोलाहल । कुंडल गंडनि कुतल केली=कुंडल से सुगोभित गडस्थल पर केशो की क्रीड़ा ।

अर्थ—कोई गोपी अपनी सखी से कहती है कि हे सखि ! ऐसी कोई भी युवती नहीं है जो कृष्ण के वक्र एवं विशाल नेत्र नयी वाणो की चोट को सह सके । ये वाण अपनी तीक्ष्ण नोको से हृदय को वेधते हैं और करोड़ो नारियाँ इनकी भयकर मार से गिर गई हैं । आनन्द-सागर कृष्ण फिर उन नारियों से क्षण भर के लिए भी नहीं छोड़े जाते और वे उनसे इन्ही प्रकार चिपट जाती हैं जिस प्रकार वृक्ष से वेल लिपट जाती है । सारे ब्रज में कृष्ण की गोभा तथा उनके कुंडल से सुगोभित गडस्थल पर केशो की क्रीड़ा का कोलाहल मचा हुआ है ।

विशेष—हृपक और उत्प्रेक्षा अलंकार ।

सवैया

अलवेली विलोकनि बोलनि श्री अलवेलियै लोल निहारन की ।
 अलवेली सी डोलनि गंडनि पै छवि सो मिली कुंडल वारन की ॥
 भटू टाढी लख्यो छवि कैसे कहाँ रसखानि गहे द्रुम डारन की ।
 हिय मैं जिय मैं मुसकानि रसी गति को सिखवै निरवारन की ॥३९॥

शब्दार्थ—अलवेली=विलक्षण । विलोकनि=दृष्टि । लोल=चंचल । गंडनि पै=गडस्थलो पर । वारन=हाथी । द्रुम=वृक्ष । निरवारन की=छूटने की ।

अर्थ—कोई गोपी अपनी सखी से कृष्ण की गोभा का वर्णन करती हुई कहती है कि हे सखि ! उसकी दृष्टि और वाणी विलक्षण है; उसकी चंचल दृष्टि भी विलक्षण-सी है । उसके कपोलो पर कुंडलो की छवि हाथी के गड-

स्थल पर पड़ी हुई छवि की भाँति विलक्षण है । हे सखि ! मैंने उसको (कृष्ण को) पेड़ की डालियाँ पकड़ कर खड़े हुए देखा था । उस समय उसकी जो शोभा थी, उसका वर्णन नहीं किया जा सकता । उसकी रस से भरी हुई मुसकान मेरे हृदय में और मन में भर गई है । उसको छूटने की मुझे कौन शिक्षा दे सकती है ? अर्थात् किसी के कहने से भी वह नहीं छूट सकती ।

पाठान्तर—‘अलवेली विलोकनि बोलनि है अलवेली सु लोलनि हारन की ।
अलवेली सी डोलनि गडनि पै छवि कु डल सो मिलि बारन की ।
भट्ट ठाढो लख्यौ छवि कैसे कहौ रसखान गहै द्रुम डारन की ।
हिय में जिय में मुसकानि रमी गति को सिखवै निरवारन की ॥’

सवैया

बाँकी बड़ी आँखियाँ बडरारे कपोलनि बोलनि कौ कल बानी ।
सुन्दर रासि सुधानिधि सो मुख मूरति रंग सुधारस-सानी ॥
ऐसी नवेली ने देखे कहूँ ब्रजराज लला अति ही सुखदानी ।
डोलति है बन बीथिन मैं रसखानि मनोहर रूप-लुभानी ॥ ४० ॥

शब्दार्थ—बडरारे=बड़े, विशाल । कल=सुन्दर । सुधानिधि=चद्रमा ।
सुधारस-सानी=अमृत से युक्त ।

अर्थ—कोई गोपी अपनी सखी से किसी अन्य नवीन गोपी का, जो कृष्ण से प्रेम करती है, वर्णन करती हुई कहती है कि हे सखि । जब से उस नवीन गोपी ने अत्यन्त सुख देने वाले, वक्र तथा विशाल नेत्र वाले, पुष्ट कपोल वाले मधुर भाषण करने वाले, सुन्दर हँसी वाले, चद्रमा के समान मुख वाले और अमृत जैसे प्रेम से युक्त शरीर वाले कृष्ण को देखा है, तब से वह उनकी खोज में वनों में और गलियों में घूमती फिर रही है तथा उनके मनोहर रूप पर लुब्ध हो गये हैं ।

विशेष—द्वितीय पक्ति में उपमा अलंकार ।

सवैया

दृग इने खिंचे रहै कानन लौ लट आनन पै लहराइ रही ।
छकि छैल छवील छटा छहराइ के कौतुक कोटि दिखाइ रही ॥
भुकि भूमि भ्रमाकनि भूमि अमी चरि चाँदनी चन्द चुराइ रही ।
मन भाइ रही रसखानि महा छवि मोहन की तरसाइ रही ॥ ४१ ॥

शब्दार्थ—कानन ली=कानो तक । आनन=मुख । कौतुक=खेल ।

अर्थ—कोई गोपी अपनी मन्वी से कृष्ण की गोभा का वर्णन करती हुई कहती है कि उनके दोनों नेत्र कानो तक खिंचे रहते हैं ; अर्थात् उनके नेत्र विशाल हैं , उनके केश मुख पर लहराते रहते हैं उनकी मन्दर गोभा की काँति बिखर कर करोड़ों प्रकार के खेल दिखा रही है । उनकी गोभा झुककर, घूमकर और, अमृत को चूमकर चन्द्रमा की चाँदनी को चुरा रही है । रसखान कहते हैं कि कृष्ण की महा छवि मनमोहक है, इसीलिए वह मन को तरसा रही है ।

विशेष —द्वितीय और तृतीय पक्ति में छेकानुप्रास तथा वृत्तानुप्रास ।

सवैया

लाल लमै पगिमा सब के सबके पट कोटि सुगवनि भीने ।

अगनि अग सजे सब ही रसग्वानि अनेक जराउ नवीने ॥

मुकता गलमाल लमै सब के सब ग्वार कुवार सिंगार सो कीने ।

पै सिंगरे ब्रज के हरि ही हरि ही कै हरै हियरा हरि लीने ॥ ४२ ॥

शब्दार्थ—कोटि=करोड़ । जराउ=आभूषण ।

अर्थ—कोई गोपी अपनी सखी से कृष्ण की छवि का वर्णन करती हुई कहती है कि हे सखि ! सारे ग्वालों के सिर पर ताल पगड़ी सुशोभित है, सभी के वस्त्र करोड़ों प्रकार की सुगन्धियों से सुगन्धित हो रहे हैं । रसखान कहते हैं कि सभी के अग अनेक प्रकार के आभूषणों से सुशोभित हैं । सभी के गलों में मोतियों की मालाये सुशोभित हैं, सारे युवक ग्वाल शृंगार किये हुए हैं, किन्तु श्रीकृष्ण सारे ब्रज के सिंह हैं । अर्थात् सभी में श्रेष्ठ हैं । उन्होंने अपने हृदय पर पड़ी हुई लहलहाती वनमाला से ही सबके हृदय अपने वश में कर लिए ।

विशेष—अंतिम पक्ति में यमक अलंकार ।

सवैया

वह घेरनि धेनु अवेर सवेरनि फेरनि लाल लकुटनि की ।

वह तीछन चच्छु कटाछन की छवि मोरनि भौह भृकुटनि की ॥

वह लाल की चाल चुभी चित मै रसखानि संगीत उघुट्टनि की ।

वह पीतपटवकनि की चटकानि लटवकनि मोर मुकुट्टनि की ॥ ४३ ॥

शब्दार्थ—घेरनि=घेरना । अवेर=देर से । सवेरनि=जल्दी से ।
घेरनि=घुमाना । ललुकट्टनि की=लाठी का । चच्छु=चक्षु, आँख । पटवकनि
की=वस्त्रो की ।

अर्थ—कोई गोपी अपनी सखी से कृष्णा की शोभा का वर्णन करती हुई
कहती है कि कृष्णा का देर से या जल्दी से गायो को घेरना, अपनी लाठी को
घुमाना, आँखों के द्वारा तीक्ष्ण कटाक्ष करना, मौह और भृकुटियों की मोड़ने
की शोभा, संगीत की ताने बजाना, पीले वस्त्रों की फडफडाहट और मोर-मुकुट
का लटकना, ने कृष्ण की सभी चालें मेरे मन में घर कर गई हैं ।

विशेष—अनुभावों की सुन्दर योजना है ।

सद्वैया

साँझ समै जिहि देखति ही तिहि पेखन कौ मन मौ ललकै री ।

ऊँची अटान चढी ब्रजबाम सुलाज सनेह दुरै उभकै री ॥

गोधन धूरि की धूँधरि मै तिनकी छवि यौ रसखानि तकै री

पावक के गिरि ते बुधि मानौ चुँवा-लपटी लपटै ललकै री ॥ ४४ ॥

शब्दार्थ—साँझ समै=सन्ध्या के समय में । पेखन कौ=देखने के लिए ।
ललकै=इच्छा करना । धूँधरि मै=धुँधलेपन में ।

अर्थ—कोई गोपी अपनी सखी से कृष्ण के रूप का वर्णन करती हुई
कहती है कि हे सखि ! कृष्ण के रूप की शोभा इतनी आकर्षक है कि सन्ध्या
के समय उसे ब्रज को लौटते समय देखकर मन उसे देखने के लिए इस प्रकार
प्रबल इच्छा करने लगता है कि ब्रज की युवतियाँ लज्जा और प्रेम के कारण
ऊँची अटालियों पर चढ़कर उभक-उभक कर इसे देखने लगती हैं । रसखान
कहते हैं कि गौओं के सुरों से उठी हुई धूलि से धुँधलेपन में कृष्ण की छवि
इस प्रकार दिखाई देती है, मानो आग के पहाड़ से बुझकर धुँए के बादल चढ़े
आ रहे हों ।

विशेष—उत्प्रेक्षा अलंकार ।

सर्वैया

देखिक राग महावन को इक गोपवधू कट्यो एक दधू पर ।
 देवति ही सखि मार मे गोप कुमार बने जितने व्रज-भू पर ॥
 तीछे निटारि तग्यो रसत्वानि गिगार करी किन कोऊ बल पर ।
 फेरि फिर अँखियाँ ठहरानि है करे रिनम्वर वारे के ऊपर ॥ ५४ ॥

शब्दार्थ—मार=मर, काम देव । तीछे=तिरछी दृष्टि ।

अर्थ—कोई गोपी अपनी मयी मे कृष्ण के द्वारा रनाई गई रासलीला का वर्णन करती हुई कहती है कि हे मयि । कृष्ण ने महावन मे रासलीला रची थी । जितने भी व्रज के गोप है वे सब उन प्रकार से मजे हुए थे कि वे कामदेव की भाँति दिवाई पड़ते थे । मैंने तिरछी दृष्टि से उनका देखा, वे कुछ न कुछ शृंगार किये हुए थे, अथवा विविध प्रकार के शृंगारों से मुग्धजित थे । उन्हें देखने के बाद फिर दृष्टि पीताम्बर धारीकृष्ण पर जाती थी । वे भी रत्न सुशोभित हो रहे थे कि आँखें बार-बार उन्हीं पर जाकर ठहरती थी ।

सर्वैया

दमकै रवि कुंठल दामिनी मे धुन्वा जिमि गोरज गजत है ।
 मुकताहल-वारन गोपन के नु नी बूँदन ती छवि छाजत है ॥
 व्रजवाल नदी उमही रग्याननि मयकवधू-दुति लाजत है ।
 यह आवन श्री मनभावन की वरपा जिमि ग्राज विगजत है ॥ ५५ ॥

शब्दार्थ—रवि-कुंठलसूर्य जैसी तेज चमक वाले कुंठल । दामिनी=विजली ।
 धुरवा=वादलों के स्तम्भ । गोरज=गऊयों के पैरों से उठी हुई धूलि ।
 मुकताहल=मोती । मयकवधू=वीर बहूटी ।

अर्थ—कोई गोपी अपनी मयी मे कृष्ण की गोभा का वर्णन कर रही है । वह कहती है कि कृष्ण का व्रज को लीटना वर्णाकृतु के समान है । इसी वर्णन का सागरूपक द्वारा इस तरह प्रस्तुत किया गया है । कृष्ण के बानों से पड़े हुए सूर्य-जैसी चमक वाले कुंठल विजली के समान चमकते हैं । गोयों के पैरों से उठी हुई धूलि वादलों के उमड़ने के समान प्रतीत होती है । गोपों पर वे मोतियाँ को बिखेर रहे हैं, जो वर्षाकाल में पड़ती हुई बूँदों के समान मालूम होते हैं । कृष्ण के दर्शन के लिए उमड़ी हुई व्रजवालाओं के समूह मानों वर्षा काल में उमड़ी हुई नदी है । जिस प्रकार वादलों में आगमन से चन्द्रमा की

ज्योति धूमिल पड़ जाती है, उसी प्रकार कृष्ण के सौन्दर्य के आगे बीरब्रह्मटिय की शोभा मद पड़ गई है। अतः मन को सुन्दर लगने वाले कृष्ण का ब्रज में आना ऐसा लग रहा है, मानो वर्षाकृतु आगई है।

विशेष—सागरूपक अलंकार।

सवैया

मोर किरीट नवीन लसै मकराकृत कुण्डल लोल की डोरनि।

ज्यो रसखान घने घन मे दमकै बिनि दामिनि चाप के छोरनि।

मारि है जीव तो जीव बलाय विलोकि बलाय लौ नन की कोरनि।

कौन सुभाय सो आवत स्याम बजावत बैनु नचावत मौरनि ॥४७॥

शब्दार्थ—किरीट=मुकुट। लसै=सुशोभित है। मकराकृत कुण्डल=मकर की आकृति के समान कुण्डल। लोल=चंचल। दमकै विवि दामिनि चाप के छोरनि=इन्द्रधनुष के दोनों सिरो पर दो बिजलियाँ दमक रही हैं। मारि है जीव तो जीव बलामा=यदि प्राण मार भी दिये जाये तो भी जीवन मुश्किल है; अर्थात् मरकर भी इस शोभा से छुटकारा नहीं मिल सकता। सुभाय=शोभा, सजधज।

अर्थ—कोई गोपी अपनी सखी से कृष्ण की शोभा का वर्णन करती हुई कहती है कि हे सखी! कृष्ण के सिर पर मोर-पखो का मुकुट सुशोभित है। कानों के कुण्डल, जो मकर की आकृति के समान हैं, अपनी डोरियों पर भूलते हुए चंचल बन रहे हैं। वे ऐसे प्रतीत होते हैं जैसे इन्द्रधनुष के दोनों सिरो पर दो बिजलियाँ दमक रही हैं। कृष्ण के कटाक्षों की जो शोभा है, वह इतनी घनीभूत है कि उससे मर कर भी पीछा नहीं छूट सकता। वह देखो, वह कृष्ण बाँसुरी बजाता हुआ और अपने मोर-मुकुट को नचाता हुआ कितनी सजधज के साथ आ रहा है।

विशेष—यह छवि-वर्णन परम्परागत है।

तुलना—‘चन्दन खौरि ललाट विराजत मोरपखा सिर ऊपर सोहै।

कुण्डल लोल कपोल लसै मुरली के बजावत मो मन मोहै।

मोहि विलोकि विलोकि हँसै चितचोर बड़े-बड़े नैनन जोहै।

पूछति गोवधू भगवन्त या साँवरो सो जमुना-तट को है ॥

—भगवन्त

सवैया

दोउ कानन कु डल मोरपखा सिर सोहे दुकूल नयो चटको ।
मनिहार गरे सुकुमार धरे नट-भेस अरे पिय को टटको ॥
सुभ काछनी वैजनी पावन आवन मैं लग भटको ।
वह सुन्दर को रसखानि अनी जु गलीन में आइ अव अटको ॥४८॥

शब्दार्थ—कानन=कानो में । मोरपखा=मोर-मुकुट । दुकूल=वस्त्र
चटको=चटकीला । मनिहार=मणियों का हार । टटको=नवीन वेश ।
सुभ=सुन्दर । पावन=पैरो में । आमन में=आने में ।

अर्थ—कोई गोपी अपनी सखी से कृष्ण के सौन्दर्य का वर्णन करती हुई
कहती है कि हे सखि ! वह दोनों कानों में कुंडल पहने हुए है । सिर पर
मोर-पखो का मुकुट सुशोभित है । नवीन चटकीला वस्त्र धारण किये हुए
है । उनके गले में मणियों का हार है । वह प्रियतम नवीन तथा सुन्दर नट-
वेश धारण किये हुए है । उसकी कमर में सुन्दर काछनी है, पैरो में वजने वाली
पैजनी हैं जिसके कारण उसे चलने में कोई बाधा नहीं होती । हे सखि !
वह सुन्दरता और आनन्द का सागर कृष्ण अब इन गलियों में आकर ठहर
गया है ।

विशेष—सौन्दर्य-वर्णन परम्परागत है ।

पाठान्तर—इस सवैया की तृतीय पक्ति का यह रूप भी मिलता है—

‘सुभ काछनी वैजनी पै अनी पावन आवत मैं लग भटको’

सवैया

काटे लटे की लटी लकुटी दुपटी सुफटी सोउ आवे कँवाही ।
भावते भेष सवै रसखान न जानिए क्यो अंखियाँ ललचाही ।
तू कछु जानत या छवि को यह कौन है साँवरिया वन माही ।
जोरत नैन मरोरत भाँह निहोरत सैन अमेठत वाँही ॥ ४९ ॥

शब्दार्थ—काटे लटे की=किसी वृक्ष की डाल से काटी हुई । लटी=छोटी-
सी । भावते भेष=मनोहर वेश-भूषा । जोरत नैन=आँखें मिलाता है । मरोरत
भाँह=भाँहो को मटकाता है । निहोरत सैन=नेत्रों के सकेतो से अनुनय-विनय
करता है । अमेठत वाँही=वाँहे हिला-हिलाकर चलता है ।

अर्थ—कृष्ण की छवि को देखकर कोई गोपी अपनी सखी से कहती है कि
हे सखि ! वह किसी वृक्ष की डाल से काटी हुई छोटी-सी छड़ी अपने हाथ में

लिए हुए हैं। उसका दुपट्टा सुन्दर है जो उसके आधे ही कंधे पर पडा हुआ है। वह मनोहर वेश-भूषा धारण किये हुए है। न जाने क्यों मेरी आँखें उसकी ओर ललचा कर आकृष्ट हो गई हैं। हे सखि ! क्या तुम जानती हो कि ऐसी शोभा से मुक्त, वह साँवरा युवक जो वन में रहता है, कौन है ? वह हर किसी युवती से आँखें मिलाता है, भौंहों को मटकाता है, नेत्रों के सकेतों से अनुनय-विनय करता है और अपने हाथों को हिला-हिलाकर इतराता हुआ चलता है।

विशेष—१. अंतिम पंक्ति में विविध भावों की सुन्दर योजना है।

२. यह सवैया श्री विश्वनाथ प्रसाद मिश्र द्वारा सम्पादित रसखान-ग्रंथावली में नहीं है।

सवैया

कैसो मनोहर वानक मोहन सोहन सुन्दर काम ते आली।

जाहि विलोकत लाज तजी कुल छूटी है नैननि की चल चाली ॥

अधरा मुस्कान तरंग लसै रसखानि सुहाइ महाछवि छाली।

कुंज गली मधि मोहन सोहन देख्यौ सखी वह रूप-रसाली ॥ ५० ॥

शब्दार्थ—वानक=वेश। काम=कामदेव। आली=सखी। चल=चंचल। अधरा=होठों पर।

अर्थ—कोई गोपी अपनी सखी से कृष्ण के सौन्दर्य का वर्णन करती हुई कहती है कि हे सखि ! कृष्ण का वेश अत्यन्त सुन्दर है। अपनी सुन्दरता में वह कामदेव की सुन्दरता से भी बढ-चढकर है। उसको देखकर मैंने लाज त्याग दी है और नेत्रों की चंचल गति के साथ ही कुल छूट गया है। उनके होठों पर मुस्कान की लहरें सुशोभित हैं। वह आनन्द सागर कृष्ण अत्यधिक शोभा से सुशोभित हो रहे हैं। हे सखि ! मैंने उस सुन्दर कृष्ण को कुंज गली के अन्दर देखा था।

दोहा

मोहनि छवि रसखानि लखि, अब दृग अपने नाहि'।

ऐचे आवत धनुष से, छूटे सर से जाहि' ॥५१॥

शब्दार्थ—दृग=नेत्र। अपने नाहि=अपने वश में नहीं रहे। ऐचे=सीचने पर। सर=वाण।

अर्थ—रसखान कहते हैं कि जब से कृष्ण की शोभा को देखा है, तब से

ये मेरे नेत्र मेरे वश में नहीं रहे हैं । ये कृष्ण-छवि पर से बड़ी कठिनतासे धनुष की भाँति खिंचते हैं, पर बाण की तरह तेजी से फिर वहीं पहुँच जाते हैं ।

विशेष—उपमा अलंकार ।

तुलना—‘हरि रहीम ऐसी करी, ज्यो कमान सर पूर ।

खैचि आपनी ओर को, डारि दियो पुनि दूर ॥

—रहीम

दोहा

या छवि पै रसखानि अब वारी कोटि मनोज ।

जाकी उपमा कविन नहिँ पाई रहे सु खोज ॥५२॥

शब्दार्थ—वारी=न्यौछावर करता हूँ । कोटि=करोड़ो । मनोज=कामदेव सु=भली प्रकार से, तन्मय होकर ।

अर्थ—रसखानि कृष्ण की छवि का वर्णन करते हुए कहते हैं कि मैं कृष्ण की इस शोभा पर करोड़ो कामदेव न्यौछावर करता हूँ । कृष्ण की छवि की उपमा अभी तक कवियों को नहीं मिली है और वे अब भी पूर्ण तन्मय होकर उसके लिए उचित उपमा की खोज कर रहे हैं ।

विशेष—अतिशयोक्ति अलंकार ।

प्रेमलीला

कवित्त

कदम करीर तरि पूछनि अघोर गोपी

आनन रखोर गरो खरोई भरीहो सो ।

चोर हो हमारो प्रेम-चौतरा में हार्यौ

गराविन ते निकसि भाज्यो है करि लजैरी सो ।

ऐसे रूप ऐसो भेष हमै हूँ दिखैयौ, देखि

देखत ही रसखानि नेननि चुभैरौ सो ।

मुकुट भुकोहो हास हियरा हरीहो कटि,

फेटा पिपरोहो अगरग साँवरौहो सो ॥ ५३ ॥

शब्दार्थ—तीर=किनारा गराविनि=वधन । पिपरोहो=पीला ।

अर्थ—कोई व्याकुल गोपी यमुना के किनारों से, कदम्ब तथा करील के वृक्षों से पूछती है कि तुम्हारे साथ रहने वाला वह कृष्ण कहाँ चला गया जिसका मुख मलीन है ग्रीवा अत्यन्त भरी हुई है, अर्थात् पुष्ट है। वह प्रेम रूपी खेल में हारा हुआ हमारा चोर है जो लज्जित-सा होकर हमारे बधन (फदे) से निकल कर भाग गया है। अत्यन्त सुन्दर रूप और केश को हमें दिखाने वाला, जिसे देखते उसका सौन्दर्य आँखों में गड गया, वह कृष्ण कहाँ है? उसका मुकुट भुका हुआ है, उसके हृदय पर सुन्दर हार पड़ा हुआ है, वह अपनी कमर में पीला वस्त्र बाँधे हुए है और श्याम रंग का है।

विशेष—परोक्ष रीति से कृष्ण के सौन्दर्य का भावपूर्ण वर्णन है।

सवैया

भौह भरी सुथरी बरुनी अति ही अधरानि रच्यो रंग रातो ।
कुँडल लोल कपोल महाछवि कु जन तै निकस्यो मुसकातो ॥
छूटि गयो रसखानि लखै उर भूलि गई तन की सुधि सातो ।
फूटि गयो सिर तै दधि भाजन टूटिगौ नेन न लाज को नातो ॥ ५४ ॥

शब्दार्थ—सुथरी=सुन्दर। बरुनी=पलके। रंग रातो=लाल रंग।
लोल=चंचल। साहो=सातो इन्द्रियाँ (पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ, मन और बुद्धि)

अर्थ—कृष्ण से भेट हो जाने पर गोपी की क्या दशा हुई, उसी का वह वर्णन अपनी सखी से करती हुई कहती है कि कृष्ण के भौहे भरी हुई थी, पलके सुन्दर थी और अधर लाल रंग से रगे हुए-से जान पड़ते थे, अर्थात् वे लालिमा से भरे हुए थे। उसके कानों में कुँडल थे जिनकी चंचलता (हिलने-डुलने) के कारण कपोलों पर भारी शोभा व्याप्त थी। ऐसा सौन्दर्य धारी कृष्ण कु जो मे से मुसकराता हुआ निकला। उस आनन्द-सागर कृष्ण को देखते ही मेरा हृदय जोर-जोर से धडकने लगा, मेरी सातो इन्द्रियाँ (पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ, मन और बुद्धि) अपनी सुधि-बुद्धि भूल गई। मैं इतनी वेसुध-सी हो गई कि मुझे अपने सिर पर रखे हुए दही के मटके का भी ध्यान नहीं रहा और वह सिर से पृथ्वी पर गिर कर फूट गया तथा आँखों से लाज का सम्बन्ध समाप्त हो गया, अर्थात् मैं नारी-सुलभ लज्जा को त्यागकर बहुत देर तक उसे निर्निमेष दृष्टि से देखती रही।

सवेया

जात हुती जमुना जल की मनमोहन घेरि लयी मग आइ कै ।
 मोद भर्यौ लपटाइ लयी पट धूँघट ढारि दयो चित चाइ कै ॥
 और कहा रसखानि कहीं मुख चूमत घातन वात बनाइ कै ।
 कैसे निभै कुल-कानि रही हिये साँवरी मूरति की छवि छाइ कै ॥५५॥

शब्दार्थ—जात हुती=जा रही थी ।

अर्थ—काई गोपी अपनी सखी से पनघट-लीला का वर्णन करती हुई कह रही है कि हे सखि ! मैं यमुना में पानी भरने के लिए जा रही थी कि कृष्ण ने आकर मेरा रास्ता रोक लिया । प्रसन्न होकर उसने मुझे अपने शरीर से लिपटा लिया और जान-बूझकर उसने मेरे मुख पर पड़ा हुआ धूँघट हटा दिया । हे सखि ! मैं और तो क्या कहूँ, वह बातें बनाकर और अवसर निकाल कर मेरा मुख चूमने लगा । अब वंश की मर्यादा का पालन किस प्रकार हो सकता है, क्योंकि मेरे हृदय में कृष्ण की साँवरी मूर्ति की शोभा बस गई है ।

सवेया

जा दिन ते निरख्यौ नदनंदन कानि तजी कर बंधन टूट्यौ ।
 चारु विलोकिन कीनी सुमार सम्हार गई मन मोर ने लूट्यौ ॥
 सागर को सलिला जिमि धावे न रोकी रुकै कुल को पुल टूट्यौ ।
 मत्त भयौ मन सग फिरे रसखानि सरूप सुधारस घूट्यौ ॥ ५६ ॥

शब्दार्थ—निरख्यौ=देखा । कानि=मर्यादा । चारु—सुन्दर । विलो-
 कनि=दृष्टि । सुमार=गहरी चोट । सम्हार=सुधि । मार=स्मर, कामदेव ।
 सलिला=नदी । सरूप=सौन्दर्य ।

अर्थ—कोई गोपी अपनी सखी से कृष्ण के सौन्दर्य का वर्णन करती हुई कहती है कि हे सखि ! जिस दिन से मैंने कृष्ण को देखा है, उसी दिन से मर्यादा त्याग दी है, घर का बंधन छूट गया है । उसकी सुन्दर दृष्टि ने मेरे हृदय पर गहरी चोट की है जिसके कारण मैं अपनी सुधि खो बैठी हूँ और कामदेव ने मेरे मन को लूट लिया है । जिस प्रकार नदी अपना पुल तोड़कर सागर की ओर दौड़ती है और रोके से नहीं रुकती, उसी प्रकार मेरे कुल की मर्यादा का पुल टूट गया है और मेरा मन प्रवाह गति से कृष्ण की ओर दौड़ रहा है । मेरा मन पागल हो गया है और यह आनन्द-सागर कृष्ण के साथ-साथ फिरता है क्योंकि इसने उनके सौन्दर्य की अमृत के आनन्द को पी लिया है ।

विशेष—दृष्टांत और रूपक अलंकार ।

सवैया

सुधि होत विदा नर नारिन की दुति दीहि परे बहियाँ पर की ।

रसखान विलोकत गु ज छरानि तजै कुल कानि दुहँ घर की ।

सहरात हियो फहरात हवाँ चितवै कहरानि पितवर की ।

यह कौन खरौ इतरात गहै बलि की बहियाँ छहियाँ वर की ॥५७॥

शब्दार्थ—बहियाँ पर की=भुजा की । गु ज छरानि=गु ज की माला को ।

दुहँ घर की=दोनों घरों की—पिता तथा श्वसुर के घर की । सहराता हियो=हृदय शीतल होता है, अपार आनन्द मिलता है । फहरात हवाँ=शरीर रोमांचित होता है । बलि की=वलराम की । छहियाँ बट की=बट वृक्ष की छाया ।

अर्थ—कोई गोपी अपनी सखी से कृष्ण के रूप का वर्णन करती हुई कहती है कि जिसकी भुजाओं की शोभा पर दृष्टि पड़ते ही नर-नारियों की सुधि नष्ट हो जाती है । जिनके गले में पड़ी हुई गुँजों की माला को देखते ही नारियाँ अपने पिता और श्वसुर के घरों की मर्यादा को भूलकर उन्हें प्रेम करने लगती हैं । उनके पीले वस्त्र की फहरान को देखकर हृदय को अपार आनन्द मिलता है और सारा शरीर रोमांचित हो जाता है । हे सखि ! बताओ तो, बट-वृक्ष की छाया में वलराम की बाँह पकड़कर इतराता हुआ वह कौन खड़ा है ?

विशेष—१. इस सवैया में अनुभावों की योजना है ।

२. श्री विश्वनाथ प्रसाद मिश्र द्वारा सम्पादित 'रसखान-ग्रन्थावली' में यह सवैया नहीं है ।

सवैया

ए सजनी मनमोहन नागर आगर दौर करी मन माही ।

सास के त्रास उसास न आवत कैसे सखी ब्रजवास वसाही ।

माखी भई मधु की तरुनी बरुनीन के बान बिधी कित जाही ।

वीथिन डोलति है रसखानि रहै निज मन्दिर में पल नाही ॥ ५८ ॥

शब्दार्थ—आगर=निधि । त्रास=भय । तरुनी=युवती । बरुनीन=पलके यहाँ वक्र-दृष्टि से तात्पर्य है । वीथिन=गलियों । मन्दिर=घर ।

अर्थ—कोई गोपी अपनी सखी से कृष्ण की प्रेम-लीला का वर्णन करती हुई कहती है कि हे सजनी ! कृष्ण अत्यन्त चतुर हैं । उन्होंने मेरे मन में दौड़ कर

ली है, अर्थात् मेरे मन में समा गये हैं। सामु के डर से मुझे तो साँस भी नहीं आते। इस विपन्न स्थिति में, तुम्हीं बताओ, मैं ब्रज में किस प्रकार रह सकती हूँ ? अर्थात् ब्रज में रहना मेरे लिए एक विकट समस्या बन गया है। ब्रज की सारी युवतियाँ गहद की मक्खियाँ बनी हुई हैं, क्योंकि जिस प्रकार शहद की मक्खी अपने ही बनाये हुए शहद में फँस जाती है, उसी प्रकार सारी ब्रज-युवतियाँ अपने ही किये हुए प्रेम में फँसी हुई हैं। वे सब कृष्ण की वक्र-दृष्टि के बाण से विधी हुई हैं। उन्हें पता नहीं कि वे किधर जाये, अर्थात् कृष्ण के प्रेम में पड़कर वे किर्त्तव्य-विमूढ़ बन गई हैं। वह आनन्द-सागर कृष्ण पलभर के लिए भी अपने घर नहीं ठहरता, बल्कि सदैव ब्रज की गलियों में घूमता रहता है।

सवैया

सखि गोधन गावत हो इक ग्वार लख्यो वहि डार गहे वट की ।
अलकावलि राजति भाल विसाल लसै वनमाल हिये टटकी ।
जब ते वह तानि लगी रसखानि निवारै को या मग हौ भटकी ।
लटकी लट मो दृग-मीननि सो बनसी जियवा नट की अटकी ॥ ५६ ॥

शब्दाथ — इक ग्वार = एक ग्वाला, कृष्ण । वट = वृक्ष । अलकावलि = केशराशि । निवारै = रोकना । बनसी = बसी, मछली को पकड़ने का काँटा ।

अर्थ — कोई गोपी अपनी सखि से कृष्ण के सौन्दर्य का तथा तज्जन्य प्रभाव का वर्णन करती हुई कहती है कि हे सखि ! गोचारण का गीत गाते हुए मैंने कृष्ण को उसी वृक्ष की डाल पकड़कर खड़े हुए देखा था, जिस वृक्ष की डाल को वे प्रायः पकड़ा करते थे। उनके विशाल मस्तक पर केशरिया तथा हृदय पर वनमालः सुशोभित थी। जब से उस आनन्द-सागर कृष्ण की बसी की तान मैंने सुनी है, तब से कोई भी मुझे उसके प्रभाव से नहीं रोक सका है और मैं प्रत्येक मार्ग पर उसकी खोज के लिए भटकती फिर रही हूँ। उस नटनागर कृष्ण की लटकती हुई लटे मेरी आँख रूपी मछलियों के लिए मछलियों पकड़ने वाला काँटा बन गई है।

विशेष — अतिम पक्ति में रूपक अलंकार ।

सवैया

गाइ सुहाइ न या पै कहूँ, न वहाँ यह मेरी गरी निकर्यौ है ।
धीरसमीर कलिन्दी के तीर खर्यौ रटे आजु री डीठि पर्यौ है ॥

जा रसखानि विलोकत ही सहसा ढरि राँग सो आँग ढर्यौ है ।

गाइन घेरत हेरत सो पट फेरत ढेरत आनि पर्यौ है ॥६०॥

शब्दार्थ—धीरसमीर=वृन्दावन के एक कुज का नाम । कलिन्दी=यमुना । तीर=तट । डीठि पर्यौ है=दिखाई दिया है । ढारि राँग सो आँग ढर्यौ है=ढले हुए राँग की भाँति शरीर ढल गया है, अर्थात् शरीर बहुत ही शिथिल हो गया है । आनि पर्यौ है=हृदय में बस गया है ।

अर्थ—कृष्ण की सुन्दरता और उसके प्रति अपना आकर्षण व्यक्त करती हुई कोई कोई गोपी अपनी सखी से कहती है कि हे सखि ! मैंने कभी कृष्ण पर अपनी गाय का दूध भी नहीं निकलवाया, न कभी वह मेरी गली से होकर ही निकला है जिसके कारण इससे मेरा पहला परिचय हो । मुझे तो वहाँ आज ही यमुना के तट पर धीरसमीर कुज में खड़ा हुआ दिखाई दिया है । आनन्द के सागर उस कृष्ण को देखते ही प्रेमाकर्षण के कारण मेरा सारा शरीर अत्यन्त शिथिल हो गया है । गायों को घेरता हुआ, मेरी ओर देखता हुआ, अपने वस्त्रों को संभालता हुआ और पुकारता हुआ, अपनी इन रमणीय मुद्राओं के कारण वह मेरे हृदय में बस गया है ।

विशेष—१. प्रेमाकर्षण का वर्णन स्त्री-सुलभ रीति से हुआ है ।

२. अन्तिम पक्तियों में अनेक मुद्राओं के संकेत से घटना साकार हो गई है ।

३. 'ढरि राँग सो आँग ढर्यौ है' में उपमा अलंकार है ।

सवैया

खजन मीन सरोजन को मृग को मद गजन दीरघ नैना ।

क जन ते निकस्यौ मुसकात सु पान पर्यौ मुख अमृत वैना ॥

जाइ रटे मन प्रान बिलोचन कानन में रुचि मानत चैना ।

रसखानि कर्यौ घर मो हिय में निसिवासर एक पलौ निकसे ना ॥६१॥

शब्दार्थ—सरोजन को=कमल को । मद=धमण्ड । गजन=चूर-चूर करना । कानन में=वन में । निसिवासर=रात-दिन ।

अर्थ—एक गोपी की कृष्ण से भेट हो गई है । उसी का वर्णन करती हुई वह अपनी सखी से कह रही है कि कृष्ण के विशाल नेत्र खजन, मीन, कमल और मृग के धमण्ड को भी चूर-चूर करने वाले हैं । ऐसे सुन्दर नेत्रों वाला कृष्ण कुंजों से मुसकराता हुआ बाहर आया । उसके अधरो पर मुख में

लगे हुए पान की लाली थी और उसकी वाणी अमृत के समान सुख देने वाली थी। उसे देखते ही मेरा मन और मेरे प्राण मेरे वश में नहीं रहे। ये उसी वन में बसने में ही अपना आनन्द मानते हैं जहाँ कृष्ण से भेट हुई थी। रसखान कवि कहते हैं कि वह गोपी अपनी सखी से कहने लगी कि कृष्ण ने तो मेरे हृदय में अपना घर ही कर लिया है और रात-दिन एक पल के लिए भी वह बाहर नहीं निकलता।

विशेष—तृतीय पक्ति में विरोधाभास अलंकार है।

दोहा

मन लीनो प्यारे चित्तै, पै छटाँक नहि देत ।

यहै कहा पाटी पढी, दल को पीछो लेत ॥ ६२ ॥

शब्दार्थ—मन=हृदय, चालीस सेर। छटाँक=कटाक्ष, सेर का सोलहवाँ भाग। पाटी चढ़ि=सीखा। दल को पीछो=ले, लेना।

अर्थ—कृष्ण की चतुराई का वर्णन करते हुए रसखान कहते हैं कि हे कृष्ण तुम अपनी छवि दिखाकर मन को तो ले लेते हो, पर उसके बदले कटाक्ष नहीं देते, अर्थात् तुम दूसरो को ही अपने ऊपर रिझाते हो, स्वयं नहीं रीझते। तुमने यह कहाँ से सीखा है कि केवल लेना ही जानते हो, देना नहीं।

द्वितीय अर्थ—प्रथम पक्ति का द्वितीय अर्थ यह होगा—

हे प्यारे ! तुम वहका कर चालीस सेर तो ले लेते हो, पर उसके बदले में सेर का सोलहवाँ भाग भी नहीं देते।

विशेष—श्लेष अलंकार।

तुलना—१ 'यह कौन धौ पाटी पढे हौ लला मन लेहु पै देत छटाँक नहीं।

—घनानन्द

२ 'साहु कहावत फिरत है, चित सरसाये चाव।

तेरे नैन दिवालिया, मन ले देत न पाव ॥

—रसनिधि

दोहा

मो मन मानिक ले गयौ, चिते चोर नँदनद ।

अव वेमन मै क्या करूँ, परी फेर के फन्द ॥ ६३ ॥

शब्दार्थ—वेमन=मन रहित, उदास। फेर=दुख। फंद=वधन।

अर्थ—कोई गोपी कृष्ण के प्रति अपने प्रेम का वर्णन अपनी सखी से करती हुई कहती है कि हे सखि ! मेरे मन रूपी मोती को चित्तचोर कृष्ण चुरा कर ले गया है । अब मैं उदास हूँ । मैं तो वियोग दुख के बन्धन में बंध गई हूँ ।

विशेष—अनुप्रास और रूपक अलंकार ।

दोहा

नैन दलालनि चौहटे, मन मानिक पिय हाथ ।

रसखाँ ढोल बजाइके, बेच्यौ हिय जिय साथ ॥ ६४ ॥

शब्दार्थ—दलालनि=दलालो ने । चौहाटे=चौक में, बाजार में ।

अर्थ—कोई गोपी अपनी सखी से कृष्ण के प्रति अपने प्रेम का वर्णन करती हुई कहती है कि इन नेत्र-रूपी दलालो ने मेरे हृदय को बीच बाजार में बेच दिया, कृष्ण ने मेरे प्राणों को अपने वश में कर लिया । इस प्रकार मैंने ढोल बजाकर (प्रकट रूप से) अपने मन और प्राणों को बेच दिया है ।

विशेष—१. रूपक अलंकार ।

२. द्वितीय पंक्ति में मुहावरे का भावपूर्ण प्रयोग ।

सोरठा

प्रीतम नन्दकिशोर, जा दिन ते नेननि लग्यौ ।

मन पावन चित चोर, पलक ओट नहिं सहि सकौ ॥ ६५ ॥

शब्दार्थ—जादिन ते नेननि लग्यौ=जिस दिन से देखा है । पलक ओट=निमिष भर के लिए भी ।

अर्थ—कोई गोपी अपने प्रेम को अपनी सखी से प्रकट करती हुई कह रही है कि जिस दिन से मुझे प्रियतम कृष्ण दिखाई दिये हैं, उसी दिन से उस मन-भावन और चित्तचोर के वियोग को मैं एक पल के लिए भी सहन नहीं कर पाती ।

बंक बिलोचन

सवैया

मैन मनोहर नैन बडे सखि सैननि ही मनु मेरो हर्यौ है ।

गेह को काज तज्यौ रसखानि हिये ब्रजराजकुमार अर्यौ है ॥

आसन-वासन सास के आसन पाने न सासन रग पर्यौ है ।

नेननि बक बिसाल की जोहनि मत्त महा मन मत्त कर्यौ है ॥ ६६ ॥

शब्दार्थ—मैन मनोहर=कामदेव के समान सुन्दर । आसन-वासन=आशाओं की वासना से । आसन=डर । सासन=साँसों में । रंग=प्रेम । मत्त=उन्मत्त, पागल ।

अर्थ—कोई गोपी अपनी सखी से कृष्ण के प्रति अपने प्रेम का वर्णन करती हुई कहती है कि हे सखि ! कृष्ण के नेत्र कामदेव के नेत्रों के समान सुन्दर और विशाल हैं । उन नेत्रों के सकेत से ही उसने मेरे मन को हर लिया है । रसखान कहते हैं कि तभी से कृष्ण हमारे हृदय में बस गया है और उसके प्रेम के कारण मैंने घर का काम करना भी छोड़ दिया है । आशाओं की वासनाएँ साँसों के भय को भी नहीं मानती, क्योंकि मेरी साँसों में कृष्ण का प्रेम भरा हुआ है । कृष्ण ने अपने विशाल नेत्रों की तिरछी दृष्टि से मेरे मन को अत्यन्त पागल बना दिया है ।

विशेष—तृतीय पंक्ति में अनुप्रास अलंकार ।

सवैया

भटू सुन्दर स्याम सिरोमनि मोहन जोहन मैं चित चोरत है ।

अवलोकन वक्र विलोचन मैं ब्रजवालन के दृग जोरत है ॥

रसखानि महावत रूप सलोने को मारग ते मन मोरत है ।

ग्रह काज समाज सब कुल लाज लला ब्रजराज को तोरत है ॥६७॥

शब्दार्थ—भटू=सखी । सिरोमनि=शिरोमणि । दृग जोरत है=आँखें मिलाता है, प्रेम करता है । सलोने को=सौन्दर्य का ।

अर्थ—कोई गोपी अपनी सखी से कृष्ण के प्रति अपने प्रेम का वर्णन करती हुई कहती है कि हे सखि ! सुन्दर और शिरोमणि कृष्ण मन को मोहने वाला है और देखते ही मन को चुरा लेता है । वह अपने वक्र नेत्रों से देखते ही ब्रजवालाओं के नेत्रों को अपने नेत्रों से जोड़ लेता है । रसखान कहते हैं कि उसका सौन्दर्य रूपी महावत हमारे मन रूपी हाथी को अपने मार्ग से मोड़ देता है । वह ब्रजराज सभी ग्रह-कार्यों को, समाज को और कुल की लाज को तोड़ देता है ।

विशेष—रूपक अलंकार ।

पाठान्तर—इस सवैया की तृतीय पंक्ति का यह रूप भी मिलता है—

‘रसखान महावर रूप सलोने को मारग ते मन मोरत है ।’

सवैया

आली लला घन सो अति सुन्दर तैसो लसै पियरो उपरैना ।
गठनि पै छलकै छवि कु डल मडित कुन्तल रूप की सैना ॥
दीरघ बक विलोकनि की अवलोकनि चोरति चित्त को चैना ।
मो रसखानि रट्यौ चित्त री मुसकाइ कहे अघरामृत बैना ॥६८॥

शब्दार्थ—पियरो=पीला । उपरैना=वस्त्र । कु तल=केश, माला ।
सैना=सेना ।

अर्थ—कोई गोपी अपनी सखी से कृष्ण की शोभा का वर्णन करती हुई कहती है कि हे सखि ! वे श्याम कृष्ण बादल से सुन्दर है । उसी प्रकार उनके शरीर पर पीला वस्त्र सुशोभित है । उनके कपोलो पर कु डलो की शोभा झलक रही है । सुन्दर केश रूप का समूह हैं; अथवा रूप की सेना सुन्दर भाले लिए हुए है । वे अपने दीर्घ नेत्रों की वक्र दृष्टि से देखते ही मन के चैन को चुरा लेते है । हे सखि ! उस आनंद-सागर कण्ण ने मुस्कराकर तथा अपने झोठों से अमृत जैसे शब्दों को बोलकर मेरे मन को हर किया है ।

सवैया

वह नद को साँवरो छैल अली अव तो अति ही इतरान लग्यौ ।
नित घाटन बाटन कुंजन मै मोहि देखत ही नियरान लग्यौ ।
रसखानि बखान कहा करियै तकि सैननि सो मुसकान लग्यौ ।
तिरछी बरछी सम मारत है दृग-वान कमान सुकान लग्यौ ॥६९॥

शब्दार्थ—छैला=छैला । अली=सखी । नियरान=समीप । सुकान लग्यौ=कानों तक खीचकर ।

अर्थ—कोई गोपी अपनी सखी से कृष्ण की आदतो का वर्णन करती हुई कहती है कि हे सखि ! वह नद-पुत्र छैला कृष्ण अव तो बहुत अधिक इतराने लगा है । वह प्रतिदिन घाटों पर, मार्गों पर और कुंजों में मुझे देखकर मेरे समीप आने लगा है, अर्थात् जहाँ भी मुझे देखता है, मेरे पास चला आता है । रसखान कहते है कि मैं कहाँ तक उसकी आदतो का वर्णन करूँ । वह मेरी ओर देखकर मुस्कराने लगता है । वह टेढ़ी दृष्टि को मुझ पर बरछी की भाँति मारना है और नेत्र-वाणों को कमान पर कानों तक खीच कर चलाता है ।

विशेष—उपमा, रूपक अलंकार ।

सवैया

मोहन रूप छकी वन डोलति घूमति री तजि लाज विचारें ।
 वंक विलोकनि नैन विसाल सु दम्पति कोर कटाछन मारै ॥
 र गभरी मुख की मुस्कान लखे सखी कौन जु देह सम्हारै ।
 ज्यौ अरविन्द हिमत-करी भकझोरि कै तोरि मरोरि कै डारै ॥७०॥

शब्दार्थ—वक विलोकनि=तिरछी दृष्टि । रंगभरी=प्रेम भरी । अर-
 विन्द=कमल । हिमत-करी=हेमन्त रूपी हाथी ।

अर्थ—कोई गोपी अपनी सखी से कृष्ण के रूप का तथा तज्जन्य प्रभाव का वर्णन करती हुई कहती है कि हे सखि ! मैं कृष्ण के सौन्दर्य से उन्मत्त होकर तथा लोक-लाज को छोड़कर वन-वन घूमती फिर रही हूँ । कृष्ण की तिरछी दृष्टि, विशाल नेत्रों की कोर सभी को अपने कटाक्षों से मार देती है । हे सखि ! कृष्ण के मुख की प्रेमभरी मुस्कान को देखकर कौन ऐसी युवती है जो अपने-आप को संभाल सकती है, अर्थात् सभी उस मुस्कान के वशीभूत हो जाती है और इस प्रकार व्यथित हो जाती है जैसे हेमन्त रूपी हाथी ने सकल को भटके से तोड़कर तथा मरोड़कर डाल दिया हो ।

विशेष—रूपक और अर्थान्तरन्यास अलंकार है ।

पाठान्तर—इस सवैया का यह रूप भी मिलता है—

‘मोहन रूप छकी वन डोलति घूमि गिरी तजि लाज विचारै ।
 वंक विलोकनि नैन विसाल सु दीपति कोर कटाछन मारै ।
 रंग भरे मुख की मुस्कानि लखै सखि को निज देह संभारै ।
 ज्यो अरविन्दहि मत्त करी भकभोरि कै तोरि कै मोहि कै डारै ॥’

सवैया

आज गई ब्रजराज के मंदिर सुन्दर स्याम विलोक्यौ री माई ।
 सोइ उठ्यौ पलिका कल कचन बैठ्यौ महा मनहार कन्हाई ॥
 ए सजनी मुसकात लख्यौ रसखानि विलोकनि वक सुहाई ।
 मैं तव ते कुलकानि तजी सुवजी ब्रजमडल माँह दुहाई ॥७१॥

शब्दार्थ—मंदिर=घर । पलिका=पलग । कचन=सोना । मनहार=
 मन को हरने वाला । विलोकनि वक=वक्र दृष्टि ।

अर्थ—कोई गोपी अपनी सखी से कृष्ण की सुन्दरता का वर्णन करती हुई कहती है कि हे सखि ! आज मैं कृष्ण के घर गई थी, वहाँ पर मैंने सुन्दर

कृष्ण को देखा । वह मन को हरने वाला कृष्ण अपने सुन्दर सोने के पलंग पर सोकर बैठा था । हे सजनी ! उस आनन्द-सागर कृष्ण को मुस्काराता हुआ तथा उसकी सुन्दर वक्र-दृष्टि को देखकर मैंने तभी से कुल की मर्यादा को छोड़ दिया है, अर्थात् कृष्ण के प्रति अनुरक्त हो गई हूँ । इसी कारण ब्रजमण्डल में दुहाई मच रही है, अर्थात् कृष्ण सभी के मन का हरन करने वाले है, उससे बचने के लिए सारी ब्रज-युवतियाँ रक्षा के लिए पुकार रही है ।

पाठान्तर—इस सवैया की चौथी पक्ति इस प्रकार भी मिलती है—

‘मैं तृन ली कुल कानि तजी सुवर्जा ब्रजमण्डल माँहि दुहाई ।’

सवैया

मोहन के मन की सब जानति जोहन के मोहि मग लियौ मन ।
मोहन सुन्दर आनन चन्द ते कुजनि देख्यौ मैं स्याम सिरोमन ॥
ता दिन ते मेरे नैननि लाज तजी कुलकानि की डोलति हो बन ।
कौसी करौ रसखानि लगी जक री पकरी पिय के हित को पन ॥७२॥

शब्दार्थ—जोहन के मग-दृष्टि के द्वारा । सिरोमन=शिरोमणि । जक=धुन । हित को=प्रेम का । पन=प्रण ।

अर्थ—कोई गोपी अपनी सखी से कह रही है कि हे सखि ! कृष्ण के मन की सारी बातें मैं जानती हूँ । उसने दृष्टि के द्वारा मेरा मन अपने वश में कर लिया है । मैंने उस मोहने वाले और चन्द्रमा से सुन्दर मुख वाले श्याम-शिरोमणि को जब से कुज में देखा है, तभी से मेरे नेत्रों ने लोक-लज्जा और कुल की मर्यादा छोड़ दी है और मैं उनकी खोज में बन-बन घूम रही हूँ । रसखान कहते हैं कि हे सखि ! अब मैं क्या करूँ मुझे उनसे मिलने की धुन लगी हुई है और मैं उस प्रियतम के प्रेम के प्रण में बँधी हुई हूँ ।

विशेष—द्वितीय पक्ति में प्रतीप अलकार ।

सवैया

लोक की लाज तज्यौ तबहिं जब देख्यौ सखी ब्रजचन्द सलौने ।
खजन मीन सरोजन की छवि गजन नैन लला दिन होनो ॥
हेर सम्हारि सकै रसखानि सो कौन तिया वह रूप सुठोनो ।
भौहन कमान सो जोहन को सर बेधत प्राननि नन्द को छोनो ॥७३॥

शब्दार्थ—सलौनो=सुन्दर । सरोज=कमलो । गजन=खडित ।

हेर = देखकर । सुठोनो = सुन्दर । जोहन = देखना । छोनी = पुत्र ।

अर्थ—कोई गोपी अपनी सखी से कृष्ण के रूप का तथा उसके प्रति अपने आकर्षण का वर्णन करती हुई कहती है कि हे सखि ! जब से मैंने सुन्दर कृष्ण को देखा है, तभी से मैंने लोकलाज त्याग दी है, अर्थात् निर्भय होकर उसके प्रेम में डूब गई हूँ । कृष्ण के दिन-दिन शोभा धारण करने वाले नेत्र ऐसे सुन्दर हैं कि वे अपनी सुन्दरता के कारण खजन, मछली और कमलों की शोभा को भी खडित कर देते हैं । ब्रज में ऐसी कौन-सी स्त्री है जो उसकी शोभा देखकर स्वयं को सम्भाल सके, अर्थात् उससे प्रेम न करने लगे ? उसकी भौह कमान के समान है, चितवन बाण के समान हैं । भौह-रूपी कमान पर चितवन-रूपी बाण चढ़ाकर वह नन्द-पुत्र कृष्ण सभी के प्राणों को बँध देता है ।

विशेष—अन्तिम पदित में रूपक अलंकार है ।

मुस्कान माधुरी

सवैया

वा मुख की मुस्कानि भटू आँखियानि ते नेकु टरै नहि टारी ।

जो पलकै पल लागति है पल ही पल माँझ पुकारै पुकारी ॥

दूसरी ओर ते नेकु चितै इन नैनन नेम गह्यौ वजमारी ॥

प्रेम की वानि कि जोग कलानि गही रसखानि विचार विचारी ॥७४॥

शब्दार्थ—भटू = सखी । वजमारी = कठोर ।

अर्थ—कोई गोपी अपनी सखी से कृष्ण के प्रति अपने प्रेम का वर्णन करती हुई कहती है कि हे सखि ! कृष्ण के मुख की मुस्कान मेरी आँखों से हटाने पर भी नहीं हटती, अर्थात् हर समय मुझे वह मुस्कान याद आती रहती है । यदि मेरी पलके क्षणभर के लिए लग जाती है, तो वह पल ही पल में पुकारों को पुकारने लगती है । दूसरी मुसीबत यह है कि इन आँखों ने कठोर नियम धारण कर लिया है । रसखान कहते हैं कि सोचने-समझने पर भी यह पता नहीं लगता कि यह प्रेम की आदत है अथवा भोग-विद्या ।

विशेष—सदेह अलंकार ।

सवैया

कातिग क्वार के प्रात ही प्रात सरोज किते विकसात निहारे ।

डीठि परे रतनागर के दरके बहु दाड़िम विम्ब विचारे ॥

लाल सु जीव जिते रसखानि ते रगनि तोलनि मोलनि भारे ।

राधिका श्रीमुरलीधर की मधुरी मुस्कानि के ऊपर बारे ॥७५॥

शब्दार्थ—कातिग=कार्तिक । सरोज=कमल । विकसात=खिलते हुए ।
रतनागर=रत्नों के भण्डार । दरके=फटे हुए ।

अर्थ—कोई गोपी अपनी सखी से श्रीकृष्ण और राधा की मुस्कान का वर्णन करती हुई कहती है कि हे सखि ! मैंने कार्तिक और ववार मास के प्रातःकाल में कितने ही खिलते हुए कमलों को देखा है । अनेक रत्नों के भण्डार देखे हैं तथा फटे हुए अनेक अनारों के बिम्बों पर भी विचार किया है, पर राधा और कृष्ण की मुस्कान की शोभा के आगे ये नगण्य ही सिद्ध हुए हैं । रसखान कहते हैं कि इस भूमंडल पर जितने भी प्राणी हैं उनसे कृष्ण के प्रेम की तोल और मूल्य भारी ही है । ये सब राधा और कृष्ण की मधुर मुस्कान के ऊपर मैं न्यौछावर करती हूँ ।

विशेष—तृतीय पक्ति में जीव का अर्थ बधूक भी किया जा सकता है ।

सवैया

बक बिलोचन है दुख-मोचन दीरघ रोचन रंग भरे है ।

धूमत बारुनी पान किये जिमि भूमत आनन रूप ढरे है ॥

गडनि पै भलकै छवि-कुडल नागरि-नैन बिलोकि भरे है ।

बालनि के रसखानि हरे मन ईषद हास के पानि परे है ॥७६॥

शब्दार्थ—रोचन=लाल । बारुनी=शराब । नागरि-नैन=युवतियों के नेत्र । बिलोकि=देखकर । ईषद=थोड़ी-सी । पानि परे है=हाथों में पड़ गए हैं, वशीभूत हो गए हैं ।

अर्थ—कोई गोपी अपनी सखी से अपने प्रेम का वर्णन करती हुई कहती है कि कृष्ण के बाँके नेत्र दुख को दूर करने वाले हैं, विशाल हैं और लाल रंग (प्रेम) से भरे हुए हैं । वे ऐसे प्रतीत होते हैं मानो वे मुख के सौन्दर्य की शराब पीकर भूम रहे हों । उनके कपोलों पर कुडलों की शोभा छलकती है जिसे देखकर ब्रज की युवतियों के नेत्र उस शोभा में उलभ जाते हैं । रसखान कहते हैं कि कृष्ण की थोड़ी-सी मुस्कराहट में ही ब्रज-बालाओं के मन उस मुस्कराहट के वशीभूत हो गए हैं, अर्थात् उस मुस्कान के कारण ब्रज-बालाएँ कृष्ण के प्रेम में बँध गई हैं ।

कवित्त

अव ही खरिक गई गाइ के दुहाइवे काँ,
 वावरी हूँ आई डारि दोहनी यी पानि की ।
 कोऊ कहै छरी कोऊ मीन परी ढरी कोऊ,
 कोऊ कहै मरी गति हरी अँखियानि की ॥
 सास व्रत ठानै नन्द वोलत सयाने वाइ,
 दीरि-दीरि मानै-जानै खोरि देवतानि की ।
 सखी सब हँसै मुरझानि पहिचानि कहूँ,
 देखी मुसकानि वा अहीर रसखानि की ॥७७॥

शब्दार्थ—पानि=हाथ ! सयाने=जादू-टोना करने वाले । खोरि=मनीती ।

अर्थ—कृष्ण को देखकर कोई गोपी अपनी मुधि-बुधि खो बैठी है । इसी का वर्णन करती हुई एक गोपी अपनी सखी से कहती है कि हे सखि ! अभी-अभी वह गौशाला में गाय का दूध निकालने के लिए गई थी, लेकिन वह अपने हाथ के दूधपात्र को फेंक कर पागल होकर वापिस आ गई है । उसकी अवस्था को देखकर कोई तो यह कहती है कि किसी ने इसको छल लिया है, कोई कहती है कि यह स्तब्ध हो गई है, कोई कहती है कि यह डर गई है, कोई कहती है कि यह मर गई है और कोई कहती है कि इसकी आँखों की ज्योति ही नष्ट हो गई है । उसको अच्छा करने के लिए सामु अनेक प्रकार के व्रतों को करने का सकल्प करती है, नन्द दीड-दीडकर सयानों को वोलाकर लाती है और जाने-अनजाने देवताओं की मनीती करती है । सारी सखियाँ उसकी मूर्छा को पहिचान कर हँसती हैं और कहती हैं कि इसने आनन्द-सागर कृष्ण की कही मुस्कराहट को देख लिया है और यह उसी का प्रभाव है ।

सवैया

मैन-मनोहर वन वजै सु सजे तन सोहत पीत पटा है ।
 यी दमकै चमकै भमकै दुति दामिनि की मनो स्याम घटा है ।
 ए सजनी ब्रजराजकुमार अटा चढि फेरत लाल वटा है ।
 रसखानि महा मधुरी मुख की मुसकानि करै कुलकानि कटा है ॥७८॥

शब्दार्थ—मैन=कामदेव । पटा=वस्त्र । दामिनि=विजली । घटा=

गेद । कटा = नष्ट ।

अर्थ—कोई गोपी अपनी सखी से कृष्ण के रूप का तथा तज्जन्य प्रभाव का वर्णन करती हुई कहती है कि हे सखि ! वह कामदेव के समान मधुरवाणी बोलता है । उसके शरीर पर सुन्दर पीला वस्त्र सुशोभित है । उसके शरीर की काति इस प्रकार चमकती और भमकती है मानो काले बादल में बिजली चमक रही हो । हे सजनी ! कृष्ण अटारी पर चढ़कर अपनी लाल गेद को फेकते है । रसखान कहते है कि उसके मुख का भारी सौन्दर्य और उसकी मुस्कान कुल लज्जा को नष्ट कर देती है अर्थात् उसकी मुस्कराहट को देखकर अज ललनाये उसके प्रेम में इतनी आवद्ध हो जाती हैं कि वे अपने कुल की मान-मर्यादा का भी ध्यान नहीं रखती ।

विशेष—उत्प्रेक्षा अलंकार ।

सवैया

जा दिन ते मुसकानि चुभी चित ता दिन ते निकसी न निकारी ।
कु डल लोल कपोल महा छवि कुंजन ते निकस्यौ सुखकारी ॥
हौ सखि आवत ही दगरे पग पैड तजी रिझई बनवारी ।
रसखानि परी मुसकानि के पाननि कौन गनै कुलकानि बिचारी ॥७६॥

शब्दार्थ—लोल = चंचल । दगरे = मार्ग में । पैड = मार्ग । पाननि = हाथों में ।

अर्थ—कोई गोपी अपनी सखी से कृष्ण के प्रति अपने प्रेम का वर्णन करती हुई कहती है कि हे सखि ! जिस दिन से कृष्ण की मुस्कराहट मेरे मन में चुभी है उस दिन से वह निकाले से नहीं निकलती । वह सुख देने वाला कृष्ण चंचल कुण्डलो को अपने कपोलो पर हिलाते हुए तथा अत्यन्त सौन्दर्य धारण किए हुए कुंजों से निकला था । हे सखि ! उसके मार्ग पर आते ही अर्थात् उसे देखते ही मैंने अपना मार्ग छोड़ दिया और मैं उस पर पूर्ण रूप से रीझ गई । अब तो मैं आनन्द-सागर कृष्ण की मुस्कान के हाथों में पड़ गई हूँ । ऐसी स्थिति में बेचारी कुल मर्यादा की गणना ही क्या है ? अर्थात् ऐसी स्थिति में कुल-मर्यादा नहीं रह सकती ।

विशेष—अन्तिम पंक्ति में मुहावरे का भावपूर्ण प्रयोग है ।

पाठान्तर—इस सवैया की प्रथम पंक्ति इस प्रकार भी मिलती है—

‘जा दिन ते मुसकान चुभी उर ता दिन ते जु भई विजनारी ।’

सवैया

काननि दै अँगुरी रहिवो जवही मुरली धुनि मन्द वजै है ।
मोहनी ताननि सो रसखानि अटा चढि गोघन गँहै तो गँहै ॥
टेरि कहौ सिगरे ब्रज लोगनि काल्हि कोऊ मु कितो समुझै है ।
माइ री वा मुख की मुसकानि सम्हारी न जैहे न जैहे न जैहे ॥८०॥

शब्दार्थ—काननि=कानो मे ।

अर्थ—कृष्ण के प्रति अपने अनुराग का वर्णन करती हुई एक गोपी अपनी सखी से कहती है कि जब कृष्ण की मन्द-मन्द मुरली बजती है, तब चाहे कोई मेरे कानो मे अँगुरी दे दे, अर्थात् मुझे वह तान न सुनने दे, चाहे कृष्ण अटारी पर चढ़कर मोहने वाली तानो के साथ गौचारण के गीत गायें; मैं सारे ब्रज के लोगो से पुकार-पुकार कर इस बात को कहती हूँ कि कल चाहे कोई कितना ही समझाये, परन्तु हे सखि ! मुझसे कृष्ण के मुख की मुस्कान सम्भाली नहीं जाती, अर्थात् मैं कृष्ण के प्रेम मे बहुत ही व्याकुल और उन्मत्त हो गई हूँ ।

विशेष—१. अन्तिम पक्ति मे ‘न जैहै’ का वीप्सा-युक्त प्रयोग गोपी की मनोव्यथा को द्विगुणित कर रहा है ।

१. ‘काननि दै अँगुरी रहिवो’ मुहावरे का भावपूर्ण प्रयोग है ।

तुलना—‘अव ही सुधि भूली ही मेरी भटू,
भमरो जनि मीठी सी तानन मे ।
कुल-कानि जो आपनी राखी चहौ,
दै रही अँगुरी दोउ कानन मे ।’

—निवाज

सवैया

आजु सखी नन्द-नन्दन की तकि ठाढी हो कुंजन की परछाही ।
न विसाल की जोहन को सब भेदि गयी हियरा जिन माही ॥
घाइल घूमि सुमार गिरी रसखानि सम्हारति अँगनि जाही ।
एते पै वा मुसकानि की डौड़ी वजी ब्रज में अवला कित जाटी । ८१॥

शब्दार्थ—हियरा जिय माही=हृदय के भी हृदय मे । घूमि=चक्कर

खाकर । सुमार=भयकर मार । डौरी=ढोल ।

अर्थ—कोई गोपी अपनी सखि से कहती है कि हे सखि ! आज मैंने कृष्ण को कुजो की छाया में खड़े हुए देखा था । उसके विशाल नेत्रों का दृष्टि-रूपी बाण मेरे हृदय के हृदय को भी छेद गया । उस बाण की भयकर मार से मैं घायल होकर तथा चक्कर खाकर पृथ्वी पर गिर पड़ी और मुझे अपने अगो को भी संभालने का होश नहीं रहा । इतनी सी घटना घटित होने पर ही उसकी मुस्कान का, हम दोनों के प्रेम का, ढोल समूचे ब्रज में बज गया । अब तुम्हीं बताओ कि हम जैसी अबलाएँ इस ब्रज को छोड़कर और कहाँ जायें ।

दोहा

ए सजनी लोनो लला, लखी नन्द के गेह ।

चित्तयौ मृदु मुस्काइ कै, हरी सब सुधि देह ॥८२॥

शब्दार्थ—लोनो=सुन्दर । लखी=देखा । गेह=घर । हर=हरण कर ली, प्रसन्न हो गई ।

अर्थ—कोई गोपी अपनी सखी से कृष्ण की छवि का वर्णन करती हुई कहती है कि हे सजनी ! मैंने नन्द के घर में सुन्दर कृष्ण को देखा । उसने जब मधुर मुस्कान के साथ मेरी ओर देखा तो उसने मेरे शरीर की सारी सुधि का हरण कर लिया; अथवा मेरा रोम-रोम प्रसन्नता से खिल उठा ।

विशेष—अन्तिम चरण में श्लेष अलंकार है ।

कृष्ण-सौन्दर्य

दोहा

जोहन नन्दकुमार को, गई नन्द के गेह ।

मोहि देखि मुसकाइ कै, वरस्यौ मेह सनेह ॥८३॥

शब्दार्थ—जोहन=देखने के लिए । गेह=घर । सनेह=प्रेम ।

अर्थ—कोई गोपी अपनी सखी से कृष्ण के प्रति अपने प्रेम को प्रकट करती हुई कहती है कि हे सखि ! कृष्ण को देखने के लिए मैं नन्द के घर गई थी । मुझे देखकर कृष्ण मुस्करा दिया । उसकी मुस्कराहट से प्रेम का मेह बरसा ! अर्थात् मैं उसके प्रेम में आवद्ध हो गई ।

विशेष—रूपक अलंकार ।

सर्वैया

मोरपखा सिर कानम कुण्डल कुंतल सो छवि गंडनि छाई ।
वंक विसाल रसाल विलोचन है दुखमोचन मोहन माई ।
आली नवीन महा घन सो तन पीट घटा ज्यौ पटा बनि आई ।
हौ रसखानि जकी सी रही कछु टोना चलाइ ठगौरी सी लाई ॥८४॥

शब्दार्थ—रसाल=आनन्द देने वाली । पटा=वस्त्र । टोना=जादू ।
ठगौरी= ठग विद्या ।

अर्थ—कोई गोपी अपनी सखी से कृष्ण के सौन्दर्य का वर्णन करती हुई कहती है कि हे सखि ! कृष्ण के सिर पर मोरपखो का मुकुट और कानों में कुण्डल सुशोभित हैं । उनके केशों की शोभा उनके कपोलों पर बिखरी हुई है । उनकी वक्र दृष्टि आनन्द देने वाली और विशाल है । वह दुख को दूर करने वाली तथा मन को मोहने वाली है । हे सखि ! उनका श्याम शरीर नवीन विशाल बादल के समान है जिस पर पीले वस्त्र की शोभा बहुत ही प्रभावशाली है । रसखान कहते हैं कि मैं उनकी शोभा को देखकर स्तब्ध-सी रह गई और उसने मेरे ऊपर कुछ जादू-सा करके मुझे ठग लिया ।

विशेष—तृतीय पक्ति में उपमा अलंकार है ।

सर्वैया

जा दिन ते वह नन्द को छोहरा या बन वेनु चराइ गयी है ।
मोहिनी ताननि गोधन गावत वेनु वजाइ रिभाइ गयी है ।
वा दिन सो कछु टोना सो कै रसखानि हिये मैं समाइ गयी है ।
कोऊ न काहू की कानि करै सिगरो ब्रज वीर । विकाइ गयी है ॥८५॥

शब्दार्थ—छोहरा=पुत्र । गोधन=गोचारण के गीत । टोना=जादू ।
कानि करै=लज्जा करती है । वीर=सखी ।

अर्थ—एक गोपी अपनी सखी से कहती है कि हे सखि ! जिस दिन से वह नन्द-पुत्र कृष्ण इस वन में गायें चरा कर गया है, मधुर तानों के साथ बशी वजाकर तथा गोचारण के गीत गाकर रिभा गया है, उस दिन से कुछ जादू-सा करके वह आनन्द-सागर कृष्ण हृदय में समा गया है । इसलिए यहाँ पर कोई स्त्री भी किसी की लज्जा नहीं करती । वास्तविकता तो यह है कि सारा ब्रज ही उसके हाथों विक गया है; अर्थात् ब्रज के सब नर-नारी पूर्ण-रूप से कृष्ण के वश में हो गये हैं, उसे प्रेम करने लगे हैं ।

पाठान्तर—इस सवैया की प्रथम पक्ति का यह रूप भी मिलता है—

‘ऐ सजनी वह नन्द को साँवरो या वन घेनु चराइ गयो है ।’

सवैया

आयो हुतौ नियरै रसखानि कहा कहौ तू न गई वहि ठैया ।

या ब्रज मे सिगरी बनिता सब बारति प्राननि लेति बलैया ।

कोलु न काहु की कानि करै कछु चेटक सो जु कियौ जदुरैया ।

‘गाइ’ गौ तान जमाइ गौ नेह रिभाइ गौ प्रान चराइ गौ गैया ॥८५॥

शब्दार्थ—आयो हुतौ=आया था । रसखानि=आनन्द-सागर कृष्ण ।
ठया=स्थान । सिगरी=सब । बनिता=स्त्रियाँ । कानि करै=लज्जा करती
है । चेटक=जादू । जदुरैया=कृष्ण । नेह=स्नेह, प्रेम ।

अर्थ—एक गोपी अपनी सखी से कहती है कि हे सखि ! आज आनन्द-
सागर कृष्ण पास आया था । क्या कहती हो कि तुम उस स्थान पर नहीं
गई । इस ब्रज मे सारी स्त्रियाँ कृष्ण के ऊपर अपने प्राणों को न्यौछावर
करती है और उसकी बलैया लेती है । यहाँ पर सभी कृष्ण के प्रेम मे इतनी
उन्मत्त हैं कि कोई किसी की लज्जा नहीं करती । इस प्रकार का कुछ जादू-सा
कृष्ण ने सबके ऊपर कर दिया है । वह कृष्ण तान बजाकर, हृदय मे प्रेम
उत्पन्न करके, प्राणों को रिभाकर और गायों को चराकर चला गया ।

विशेष—अन्तिम पक्ति मे विविध भावों की सुन्दर योजना है ।

सवैया

कौन ठगौरी भरी हरि आजु बजाई है बाँसुरिया रग-भीनी ।

तीन सुनी जिनही तिनही तबही तित साज बिदा करि दीनी ।

घूमै घरी घरी नन्द के द्वार नवीनी कहा कहूँ बाल प्रवीनी ।

यां ब्रज-मण्डल मे रसखानि सु कौन भट्ट जू लट्ट नहि कीनी ॥८७॥

शब्दार्थ—ठगौरी भरी=जादू से भरी हुई । रँग-भीनी=प्रेम से
पूर्ण ।

अर्थ—कोई गोपी अपनी सखी से कृष्ण की बाँसुरी के प्रभाव का वर्णन
करती हुई कहती है कि हे सखि ! न जाने कृष्ण ने किस जादू से भरी हुई
तथा प्रेम से परिपूर्ण बाँसुरी बजाई कि जिस भी गोपी ने उसे सुना, उसने
भी उसी समय अपनी लाज को त्याग दिया, अर्थात् वह लाज त्याग कर
अपने घर से बाहर निकल पड़ी । हे सुन्दर तथा प्रवीण सखि ! तब से सभी

गोपियाँ प्रत्येक समय नन्द के दरवाजे का चक्कर काटने लगी । हे सखि ! इस व्रज में कोई भी ऐसी युवती नहीं है जिसे आनन्द-सागर कृष्ण ने अपने प्रेम के वश में नहीं कर लिया है ।

विशेष—अन्तिम पवित्र में 'लटू नहीं' कीनी मुहावरें का भावमय प्रयोग है ।

तुलना—१. कित्ती न गोकुल कुल-वधू, किहि न काहि निख दीन ।
कीन तजी न कुल गली, है मुरली सुर-सीन ॥'
—विहारी

२ 'सखि मोही न मोहन को मुग्न देखि,
सु ऐसी धी गोकुल को कुल की ।'
—ब्रह्म कवि

सवैया

वांकी धरै कलगी सिर ऊपर वांसुरी-तान कटे रस वीर के ।
कुण्डल कान लसै रसखानि विलोकन तीर अनग तुनीर के ।
डारि ठगोरी गयो चित चोरि लिए है सब सुख सोखि सरीर के ।
जात चलावन मो अवला यह कीन कला है भला बे अहीर के ॥८८॥
शब्दार्थ —कलगी—मुकुट । अनग = कामदेव । सोखि = मुखाना ।

अर्थ—कृष्ण के सौन्दर्य का वर्णन करती हुई कोई गोपी अपनी सखी से कहती है कि वह अपने सिर पर सुन्दर मोर-मुकुट धारण किये हुए है, वांसुरी में वह आनन्द से भरी हुई तान बजाता है । उसके कानों में कुण्डल शोभायमान है जिन्हे देखकर कामदेव के तूनीर के वाणों-जैसा प्रभाव पड़ता है, अर्थात् मन काम-वासना के वशीभूत हो जाता है । ऐसा कृष्ण मेरे ऊपर जादू डालकर मेरा मन चुरा कर ले गया है और उसने मेरे शरीर के सारे सुखों को नष्ट कर दिया है । फिर वह कृष्ण को सम्बोधित करते हुए कहती है कि हे अहीर के पुत्र ! इसमें तुम्हारी कीनसी वीरता है, जो तुम मुझ अवला पर काम-वाण चलाते हो ।

विशेष—१. 'वे' शब्द का प्रयोग अत्यधिक आत्मीयता का सूचक है ।

२. 'अवला' शब्द का सार्थक प्रयोग है, अतः परिकर अलंकार है ।

सवैया

कौन की नागरि रूपकी आगरि जाति लिएँ सँग कौन की बेटी ।
जाको लसै मुख चद-समान सु कोमल अँगनि रूप-लपेटी ॥
लाल रहौ चुप लागि है डीठि सु जाके कहूँ उर बात न मेरी ।
टोकत ही टटकार लगी रसखानि भई मनौ कारिख-पेटी ॥ ८६ ॥

शब्दार्थ—आगरि=भंडार । लागि है डीठि=दृष्टि लग जाना । बात=प्रणय करना । टटकार=तुरन्त, तत्काल । कारिख-पेटी=कालिख का सन्दूक ।

अर्थ—जाती हुई राधा को देखकर कृष्ण एक गोपी से पूछते हैं कि यह युवती जो सौन्दर्य का भंडार है, जिसका मुख चन्द्रमा के समान सुशोभित है, सम्पूर्ण कोमल अंगों में छवि लिपटी हुई है, किसकी स्त्री है, ? किसके साथ जा रही है ? किसकी पुत्री है ? यह सुनकर गोपी कहती है कि हे लाल ! चुप रहो । इसके हृदय को अभी तक प्रणय की हवा नहीं लगी है, अतः मुझे डर है, कि कहीं तुम्हारी दृष्टि इसे न लगा जाये । रसखान कवि कहते हैं कि उसे टोकते ही वह तत्काल रुक गई और भय से इतनी स्याह पड़ गई मानो वह कालिख की सन्दूक बन गई हो ।

विशेष—उपमा, उत्प्रेक्षा अलंकार ।

सवैया

मकराकृत कुंडल गुंज की माल के लाल लसै पग पाँवरिया ।
बछरानि चरावन के मिस भावतो दै गयौ भावती भाँवरिया ॥
रसखानि विलोकत ही सिगरी भई बावरिया ब्रज-डॉवरिया ।
सजनी इहिँ गोकुल मैँ विष सो बगरायौ हे नद के साँवरिया ॥ ८७ ॥

शब्दार्थ—मकराकृत=मकरकी आकृति वाले । पाँवरिया=जूती । मिस=बहाने से । भावतो=प्रिय । भावती=सुहावनी । ब्रज—डॉकरिया=ब्रज—बलाएँ । बगरायौ है=बिखेर दिया है ।

अर्थ—कोई गोपी अपनी सखी से कहती है कि हे सखि ! कृष्ण के कानों से मकर की आकृति वाले कुंडल गले में गुंजों की माला और पैरों में जूतियाँ सुशोभित थीं । वह प्रिय बछड़ों को चराने के बहाने से सुहावनी भाँवर दे गया । रसखान कहते हैं कि उसे देखते ही सारी ब्रज-वालाएँ पागल होगईं । हे सजनी ! ऐसा प्रतीत होता है कि नद कुमार कृष्ण इस गोकुल में विष बिखेर गया

है, जिसके कारण सभी ब्रज-वालाएँ व्याकुल हैं ।

विशेष—हेतुप्रेक्षा अलंकार ।

रूप-प्रभाव

सदैया

नवरग अनग भरी छवि सौ वह मूरति आँखि गडी ही रहै ।

वतिया मन की मन ही मैं रहै घतिया उर बीच अडी ही रहै ॥

तवहूँ रसखानि सुजान अली नलिनी दल बूँद पडी ही रहै ॥

जिय की नहिँ जानत हौ सजनी रजनी आँसुवान लडी ही रहै ॥ ६१ ॥

शब्दार्थ—नवरग=यौवन । अनग=कामदेव । घतिया=प्रेम की घाते ।
रजनी=रात ।

अर्थ—कोई गोपी अपनी सखी से कृष्ण के प्रति अपने प्रेम को प्रकट-हुई कहती है कि हे सखि ! कृष्ण का यौवन कामदेव की शोभा से भरा-हुआ है; अर्थात् उनका रूप अत्यन्त मन मोहक है । उनकी यह मन मोहक-मूर्ति सदैव आँखों में समाई रहती है । उन्होंने जो मुझसे प्रेम भरी बातें की थी, वे मन-ही-मन रह गई हैं ; अर्थात् मैं किसी से उन्हें कह नहीं पाती । प्रेम की घाते हृदय के बीच अडी हुई है । रसखान कहते हैं कि हे सखि ! फिर-भी नलिनी के समूह पर बूँदे पडी रहती है । हे सजनी ! मेरे मन पर क्या बीत रही है, इसे कोई नहीं जानता । मेरी आँखों में सारी रात आँसुओं की लड़ी रहती है, अर्थात् मैं रातभर कृष्ण को स्मरण करके हरती रहती हूँ ।

विशेष—१ रूप-प्रभाव का सजीव वर्णन है ।

२ वियोग-वर्णन परस्परामुक्त है ।

सदैया

मैन मनोहर ही दुख ददन है सुख कदन नद को नदा ।

वक विलोचन की अवलोकनि है दुख योजन प्रेम को फदा ॥

जा को लखै मुख रूप अनूपम होत पराजय कोटिक चदा ।

हौ रसखानि विकाड गई उन मोल लई सजनी सुखवन्दा ॥ ६२ ॥

शब्दार्थ—मैन=कामदेव । दुखो को दूर करने वाले । सुख कदन=सुख देने वाले । नद को नदा=नन्द पुत्र कृष्ण ।

अर्थ—कोई गोपी अपनी सखी से कृष्ण की शोभा और तज्जन्य प्रभाव

का वर्णन करती हुई कहती है कि हे सखि ! वह नदपुत्र कृष्ण कामदेव से भी आर्थिक मनोहर है, दुखो को दूर करने वाला है, सुख देने वाला है । उसका वक्र दृष्टि से देखना दुखो को दूर करके प्रेम के फदे में बाँध लेता है । कृष्ण का मुख इतना सुन्दर है कि उथे देख कर करोड़ो चन्द्रमा पराजित हो जाते हैं ; अर्थात् उसके मुख की शोभा करोड़ो चन्द्रमाओं की शोभा से भी बढ़कर है । हे सजनी ! मैं तो सुख देने वाले कृष्ण ने मोल ले ली हूँ और मैं उनके हाथों में बिक भी गई हूँ । अर्थात् कृष्ण के प्रति अनुरक्त हो गई हूँ ।

सवैया

सोहत है चँदवा सिर मोर के तैसिय सुन्दर पाग कसी है ।

तैसिय गोरज भाल विराजति जैसी हिये वनमाल लसी है ॥

रसखानि विलोकत वौरी भई दृगमू दि कै ग्वालि पुकारि हसी है ।

खोलि री नैननि, खोली कहा वह मूरति नैनन माँझ बसी है ॥ ६३ ॥

शब्दार्थ—गोरज=गोओं के द्वारा उड़ाई गई धूल । लसी है=सुशोभित है । वौरी=पागल ।

अर्थ—कोई गोपी कृष्ण के सौन्दर्य का वर्णन अपनी सखी से करती हुई कहती है कि हे सखि ! जिस प्रकार कृष्ण के सिर पर मोर-मुकुट सुशोभित है, वैसे ही उनके सिर पर सुन्दर पगड़ी भी सुशोभित है । वैसे ही उनके माथे पर गोरज तथा हृदय पर वनमाल शोभा प्राप्त कर रही है । हे सखि ! मैं तो उस आनन्द-सागर कृष्ण को देखकर पागल ही हो गई । यह कहकर वह गोपी अपने नेत्रों को वन्द कर तथा करुण भाव को प्रकट करने वाले शब्दों का उच्चारण करके हसी पड़ी । इस घटना को देखकर उसकी सखी ने कहा—अरी ! आँखें तो खोल । उसने उत्तर दिया—मैं आँखें नहीं खोल सकती, क्योंकि उस कृष्ण की सुन्दर मूर्ति मेरी आँखों में ही बसी हुई है । यदि आँखें खोल दी तो डर लगता है कि कहीं वे उनमें से निकल न जाये ।

विशेष—अन्तिम पवित में गोपी नेन नहीं खोलती । इसका एक कारण यह भी हो सकता है कि स्त्री यह नहीं चाहती कि जिससे वह प्रेम करती है, उसे अन्य स्त्री भी प्रेम करे । उसे विश्वास है कि यदि उसकी आँखों में बसी हुई कृष्ण की छवि को उसकी सखी ने देख लिया तो वह अवश्य उनसे प्रेम

करने लगेगी । इसीलिए वह वह अपनी आँखों को नहीं खोलती ।

सवैया

सुनि री । पिय मोहन की बतियाँ अति ढीठ भयो नहि कानि करै ।
निसि वासर औसर देत नही छिनही छिन द्वार ही आनि अरै ॥
निकसी मति नागरि डौडी वजी ब्रज मडल में यह कौन भरै ।
अब रूप की दौर परी रसखानि रहै तिय कोऊ न माँझ धरै ॥६४॥
शब्दार्थ—पिय=प्रिय । ढीठ=घृष्ट । कानि=लज्जा । निसि वासर=

रात-दिन । रौर=शोर ।

अर्थ—कोई गोपी अपनी सखी से कृष्ण के सौन्दर्य का वर्णन करती हुई कहती है कि हे सखि ! सुनो, कृष्ण की बातें अत्यन्त प्रिय होती हैं, पर वह बहुत घृष्ट है और किसी भी प्रकार की लज्जा नहीं करता । वह मुझे कभी भी अवसर नहीं देता, बल्कि रात-दिन प्रत्येक क्षण मेरे द्वार पर आकर अड़ जाता है । हे नारियो ! घर से बाहर मत निकलो, क्योंकि समूचे ब्रज में कृष्ण की घृष्टता का ढोल बज रहा है, अतः ब्रज में नारियो को अपने दिन काटने कठिन हो रहे हैं । रसखान कहते हैं कि अब तो सारे ब्रज में कृष्ण के रूप का शोर मचा हुआ है, इसीलिए सारी स्त्रियाँ उसे देखने को इतनी उत्सुक रहती हैं कि कोई भी अपने घर में नहीं ठहरती ।

सवैया

र ग भर्यौ मुसकात लला निकस्यौ कल कुन्जन ते सुखदाई ।
मै तबही निकसी घर ते तकि नैन विसाल की चोट चलाई ॥
धूमि गिरी रसखानि तबै हरिनी जिमि बान लगै गिरी जाई ।
टूटि गयौ घर को सब बघन छूटिगौ आरज लाज बडाई ॥ ६५ ॥

शब्दार्थ—र ग=प्रेम । कल=सुन्दर । आरज-लाज=आर्य धर्म की लज्जा ।

अर्थ—कृष्ण से भेट होने पर गोपी की क्या दशा हुई, इसी का वर्णन करती हुई वह अपनी सखी से कह रही है कि हे सखि ! जब प्रेम से मुसकराता हुआ कृष्ण सुख देने वाले सुन्दर कुंजन में बाहर निकला तो संयोग से मैं भी तभी अपने घर से निकली । मुझे देख कर उसने मुझ पर अपने विशाल नेत्रों से चोट चलाई । मैं उस चोट को सहन न कर सकी और जिस प्रकार बाण लगने पर हिरनी चक्कर खा कर पृथ्वी पर गिर पड़ती है, उसी प्रकार मैं भी अपनी

सुधि-बुधि भूल कर पृथ्वी पर गिर पड़ी। घर की मर्यादा के सारे बंधन टूट गये और आर्य धर्म की लज्जा का बडप्पन भी छूट गया; अर्थात् मैं अपने वंश की मर्यादा और नारी-सुलभ लज्जा को त्याग कर कृष्ण की ओर देखती रही।

सवैया

खंजन नैन फँदे पिजरा छवि नाहि रहै थिर कैसे हूँ भाई।

छूटि गई कुलकानि सखी रसखानि लखी मुसकानि सुहाई ॥

चित्र कढे से रहे मेरे नैन न बैन कढे मुख दीनी दुहाई।

कैसी करौ कित जाऊँ अली सब बोलि उठै यह बावरी आई ॥ ६६ ॥

शब्दार्थ —खंजन नैन—खंजन रूपी नेत्र। थिर—स्थिर। कुलकानि—कुल की मर्यादा। कढे से—अकित से।

अर्थ—कोई गोपी अपनी प्रेमावस्था का वर्णन अपनी सखी से करती हुई कहती है कि मेरे खंजन रूपी नेत्र कृष्ण के शोभा रूपी पिजड़े में बन्दी हो गये हैं। हे सखि ! ये किसी भी प्रकार स्थिर नहीं रहते। बार-बार बरबस कृष्ण की छवि को देखने की लालसा में उसी की ओर दौड़ते रहते हैं। हे सखि ! जब से मैंने आनन्द सागर कृष्ण की मनोहर मुसकराहट देखी है, तबसे मैंने अपने कुल की मर्यादा को भी छोड़ दिया है। मेरे ये नेत्र, सदैव अपलक रहने के कारण, चित्र में अकित से बने रहते हैं। प्रयत्न करने पर भी मुख कोई शब्द नहीं निकलता। हे सखि ! तुम्हीं बताओ कि मैं क्या करूँ, किधर जाऊँ, क्योंकि मैं जिधर जाती हूँ उसी ओर लोग कहते हैं कि वह पगली आई है।

विशेष—प्रेमावस्था का सजीव एवं मार्मिक चित्रण है।

कुंज लीला

सवैया

कु जगली मैं अली निकसी तहाँ साँकरे ढोटा कियौ भटभेरो।

माई री वा मुख की मुनकान गयौ मन बूढि फिरै नहि फेरो ॥

डोरि लियौ दृग चोरि लियौ चित डारयौ है प्रेम को फंद घनेरो।

कैसी करौ अब क्यो निकसो रसखानि पर्यौ तन रूप को घेरो ॥ ६७ ॥

शब्दार्थ —अली—सखी। ढोटा—कृष्ण से तात्पर्य है। भटभेरो—मुठभेड़

अचानक मिलना । वूडि=झुवना । डोरि लियी=वाँध लिया ।

अर्थ—कोई गोपी कृष्ण से मिल कर गई है । उसी का वर्णन करती हुई वह अपनी सखी से कह रही है कि हे सखि ! मैं आज प्रातः जब कुज गली से निकली तो अचानक कृष्ण से भेट हो गई । हे सखि ! कृष्ण के मुख की मुसकान मे मेरा मन इतना अधिक डूब गया कि वह उस मुसकान की छवि पर से हटाने पर भी नहीं हटा । उस मुसकान ने मेरे नयनों को बाध लिया, चित्त को चुरा लिया और प्रेम का गहरा फन्दा डाल दिया । तुम्ही बताओ, अब मैं क्या करूँ । मेरे चित्त में बसा हुआ कृष्ण कैसे बाहर निकल सकता है ? उस आनन्द सागर कृष्ण के सौन्दर्य ने मेरे सारे शरीर को घेर लिया है ।

कहने का भाव यह है कि कृष्ण के साथ हुआ मिलन और तज्जन्य सुख भुलाने से भी नहीं भुलाया जा रहा है ।

सोरठा

देख्यौ रूप अपार, मोहन सुन्दर स्याम को ।

वह ब्रजराज कुमार, हिय जिय नैननि मे वस्यौ ॥ ६८ ॥

शब्दार्थ—मोहन=मोहने वाला । हिय-हृदय । जिय=मन ।

अर्थ—कोई गोपी अपनी सखी से कृष्ण की छवि का वर्णन करती हुई कहती है कि मैंने मोहने वाले सुन्दर कृष्ण का जब से अपार रूप देखा है, तबसे वह ब्रजराज कुमार मेरे हृदय में, मन में और आँखों में बसा हुआ है ।

नटखट कृष्ण

कवित्त

अन्त ते न आयी याही गाँवरे को जायौ,

माई बाप रे जिवायौ प्याइ दूध वारे वारे को ।

सोई रसखानि पहिचानि कानि छाँडि चाहै,

लोचन नचावत नचैया द्वारे द्वारे को ।

मैया की सौ सोच कछु मटकी उतारे को न,

गोरस के द्वारे को न चीर चीरि डारे को ।

यहै दुख भारी गहै उमर हमारी माँझ,

नगर हमारे ग्वाल वगर हमारे को ॥ ६९ ॥

शब्दार्थ—अन्त मे=और किसी जगह से । गाँवरे को=गाँव का ही ।
लोचन=आँख । सौ—सौगन्ध । चीरि=फाड़ना । बगर=घर ।

अर्थ—कोई गोपी कृष्ण की भर्त्सना करती हुई कह रही है कि हे कृष्ण !
तुम और किसी जगह से नहीं आये हो । तुम्हारा जन्म हमारे इसी गाँव मे
हुआ है । बचपन मे हमने तुम्हे दूध पिला-पिला कर माँ बाप की तरह पाला
है । उसी पहिचान और मर्यादा को तुम छोड़ना चाहते हो, तुम बचपन मे द्वार-
द्वार पर नाचा करते थे और अब हमारे सामने अपनी आखे नचा रहे हो ।
तुम्हे तुम्हारी माँ की सौगन्ध है, यदि तुमने हमारी मटकी उतारी तो । हमे न
तो अपनी इस मटकी के उतर जाने का सोच है, न गोरस के निकल जाने का
और न अपने वस्त्रो के फट जाने का । हमे केवल यही दुख है कि तुम हमारे
ही गाँव के और हमारे ही घर के होकर हमारा रास्ता रोक लेते हो और हमे
तंग करते हो ।

पाठान्तर—इस कवित्त की तीसरी पंक्ति का यह रूप भी मिलता है—

‘सो तो रसखान पहिचान हू न मानत है’

सवैया

एक ते एक लौ कानन मै रहे ढीठ सखा सब लीने कन्हार्ई ।
आवत ही हौ कहाँ लौ कहाँ कोउ कैसे सहै अति की अधिकाई ॥
खायौ दही मेरो भाजन फोर्यौ न छोडत चीर दिवाएँ दुहाई ।
सौह जसोमति की रसखानि ते भागे मरु करि छूटन पाई ॥ १०० ॥

शब्दार्थ—एक ते एक लौ=एक से एक बढ़कर । ढीठ=शरारती ।
सौह=सौगन्ध । मरु करि=कठिनता से ।

अर्थ—कोई गोपी अपनी सखी से कृष्ण की दधिलीला का वर्णन करती
हुई कहती है कि कृष्ण एक से एक बढ़ कर शरारती साथियो को लेकर बन मे
रहता है । उनकी शरारत की बातें कहाँ तक कहूँ, और कोई किस प्रकार उनकी
शरारत की अति को सहन कर सकती है कि किसी भी गोपी के आते ही वे
उसे तंग करने लगते हैं । उन्होंने मेरी दही खा ली, मेरा मटका फोड़ दिया और
अनेक प्रकार की दुहाई देने पर भी मेरे वस्त्रो को पकड़े रहा । रसखान कहते
हैं कि जब मैने उसे यशोदा जी की सौगन्ध खिलाई तो वे भागे और मै बड़ी-
कठिनता से उनसे छूट पाई ।

सवैया

आज महुँ दधि बेचन जात ही मोहन रोकि लियौ मग आयौ ।
माँगत दान मे आन लियौ सु कियौ निलजी रस जोवन खायौ ॥
काह कहूँ सिगरी री विथा रसखानि लियौ हसि के मुसकायौ ।
पाले परी मैं अकेली लली, लला लाज लियौ सु कियौ मनभायौ ॥१०१॥

शब्दार्थ—निलजी=लज्जा-रहित । सिगरी=सारी । विथा=व्यथा ।

अर्थ—कोई गोपी अपनी सखी से कह रही है कि हे सखि ! आज जब मैं दही बेचने के लिए जा रही थी तो कृष्ण ने आकर मेरा रास्ता रोक लिया । उसने दही का दान मागा, किन्तु उस दान के बदले में उसने मुझे लज्जा-रहित करके यौवन रस का आनन्द लिया । हे सखि ! मैं अपनी समस्त व्यथा का क्या वर्णन करूँ, आनन्द सागर कृष्ण ने हँस-हँस कर मेरा यौवन दान लिया । मैं अकेली ही उसे मिल गई थी, अतः मैं कुछ कर भी नहीं सकती थी । उसने मेरी लज्जा ले ली और जो चाहा वही किया ।

विशेष—१ भावो की सम्मानित अभिव्यक्ति प्रशंसनीय है ।

२. अंतिम पक्ति में अनुप्रास अलंकार है ।

सवैया

पहले दधि लै गई गोकुल मे चख चारि भए नटनागर पै ।
रसखानि करी उनि मैनमई कहै दान दे दान खरे अर पै ॥
नख तें सिख नील निचोल लपेटे सखी सम भाँति कँपे डर पै ।
मनौ दामिनि सावन के घन मे निकसे नही भीतर ही तरपै ॥१०२॥

शब्दार्थ—चाव=आँख । मैनमई=प्रेम से परिपूर्ण । दामिनी=विजली ।

अर्थ—दानलीला का वर्णन करती हुई एक गोपी अपनी सखी से कह रही है कि पहले मैं गोकुल में दही ले गई । वहाँ मुझे कृष्ण मिल गये जिनसे आँखें चार हुईं । उन्होंने मुझे प्रेम परिपूर्ण कर दिया और दही के दान के लिए अडकर खड़े हो गये । मेरी सारी सखियाँ सिर से पैर तक अपने नीले वस्त्र को लपेटे हुए डर से काँप रही थी । वस्त्रों में लिपटा हुआ उनका सौन्दर्य ऐसा प्रतीत होता था, मानो सावन में उमड़े हुए बादल में से विजली की द्युति निकलने के कारण अन्दर ही अन्दर तडप रही हो ।

विशेष—उत्प्रेक्षा अलंकार ।

पाठान्तर—

पहिले दधि लै गई गोकुल मे चख चार भए नटनागर पै ।
रसखान करी उन चातुरता कहै दान दे दान खरे अर पै ॥
नख ते सिख लौ पट नील लपेटि लली सब भाँति कपे डर पै ।
मनु दामिनी साँवन के घन मे निकसे नहि भीतर ही तरपै ॥

सवैया

दानी नए भए माँगत दान सुने जु कंस तौ बाँधे न जैहौ ।
रोकत हौ बन मे रसखानि पसारत हाथ महा दुख पैहौ ।
टूटे छरा बछरादिक गोधन जो घन है सु सबै पुनि रेहौ ।
जै है जो भूषन काहू तिया को तौ मोल छलाके लला न बिकैहौ । १०३ ॥

शब्दार्थ—दानी=कर वसूल करने वाले । सुने जु पे कस तौ बाँधे न-
जैहौ=यदि कस सुन लेगा तो क्या बन्दी नहीं बना लिए जाओगे ? अर्थात् यह-
जानकर कि तुम उसकी प्रजा को तग करते हो, कंस तुम्हे बन्दी बना लेगा ।
छरा=गुँजा की माला । छला=छल्ला, अगूठी ।

अर्थ—दही के लिए जबरदस्ती करते हुए कृष्ण को भय दिखाती हुई कोई-
गोपी कहती है कि हे कृष्ण ! यह सुनकर कि तुम नये कर वसूल करने वाले
अपने आप ही बन गए हो, कस तुम्हे पकडवा कर बन्दी बना लेगा । तुम बन
मे हमारा मार्ग रोककर हमारे सामने दही के लिए हाथ फैलाते हो, इस प्रकार
की याचक वृत्ति से तुम्हे बहुत अधिक दुख भोगना पड़ेगा । इस छीना-भपटी
मे यदि किसी गोपी की गुँज की माला टूट गई तो उसकी क्षति-पूर्ति के लिए
तुम्हारे पास जो बछड़ा आदि घन है, वह सबका सब देना पड़ जायेगा । और
यदि संयोगवश किसी गोपी का कोई आभूषण टूट गया तो उसके एक छल्ले-
के मूल्य मे ही तुम्हे बिक जाना पड़ेगा ।

तुलना—‘चेरी न तेरी न तेरे बबा की मै घेरी गली मे का पैर लडैहसौ ।

जो तुम चाहत चाखन माखन सो तुम माखन नेकु न पैहौ ।
कस के राज मे धूम नही बरि आई बबा की सौ बून्द न देहौ ।
टूटैगौ हार हजार को तौ तुम नन्द जसोदा समेत बिकैहो ॥

—अज्ञात-

सवैया

छीर जौ चाहत चीर गहैं एजू लेउ न केतिक छीर अचैहो ।
 चाखन के मिस माखन माँगत खाउ न माखन केतिक खैहो ।
 जानति ही जिय वी रसखानि सु काहे कौ एतिक बात बढैहो ।
 गोरस के मिस जो रस चाहन सो रस कान्हजू नेकु न पैहो ॥ १०४ ॥

शब्दार्थ—छीर=क्षीर, दूध । अचैहो=पीओगे । एतिक=उतनी ।
 गोरस=दही । रस=आनन्द, इन्द्रिय, सुख । नेकुन=तनिक भी ।

अर्थ—कोई गोपी कृष्ण से कह रही है कि हे कृष्ण ! तुम मेरा चीर पकड़ कर जो दूध माँग रहे हो, तो लो । देखती हूँ तुम कितना दूध पी जाओगे । चाखने के बहाने से जो मक्खन तुम माँग रहे हो तो लो और जितना चाहो उतना खालो । लेकिन मैं तुम्हारे मन की बात जानती हूँ, इसलिए क्यों इतनी बढ़ा रहे हो । तुम दही के बहाने से जो इन्द्रिय-सुख चाहते हो, वह तुम्हें तनिक भी नहीं मिलेगा ।

चुलना—१. 'जो रस चाहो सो रस नाही गोरस पियहुँ अघाय ।'

—सूरदास

२. 'गोरस के मिस डोलती, सो रस नेकु न देख ।'

—रहीम

३. 'गोरस चाहत फिरत ही, गोरस चाहत नाहि ।'

—विहारी

सवैया

लगर छैलहि गोकुल मैं मग रोकत संग सखा ढिग तै है ।
 जाहि न ताहि दिखावत आँखि सु कौन गई अव तोसो करे है ।
 हाँसी मे हार हट्यौ रसखानि जु जौ कहूँ नेकु तगा दुटि जै है ।
 एकहि मोती के मोल लला सिगरे ब्रज हाटहि हाट विकै है ॥ १०५ ॥

शब्दार्थ—लगर=प्रेमी । ढिग=पास । गई=परवाह, चिन्ता ।

अर्थ—गोपी कृष्ण की भर्त्सना करती हुई कहती है कि यह सच है कि तुम प्रेमी और छैला बनकर गोकुल में हमारा रास्ता रोक लेते हो, क्योंकि तुम्हारे पास तुम्हारे बहुत से साथी हैं, लेकिन हमें अपनी चालें दिखाने की कोई जरूरत नहीं है, क्योंकि अब तुम्हारी परवाह कोई नहीं करता । हे आनन्द-सागर कृष्ण

तुमने हँसी-हँसी मे मेरा हार ले लिया है, लेकिन ध्यान रखो, यदि इसका जर सा भी धागा टूट गया तो सिर्फ इसके एक मोती के लिए तुम सारे ब्रज के बाजार मे बिकते फिरोगे ।

सवैया

काहु को माखन चाखि गयौ अरु काहु को दूध दही ढरकायौ ।

काहु को चीर लै रूख चढ्यौ अरु काहुको गु जधरा छहरायौ ।

मानै नही बरजे रसखानि सु जानियै राज इन्है घर आयौ ।

आव री बूझै जसोमति सो यह छोहरा जायौ कि मेव मगायौ ॥ १०६॥

शब्दार्थ—ढरकायौ=बिखेर दिया । गु जछरा=गुंजो की माला । छहरायौ=तोड़ दी । बरजे=रोकने पर मेव=लूट मार करने वाला ।

अर्थ—कृष्ण की शरारतो से तग आकर गोपियाँ परस्पर उपालम्भ देती हुई कहती है कि यह कृष्ण हमे बहुत तग कर रहा है । किसी का मखन छीनकर उसे खा लिया, किसी की दही बिखेर दी और दूध बिखेर दिया । किसी का वस्त्र लेकर पेड़ पर चढ़ गया । किसी की गुंजो की माला तोड़ दी । रसखान कहते है कि रोकने पर भी यह अपनी आदतो से बाज नहीं आता । ऐसा जान पड़ता है कि इन्ही के घर का राज्य आ गया हो । हे सखियो ! आग्रो, और यशोदा जी से यह चलकर मालूम करे कि तुमने यह पुत्र उत्पन्न किया है या लूटमार करने वाला मेव ।

विशेष—कृष्ण जी विविध लीलाओ का भावपूर्ण वर्णन है ।

मुरली प्रभाव

कवित्त

दूध दुह्यौ सीरो पर्यौ तातो, न जमायौ कर्यौ,

जामन दयौ सो धर्यौ धर्यौई खटाइगौ ।

आन हाथ आन पाइ सवही के तब ही ते,

जब ही ते रसखानि ताननि सुनाइगौ ।

ज्योही नर त्यौहो नारी तैसीयै तरुन वारी,

कहिये कहा री सब ब्रज बिललाइ गौ ।

ज्योही नर त्यौही नारी तैसीयै तरुन वारी,

कहिये कहा री सब ब्रज बिललाइ गौ ।

जानियै न माली यह छोहरा जसोमति को,

बाँसुरी बजाइ गौ कि विष बगराइ गौ ॥१०६॥

शब्दार्थ—तातो=गर्म । जामन=दूध को जमाने के लिए दही का जो

हिस्सा दूध में डाला जाता है, उसे जामन कहते हैं। पाइ=पाँव, चरण। रसखानि आनन्द-सागर कृष्ण। वारी=युवती। छोहरा=पुत्र। बगराइ=विखेरना।

अर्थ—कृष्ण की बाँसुरी के प्रभाव का वर्णन कोई गोपी अपनी सखी से करती हुई कहती है कि हे सखि ! जब कृष्ण ने बाँसुरी बजाई तो ब्रज की सारी व्यवस्था ही छिन्न-भिन्न हो गई। जो निकाला हुआ दूध गर्म था, वह ठंडा पड़ गया, इसीलिए वह जमाया न जा सका, क्योंकि बाँसुरी की धुनि को सुनकर दूध जमाने वाली गोपी दूध जमाना ही भूल गई। जिस गोपी ने दूध को जमाने के लिए उसमें जामन लगा दिया था, वह उसे उचित स्थान पर रखना भूल गई, अतः वह रक्खा-रक्खा ही खट्टा हो गया। जब से आनन्द-सागर कृष्ण ने बाँसुरी की मधुर ताने सुनाई है, तब से ब्रजवासियों के हाथ पैर और ही हो गये हैं, अर्थात् उनके हाथ-पैर चलते ही नहीं। जो दशा आदमियों की है, वही दशा स्त्रियों की है, वही युवको और युवतियों की है। हे सखि ! मैं ब्रज की दुर्दशा का कहाँ तक वर्णन करूँ, बस इतना समझ लो कि सारा ब्रज ही व्याकुल हो गया। हे सखि ! पता नहीं, यशोदा-पुत्र ने बाँसुरी बजाई थी या ब्रज में विष बिखेरा था, जिसके कारण सारे ब्रजवासियों की कर्मण्य शक्ति ही नष्ट हो गई।

विशेष—सदेह अलंकार।

तुलना—‘आन कहै आन करै आन हाथ पाइ भई,

अनंग के अनख दही न सुधि तिय मे।

सीरो तान तातौ कर तातो जान सीरो करै,

दूध न जमायो जाइ नेह जम्यौ हिय मे।’

—केशवः

कवित्त

जल की न घट भरै मग की न पग घरै,

घर की न कछु करै बैठी भर साँसु री।

एकै सुनि लोट गई एकै लोट-पोट भई,

एकनि के दृगनि निकसि आए आँसु री।

कहै रसखानि सो सबै ब्रज-वनिता वधि,

बधिक कहाय हाय भई कुल हाँसु री।

करियै उपायै बास डारियै कटाय,

नाहिं उपजैगौ बाँस नाहिं बाजे फेरि बाँसुरी ॥१०८॥

शब्दार्थ—घट=घड़ा । वधि=वध करके, मार करके ।

अर्थ—कृष्ण की बाँसुरी के अपूर्व प्रभाव का वर्णन करती हुई एक गोपी अपनी सखी से कहती है कि हे सखि ! कृष्ण ने जब बाँसुरी बजाई तो सारे ब्रज के काम बन्द हो गए । जो गोपियाँ यमुना नदी में घुस कर पानी भरने वाली थी वे पानी में खड़ी की खड़ी रह गईं और अपना घड़ा न भर सकी । जो मार्ग में आ रही थी, वे वहीं रुक गईं, एक कदम भी आगे न रख सकी । जो घर में थी, वे अपना सारा कार्य छोड़कर केवल लम्बे-लम्बे साँस भरने लगी । एक गोपी बाँसुरी की धुनि को सुनकर तथा मूर्च्छित होकर पृथ्वी पर गिर गई, एक लोट-पोट हो गई, एक की आँखों से आँसू निकल आये । रसखान कहते हैं कि वह गोपी अपनी सखी से कहती ही गई कि कृष्ण तो सारी ब्रज-नारियों का वध करके बधिक बन गये और हम उसके प्रेम में पड़कर अपने कुल की हँसी का कारण बन गईं । अब तो यही उपाय करना चाहिए कि दुनिया के सारे बाँसों को कटवा डालो । इससे न तो बाँस रहेगा और न फिर बाँसुरी बनकर हमें व्यथित करेगी ।

विशेष—१. कृष्ण की बाँसुरी का प्रभाव-वर्णन अत्यन्त भावपूर्ण है ।

२. अतिम पक्ति में लोकोक्ति का सुन्दर प्रयोग है ।

३. डा० भवानीशकर आशिक इस कवित्त को रसखानकृत नहीं मानते ।

अतः हमने इसे सदिग्ध छन्दों के अन्तर्गत भी रखा है ।

सवैया

चद सो आनन मैन-मनोहर बैन मनोहर मोहत हौ मन ।

बक बिलोकनि लोट भई रसखानि हियो हित दाहत हौ तन ॥

मैं तव तै कुलकानि की मैड़ नखी जु सखी अब डोलत हो बन ।

वेनु बजावत आवत है नित मेरी गली ब्रजराज को मौहन ॥

शब्दार्थ—आनन=मुख । मैन=कामदेव । हित=प्रेम । कुल-कानि की मैड़=कुल की मर्यादा की सीमा ।

अर्थ—बाँसुरी के प्रभाव से कृष्ण के प्रति उत्पन्न प्रेम की बात एक गोपी अपनी सखी को बताती हुई कह रही है कि हे सखि ! चन्द्रमा के समान सुन्दर

मुख वाले, कामदेव के समान सुन्दर कृष्ण के मधुर वचनो ने मेरा मन मोह लिया है । उसकी वाँकी चितवन को देखकर मैं सज्ञा शून्य हो गई । आनन्द-सागर कृष्ण का मेरे हृदय में बसा हुआ प्रेम मेरे शरीर को जलाता है । मैंने तभी से कुल की मर्यादा की सीमा छोड़ दी है और अब कृष्ण को प्राप्त करने के लिए वन-वन डोल रही हूँ, क्योंकि ब्रज के मन को मोहने वाला ब्रजराज कृष्ण वाँसुरी बजाता हुआ प्रतिदिन मेरी गली आता है ।

विशेष—‘चद सो आनन’ में उपमा और ‘मैन मनोहर’ में रूपक अलंकार है ।

सवैया

वाँकी बिलोकनि रंगभरी रसखानि खरी मुसकानि सुहाई ।
बोलत बोल अमीनिधि चैन महारस-ऐन सुनै सुखदाई ॥
सजनी पुर-बीथिन मैं पिय-गोहन लागी फिरै जित ही तित घाई ।
वाँसुरी टेरि सुनाइ अली अपनाइ लई ब्रजराज, कन्हाई ॥११०॥

शब्दार्थ—बिलोकनि=दृष्टि । रंगभरी=प्रेमपूर्ण । रसखानि=आनन्द-सागर कृष्ण की । खरी=सुन्दर । बोल=वचन । अमीनिधि=अमृत का भंडार । चैन=आनन्द । महारस-ऐन=अत्यन्त आनन्द का भंडार । पुर-बीथिन मैं=नगर की गलियों में । पिय-गोहन=कृष्ण के साथ ।

अर्थ—एक गोपी अपनी सखी से कृष्ण की वाँसुरी के प्रभाव का वर्णन करती हुई कहती है कि हे सखि ! उस कृष्ण की दृष्टि प्रेमपूर्ण है, वह आनन्द का सागर है, उसकी सुन्दर मुस्कान मन को मोहने वाली है । वह अमृत-भंडार से युक्त वचनो को कहता है ; अर्थात् उसकी वाणी का माधुर्य अमृत के समान परमानन्द प्रदान करने वाला है । उसकी मधुर वाणी अत्यन्त आनन्द का भंडार है, जिसे सुनने से सुख प्राप्त होता है । हे सजनी ! नगर की गलियों में समस्त ब्रज वालाएँ कृष्ण के साथ-साथ लगी हुई हैं । वह जिधर भी जाता है, सभी गोपियाँ उधर ही दौड़ने लगती हैं । हे सखी ! उस ब्रजराज कृष्ण ने वाँसुरी की ध्वनि सुनाकर समस्त ब्रज-वालाओं को अपने प्रेम के वशीभूत कर लिया है ।

विशेष—अनुप्रास, यमक अलंकार ।

सवैया

डोरि लियौ मन मोरि लियो चित जोहि लियौ हित तोरि कै कानन ।
कु जनि ते निकस्यौ सजनी मुसकाइ कह्यौ वह सुन्दर आनन ॥
हो रसखानि भई रसमत्त सखी सुनि के कल बाँसुरी कानन ।
मत्त भई वन वीथिन डोलति मानति काहू की नेकु न आनन ॥ १११ ॥

शब्दार्थ—डोरि लियौ=बाँध लिया । हित=प्रेम । कान=मर्यादा ।
आनन=मुख । कानन=वन । आनन=बाधाएँ ।

अर्थ—कोई गोपी अपनी सखी से कृष्ण की गोभा का वर्णन करती हुई कहती है कि हे सखि ! कृष्ण ने मेरे मन को बाँध लिया है, चित्त को चुरा लिया है, मर्यादा तोड़कर मुझसे प्रेम जोड़ लिया है । हे सजनी ! वह अपने सुन्दर मुख पर मुस्कराहट लिए कुंजों में से निकला । रसखान कहते हैं कि हे सखि वन में उसकी मधुर बाँसुरी को सुनकर मैं रसमत्त हो गई । तभी से मैं उन्मत्त होकर वन-वन और गली-गली घूमती फिर रही हूँ और किसी भी प्रकार की बाधाओं को नहीं मानती ! अर्थात् अब मुझे किसी भी प्रकार की बाधा का डर नहीं रहा है ।

सवैया

मेरो सुभाव चितैवे को माइ री लाल निहारि कै बसी बजाई ।
वा दिन ते मोहि लागी ठगौरी सी लोग कहै कोई बावरी आई ॥
यौ रसखानि धिर्यो सिगरो ब्रज जानत वे कि मेरो जियराई ।
जौ कोउ चाहै भलौ अपनो तौ सनेह न काहू सो कीजियौ माई ॥ ११२ ॥

शब्दार्थ—चितैवे को=देखने के लिए । निहारि के=देखकर । ठगौरी=जादू । जियराई=हृदय ।

अर्थ—कोई गोपी अपनी सखी से कहती है कि हे सखि ! मेरा स्वभाव देखने के लिए, मुझे देखकर, कृष्ण ने अपनी वशी बजाई । उसी दिन से मुझ पर जादू-सा चल गया है । लोग मुझे देखकर कहते हैं कि कोई पगली आ गई है, अर्थात् लोग मुझे पगली समझते हैं । रसखान कहते हैं कि इस प्रकार सारे ब्रज के निवासी मुझे घेर लेते हैं । मेरे मन की या तो कृष्ण जानते हैं या मैं स्वयं जानती हूँ । यदि इस जगत् में कोई अपना भला चाहता है तो उसे कभी भी किसी से प्रेम नहीं करना चाहिए ।

सवैया

मोहन की मुरली सुनिकै वह बौरि ह्वै आनि अटा चढि भाँकी ।

गोप बडेन की डीठि बचाइ कै डीठि सो डीठि मिली दुहुँ भाँकी ॥

देखत मोल भयो अँखियान को को करै लाज कुटुम्ब पिता की ।

कैसे छुटाई छुटै अटकी रसखानि दुहुँ की बिलोकनि वाँकी ॥ ११३ ॥

शब्दार्थ—बौरी ह्वै = पागल होकर । बिलोकनि वाँकी = वक्र चित्तवन ।

अर्थ—गोपी प्रेम का वर्णन करती हुई कोई गोपी अपनी सखी से कह रह है कि कृष्ण की मुरली की तान को सुन कर वह पागल होकर अटारी पर चढ़ कर नीचे की ओर भाँकी । अन्य लोगो की निगाह बचाकर उसने कृष्ण से निगाह मिलाई । दोनों की आँखें मिली । आँखें मिलते ही दोनों में प्रेम हो गया और उन्होंने कुल की तथा पिता की लाज को तिलाजलि दे दी । रसखान कवि कहते हैं कि उन दोनों की परस्पर मिली हुई वाँकी चितवन किस प्रकार हटाने से हट सकती है अर्थात् उन दोनों का प्रेम नहीं टूट सकता ।

सवैया

बसी बजावत आनि कढौ सो गली में अली ! कछु टोना सो डारे ।

हेरि चिते, तिरछी करि दृष्टि चली गयो मोहन मूठि सी मारे ॥

ताही घरी सो परी घरी सेज पै प्यारी न बोलति प्रानहुँ वारे ।

राधिका जी है तो जी है सबै न तो पीहै हलाहल नन्द के द्वारे ॥ ११४ ॥

शब्दार्थ—टोना = जादू । हेरि = देखकर । मूठि सी मारे = मूठ सी मारकर । हलाहल = विष ।

अर्थ—प्रेम व्यथिता राधिका जी का वर्णन करती हुई कोई गोपी अपनी सखी से कहती है कि हे सखि ! वाँसुरी को बजाता हुआ वह कृष्ण अचानक गली में आ निकला और राधा पर कुछ जादू सा डाल गया । वह उसकी ओर देखकर ध्यान देकर और तिरछी निगाह करके मन को मोहने वाली मूठ सी मार कर चला गया; अर्थात् राधा पर अपना प्रेम जना कर और राधा के हृदय में प्रेम की भावना जगाकर चला गया । वह प्यारी राधा उसी समय से सेज पर निश्चेष्ट होकर पड़ी हुई है । वह कुछ बोलती भी नहीं है तथा अपने प्राणों को न्यौछावर करने पर उतारू है । हे सखि ! यदि राधा जी जीवित बच गई तो हम सबका जीवन है, यदि वह मर गई तो हम सभी नन्द के द्वारे

पर जाकर विष पी लेगी; अर्थात् उसके द्वारे पर जाकर आत्म-हत्या कर लेगी ।

विशेष—१. जी है ती जी हैं, मे यमक अलकार है ।

२ 'न तो पी है हलाहल नन्द के द्वारे' में मन का सारल्य एवं दृढता निहित है ।

तुलना—चितै न जो वृषभान सुता दुख ह्वै ह्वै बडो इहि की सजनीन को ।
जाय के खाय परेगी सबे या अहीर के द्वार पे हीर-कनीन को ॥

—अज्ञात

सवैया

कल काननि कुण्डल मोरपखा उर पै बनमाल बिराजति है ।
मुरली कर मै अधरा मुसकानि-तरंग महा छबि छाजति है ॥
रसखानि लखे तन पीत पटा सत दामिनि सी दुति लाजति है ।
वहि वासुरी की धुनि कान परे कुलकानि हियो तजि भाजति है ॥११५॥

शब्दार्थ—कल=सुन्दर । काननि=कानों में । अधरा=होठों पर ।
मुसकानि-तरंग=हसी की लहरे । छाजति है=शोभायमान है । सत दामिनि
की=सैकड़ों बिजलियों की । दुति=द्युति, शोभा । लाजति है=लज्जित होता
है । कुलकानि=वंश की मर्यादा । भाजति है=भागती है ।

अर्थ—कोई गोपी अपनी सखी से कृष्ण की शोभा तथा उनकी बांसुरी के
प्रभाव का वर्णन करती हुई कहती है कि हे सखि ! कृष्ण के कानों में सुन्दर
कुण्डल, सिर पर मोर-पखों का मुकुट और हृदय पर वैजयन्तीमाला सुशोभित
है । उनके हाथ में वशी और होठों पर मुसकराहट की लहरें अत्यन्त शोभा
प्राप्त करती हैं । रसखान कवि कहते हैं कि उनके तन पर सुशोभित पीले वस्त्र
को देखकर सैकड़ों बिजलियों की शोभा लज्जित होती है । उसी बांसुरी की
ध्वनि कानों में पड़ने पर ब्रज-बनिताएँ अपने हृदय से वंश की मर्यादा छोड़ कर
उसी ओर भागती हैं ।

विशेष—अनुप्रास, रूपक और प्रतीप अलंकार ।

सवैया

काल्ह भटू मुरली-धुनि मे रसखानि लियौ कहूँ नाम हमारौ ।
ता छिन ते भई बैरिनि सास कितौ कियौ भाँकन देति न द्वारौ ॥

होत चवाव बलाई सो आली री जो भरि आँखिन भेंटिये प्यारौ ।

वाट परी अब री ठिठक्यौ हियरे अटक्यौ पियरे पटवारौ ॥ ११६ ॥

शब्दार्थ—पटू=सखी । चवाव=वदनामी की चर्चा । जो भरि आँखिन=आँखें खोलकर । वाट परी=रास्ता रुक गया । ठिठक्यौ=रुक गया ।

अर्थ—कोई गोपी कृष्ण के प्रति अपने प्रेम का वर्णन करती हुई कहती है कि हे सखि ! आनन्द-सागर कृष्ण ने अपनी मुरली में मेरा नाम बजा दिया था । तभी से मेरी सासू मेरी वैरिन हो गई है, तथा प्रयत्न करने पर भी द्वार भाँकने नहीं देती, अर्थात् मैं अपने घर से बाहर निकलने का बहुत प्रयत्न करती हूँ, किन्तु मेरी सासू मुझे तनिक भी बाहर नहीं आने देती है । हे सखि ! यदि मैं कृष्ण को तनिक भी आँखें भर कर देख लेती हूँ तो इससे मेरी भारी वदनामी होती है । जब से कृष्ण मेरे मन में बसा है, अर्थात् कृष्ण से मुझे प्रेम हुआ है, तब से मेरा रास्ता और हृदय दोनों रुक गये हैं, अर्थात् न तो मैं कहीं बाहर जा सकती हूँ और न अपने हृदय से कृष्ण को ही निकाल सकती हूँ ।

विशेष—अन्तिम पंक्ति में यमक अलंकार है ।

पाठान्तर—इस सवैया की प्रथम पंक्ति इस प्रकार भी मिलती है—

‘एक समै मुरली धुनि में रसखान लियौ उन नाम हमारौ ।’

सवैया

आजु भटू इक गोपवधू भई वावरी नेकु न अग सम्हारै ।

माई सु धाड़ कै टोना सो ढूँढति सास सयानी-सयानी पुकारै ॥

यौ रसखानि धिरौ सिगरी ब्रज आन को आन उपाय विचारै ।

कोऊ न कान्हर के कर ते वहि वैरिनि वासरिया गहि जारै ॥ ११७ ॥

शब्दार्थ—भटू=सखी । टोना=जादू । सयानी=टोना करने वाली । आन को आन=अन्य-अन्य प्रकार के । कान्हर के=कृष्ण के । गहि जारै=लेकर जलाता है ।

अर्थ—कोई गोपी अपनी सखी से कृष्ण की वासुरी के प्रभाव का वर्णन करती हुई कहती है कि हे सखि ! आज कृष्ण की वासुरी की ध्वनि सुन कर एक गोप वधू पागल हो गई, उसे अपने अगो की सम्हालने का तनिक भी ध्यान नहीं रहा । उसकी सखियाँ दौड़-दौड़ कर जादू करने वाली को ढूँढ़ने लगी, उसकी सासु टोना करने वाली को पुकारने लगी । रसखान कहते हैं कि

इस प्रकार सारा ब्रज वहाँ आ गया और उस गोपवधू को चारों ओर से घेर लिया । सब नर-नारी अन्य-अन्य प्रकार के उपकार बताने लगे, लेकिन किसी की भी समझ में नहीं आया कि कृष्ण के हाथ से उस वैरिन वाँसुरी को छीन कर जला दे, क्योंकि वह उसी का तो प्रभाव था, जिसके कारण वह गोप वधू पागल हो गई थी ।

विशेष—वासुरी के प्रभाव का प्रभावोत्पादक वर्णन है ।

पाठान्तर—इस सवैया की द्वितीय पक्ति इस प्रकार भी मिलती है—

‘मात अघात न देवन पूजत सास सयानो सयानो पुकारै ।’

सवैया

कान्ह भए बस वाँसुरी के अब कौन सखि ! हमको चाहिहै ।

निसद्यौस रहे सग साथ लगी यह सौतिन तापन क्यौ सहिहै ॥

जिन मोहि लियौ मन मोहन को रसखानि सदा हमको दहिहै ।

मिलि आओ सब सखि ! भागि चलै अब तौ ब्रज में बसुरी रहिहै ॥११८॥

शब्दार्थ—कान्ह=कृष्ण । चाहिहै=चाहेगा, प्रेम करेगा । निसद्यौस=रात-दिन । तापन=दुखो को । दहिहै=जलती है, दुख देती है ।

अर्थ—कोई गोपी अपनी सखी से कृष्ण की बासुरी के प्रति सौतिया-डाह प्रकट करती है कि हे सखि ! कृष्ण तो अब बासुरी के वश में हो गये हैं, अतः अब हमें कौन प्यार करेगा ? अर्थात् कृष्ण तो केवल अपनी वाँसुरी को ही प्रेम करते हैं, वे हमसे प्रेम नहीं करेंगे । यह बासुरी रात-दिन उनके साथ लगी रहती है, अतः यह सौतिया दुख हमसे नहीं सहे जाते । इस वाँसुरी ने दूसरो का मन मोहने वाले कृष्ण का भी मन मोह लिया है, इसीलिए यह हमें सदैव दुख देती रहती है । इस दुख से छूटने का तो केवल यही उपाय है कि सारी सखियाँ इकट्ठी होकर ब्रज से भाग चले, क्योंकि अब तो ब्रज में यह बासुरी ही रहेगी ।

विशेष—१. नारी के सपत्नी-भाव की सुन्दर अभिव्यक्ति है ।

२. ‘मोहि लियौ मन मोहन को’ वाक्यांश विशेष महत्वपूर्ण है ।

तुलना—१. हम ब्रज बसिहैं तो वाँसुरी बसै न यह,
वासुरी बसाइ कान्ह हमें बिदा दीजिए ।

—शेख आलम

२. ‘धुनि सुनाय चेटक भरी, सुधि नसाय चित चैन ।

बंसी गिरघर घर बसी, हम घर बसी रहै न ॥’

—अज्ञात

सवैया

ब्रज की वनिता सब घेरि कहैं, तेरो ढारो विगारो कहा कस री ।
अरी तू हमको जम काल भई नैक कान्ह गही ती कहा रस री ॥
रसखानि भली विधि आनि वनी वसिवो नही देत दिसा दस री ।
हम तो ब्रज को वसिवोई तजौ बस री ब्रज वैरिन तू बसरी ॥ ११६ ॥

शब्दार्थ—ढारो=ढंग । जमकाल=मृत्यु ।

अर्थ—कृष्ण अपनी बांसुरी को बहुत प्रेम करते हैं । उसके प्रेम को देख-कर गोपियों के मन में उसके प्रति ईर्ष्या और जलन की भावनाएँ उत्पन्न हो गई हैं । अतः ब्रज की सारी नारियाँ बांसुरी को घेर कर उससे पूछती हैं कि हे बांसुरी ! हममें से किसने तेरा क्या विगाडा है जो तू हमारे लिए मृत्यु-काल के समान बन गई है ? अगर कृष्ण ने तुझे जरा सा छू लिया तो तुझे कौन सा भारी आनन्द प्राप्त हो गया । रसखान कवि कहते हैं कि गोपियाँ बांसुरी से कहने लगी कि अब तो हम इस परिणाम पर पहुँच गई हैं कि तू हमें यहाँ पर थोड़े दिन भी नहीं बसने देगी । हमने तो ब्रज में रहना ही छोड़ दिया है, इसलिए हे वैरिन बांसुरी, तू ही अब ब्रज में आनन्द से रह ।

विशेष—१. इस कवित्त में सौतभाव की सुन्दर अभिव्यक्ति है ।

२ अन्तिम पंक्ति में अनुप्रास का भावपूर्ण प्रयोग है ।

तुलना—‘मैंने छाड़्यो वृज को री वसिवी, तू ही या वृज में वंसी री ।’

—सूरदास

सवैया

बजी है बजी रसखानि बजी सुनिकै अब गोपकुमारी न जी है ।
न जी है कोऊ जो कदाचित् कामिनी कान में बाकी जु तान कुपी है ॥
कुपी है विदेस सदेस न पावति मेरी डव देह को मौन सजी है ।
सजी है ती मेरो कहा बस है सुतौ वैरनि बासुरी फेरि बजी है ॥ १२० ॥
शब्दार्थ—मैन=कामदेव ।

अर्थ—कृष्ण की बासुरी का प्रभाव-वर्णन करते हुए कवि रसखान कहते हैं कि कृष्ण की बासुरी बजने पर गोप-कुमारियों का जीवित रहना मुश्किल हो जाता है । जिस भी कामिनी के कानों में उस बशी की धुनि पड़ती है वह कदाचित् जीवित ही नहीं रह जाती; अर्थात् वशी के माधुर्य में इतनी तन्मय हो

जाती है कि वह स्वयं को ही भूल जाती है। किसी-किसी गोपी के मन में विरह की इतनी प्रबल वेदना जागृत हो जाती है कि वह अपने मन में कुपित होकर कहने लगती है कि प्रियतम कितना बुरा है जो विदेश में रह रहा है, पर उसने अभी तक अपना कोई भी संदेश नहीं भेजा, मेरे सारे शरीर में तो अब कामदेव का संचार हो गया है, अर्थात् मन में मिलन की उत्कठा बहुत अधिक बढ़ गई है। इस पर यह बैरिन बाँसुरी बजकर उस विरह वेदना को और भी अधिक उत्तेजित कर देती है। इसमें मेरा कोई वश नहीं है।

विशेष—१. सिंहावलोकन अलंकार का भावपूर्ण प्रयोग है।

२. 'तान कुँपी है' में भावोत्कर्षक शक्ति है।

तुलना—'कीजै कहा राम अब जैए केहि ठाम ऐ री,

फेरि वह बैरिन बजी है वन बासुरी।'

—द्विजदेव

सवैया

मोर-पखा सिर ऊपर राखिहौ गुंज की माला गरे पहिरौगी।

ओढि पितम्बर लै लकुटी बन गोधन ग्वारनि सग फिरौगी ॥

भाव तो वोहि मेरो रसखानि सो तेरे कहे सब स्वाँग करौगी।

या मुरली मुरलीधर की अधरान धरी अधरा न धरौगी ॥१२८॥

शब्दार्थ—मोर पखा=मोर-मुकुट। पितम्बर=पीला वस्त्र। भावतो=प्रिय। अधरान=ओठ। अधरा=नीचे।

अर्थ—कोई गोपी अपनी सखी से कहती है कि हे सखि! मैं मोर-मुकुट को अपने गिर के ऊपर पहनूँगी, गुंज की माला मैं पहनूँगी। पीला वस्त्र ओढ़ कर और हाथ में लाठी लेकर तथा ग्वालिन बनकर वन वन में गायों के पीछे फिरूँगी। कृष्ण मेरा प्रिय है और उसे प्राप्त करने के लिए तेरे कहने से सारा स्वाँग भर लूँगी, किन्तु कृष्ण की मुरली को, जो वे ओठों पर रखे रहते हैं, नीचे नहीं धरूँगी।

विशेष—अंतिम पंक्ति में यमक अलंकार है।

कालिय दमन

कवित्त

आपनो सो ढोटा हम सब ही को जानत है,

दोऊ प्राणी सब ही के काज नित धावही।

ते तो रसखानि अब दूर ते तमासो देखै,
 तरनितनूजा के निकट नहि आवही ।
 आन दिन बात अनहितुन सो कहौ कहा,
 हितू जेऊ आए ते ये लोचन दुरावही ।

कहा कहौ आली खाली देत सब ठाली, पर
 मेरे वनमाली को न काली तें छुरावही ॥१२२॥

शब्दार्थ—ढोटा=पुत्र । तरनितनूजा=यमुना । अनहितुन=बुरी ।
 हितू=मित्र । वनमाली=कृष्ण ।

अर्थ—यशोदा अपनी सखी से कालिय-दमन का वर्णन करती हुई कहती है कि हे सखि ! हम (नद और यशोदा) दोनों सभी गोपों को अपना-सा ही पुत्र समझते हैं और दोनों प्रतिदिन दूसरों के काम को दौड़ आते हैं; अर्थात् सदैव दूसरों की सहायता में तत्पर रहते हैं । रसखान कहते हैं कि वे ही लोग जिनकी हमने सदा सहायता की, अब दूर से ही तमाशा देख रहे हैं । कोई भी यमुना के निकट नहीं आता । न जाने किसी दिन हमने किससे क्या बुरी बात कह दी कि जो मित्र थे, वे भी अब आँखें चुरा रहे हैं; अर्थात् कोई भी कृष्ण की सहायता के लिए आगे नहीं बढ़ रहा है । हे सखि ! मैं तुमसे क्या कहूँ । वैसे तो सब लोग कार्य-निवृत्त है, पर मेरे कृष्ण को कोई भी कालिय नाग से नहीं छुड़ा रहा है ।

विशेष—यशोदा की भययुक्त आतुरता का स्वाभाविक वर्णन है ।

पाठान्तर—इस कवित्त की पाँचवी और छठी पक्ति इस प्रकार भी मिलती है—

‘अदिन परे ते अनहितू सब भये लोग,
 यहै तो अजोग देखि लोचन दुरावही ।’

सवैया

लोग कहैं ब्रज के रसखानि अनदित नंद जसोमति जू पर ।
 छोहरा आजु नयो जनम्यौ तुम सो कोऊ भाग भर्यौ नहि भू पर ॥
 वारि कै दाम सँवार करौ अपने अपवाल कुचाल ललू पर ।
 नाचत रावरो लाल गुजाल सो काल सो व्याल-कपाल के ऊपर ॥१२३॥

शब्दार्थ—छोहरा=पुत्र, कृष्ण । दाम=घन । अपचाल कुचाल=दुर्दिन ।

ललू पर=कृष्ण पर । व्याल-कपाल=नाग का सिर ।

अर्थ—कृष्ण को कालिय नाग के सिर पर नृत्य करते हुए देखकर ब्रज के लोग आनन्दित नन्द और यशोदा से कहते हैं कि तुम्हारे पुत्र ने आज नया जन्म लिया है, अतः इस भूमण्डल पर तुम जैसा कोई भाग्यशाली नहीं है । तुम धन का दास देकर तथा उसे कृष्ण पर न्यौछावर करके अपने दुर्दिनों को नष्ट कर लो । अब चिन्ता की कोई बात नहीं है, क्योंकि तुम्हारा पुत्र कालिय नाग के सिर के ऊपर नाच रहा है; अर्थात् इसने नाग को पूर्णतया अपने वश में कर लिया है ।

विशेष—तत्कालीन सामाजिक परम्पराओं की ओर संकेत इस संवैया में दृष्टिगोचर होते हैं ।

तुलना— 'जनम को चाली ऐरी अद्भुत है ख्याली आजु,
काली की कनाली पै नचत बनमाली है ।'
—पद्माकर

चीर हरण संवैया

• एक समै जमुना-जल में सब मज्जन हेत धसी ब्रज-गोरी ।
त्यों रसखानि गयो मनमोहन लै कर चीर कदम्ब की छोरी ॥
न्हाइ जबै निकसी बनिता चहु ओर चितै चित रोष करो री ।
हार हिये भरि भावन सो पट दीने लला वचनामृत वोरी ॥१२८॥

शब्दार्थ—मज्जन हेत=नहाने के लिए । छोटी=चोटी । रोष=क्रोध ।
वचनामृत=अमृत जैसे सुखद वचन । वोरी=झूब गई ।

अर्थ—चीरहरण लीला का वर्णन करते हुए रसखान कवि कहते हैं कि एक समय की बात है कि सब ब्रज की स्त्रियाँ नहाने के लिए यमुना के जल में उतरी । तभी उनके वस्त्रों को लेकर श्रीकृष्ण कदम्ब वृक्ष की चोटी पर चढ़ गये । स्नान करके जब वे स्त्रियाँ बाहर निकली और चारों ओर देखने पर भी अपने वस्त्रों को न पा सकी तो क्रुद्ध हो गई । जब उन्होंने अपनी हार स्वीकार कर ली तो अनेक प्रकार के प्रेमपूर्ण भावों से भरकर कृष्ण ने उनके वस्त्र लौटा दिये और उनसे जो प्रेमपूर्ण बातें की, उनके अमृत जैसे सुखद वचनों को सुनकर सारी स्त्रियाँ आनन्द में झूब गई ।

प्रेमासक्ति

सवैया

प्राण वही जु रहै रिभि वा पर रूप वही जिहि वाहि रिभायी ।
सीस वही जिन वे परसे पद अक वही जिन वा परसायी ॥
दूध वही जु दुहायी री वाही दही सु सही जु वही ढरकायी ।
और कहाँ लौ कहाँ रसखानि री भाव वही जु वही मन भायी ॥१२५॥

शब्दार्थ—सरल है ।

अर्थ—कोई गोपी अपनी सखी से कहती है कि वे ही प्राण हैं जो कृष्ण पर रीझ जाये, वही रूप है जो कृष्ण को रिभाले । वही सिर है जो कृष्ण के चरणों का स्पर्श करे, हृदय वही है जिससे कृष्ण का स्पर्श किया गया हो । वही दूध है जो कृष्ण ने दुहा है, वही दही है जो उसने बिखेरी है । रसखान कवि कहते हैं कि और कहाँ तक कहूँ, भाव भी वही है जो कृष्ण को अच्छा लगता है ।

कहने का अभिप्राय यह है कि इन्द्रियों की और भावों की सार्थकता तभी है जब वे कृष्ण को या तो अपनी ओर आकृष्ट कर सकें, अथवा उसकी ओर आकृष्ट हो जायें ।

सवैया

देखन की सखी नैन भए न सवै तन आवत गाइन पाछै ।
कान भए प्रति रोम नही सुनिवे की अमीनिधि बोलनि आछै ॥
ए सजनी न सम्हारि भरै वह वांकी विलोकनि कोर कटाछै ।
भूमि भयी न हियो मेरी अली जहाँ हरि खेलत काछनी काछै ॥१२६॥

शब्दार्थ—अमीनिधि=अमृत-सागर । कटाछै=कटाक्ष । अली=सखी ।

अर्थ—कोई गोपी अपनी सखी से अपनी अभिलाषा प्रकट करती हुई कहती है कि कृष्ण गायों के पीछे आ रहे हैं । अच्छा होता कि मेरे सारे शरीर में नैन होते, ताकि मैं उसकी गोभा को पूरी तरह देख पाती । अमृत-सागर से भरे हुए वह जो मीठे वचन बोलता है, उन्हें सुनने के लिए मेरे रोम-रोम में कान क्यों नहीं हो गये । हे सखि ! उसकी कटाक्ष भरी हुई सुन्दर चितवन संभालने से संभाली नहीं जाती, अर्थात् उसका प्रभाव बिना पड़े नहीं रह पाता । हे सखि ! मेरा हृदय वह पृथ्वी क्यों नहीं बन गया, जहाँ काछनी

पहनकर कृष्ण खेलते हैं ।

तुलना—१. 'देखिबे को स्याम सोम देतो दृग रोम-रोम,
कीनो सो न बिधि औ अविधि कीनी पलके ।'

—सोमनाथ

२. 'चाहित जुगल किसोर लखि, लोचन जुगल अनेक ।'

—बिहारी

३. 'कीजै कहा राम, स्याम आनन बिलोकिबे को,
विरचि विरचि न अनन्त अंखिया दई ।'

—पद्माकर

सवैया

मोरपखा मुरली बनमाल लखे हिय को हियरा उमह्यौ री,
ता दिन ते इन बैरिनि को कहि कौन न बोल कुबोल सह्यौ री ॥
तौ रसखानि सनेह लग्यौ कोउ एक कह्यौ कोउ लाख कह्यौ री ॥
और तौ रग रह्यौ न रह्यौ इक रग रंगी सोह रग रह्यौ री ॥१२१॥

शब्दार्थ—मोरपखा=मोर-पखो का मुकुट । उमह्यौ=उमड़ रहा है ।

बोल-कुबोल=अच्छी-बुरी । रसखनि=आनन्द-सागर कृष्ण । रग=आदत ।
रंग=प्रेम ।

अर्थ—कोई गोपी कृष्ण के प्रति अपने प्रेम का वर्णन अपनी सखी से करती हुई कहती है कि जिस दिन से मैंने मोर-पखो का मुकुट, मुरली और बनमाल को धारण करने वाले कृष्ण को देखा है और मेरे हृदय का भी हृदय उमड़ रहा है, उस दिन से इन बैरिन बदनामी करने वाली स्त्रियों की कौन-सी ऐसी अच्छी और बुरी बात है, जो मैंने नहीं सही । जब आनन्द-सागर कृष्ण से प्रेम हो ही गया है तो चाहे कोई एक कहे या लाख कहे, यह प्रेम नहीं छूट सकता । मुझे और तो आदत रही चाहे न रही, पर कृष्ण के प्रेम में इस प्रकार रग गई हूँ कि अब यही रग शेष रह गया है ।

विशेष—१. यमक, छेकानुप्रास अलंकारों का भाव पूर्ण प्रयोग है ।

२ प्रेम की मान्यता वर्णित है ।

पाठांतर—इस सवैया की अंतिम दो पक्तियाँ इस प्रकार भी मिलती हैं—

'अब तो रसखान सो नेह लग्यौ कोउ एक कह्यो किन लाख कह्यौ री ।
और सो रंग रह्यौ न रह्यौ इक रग रंगीले सो रंग रह्यौ री ।'

जुलना—१. 'तुम गाँवरे नाँवरे कोऊ घरो हम साँवरे र ग र गी सो रंगी ।'

२. 'अव कोऊ कितैऊ कहै किनरी जु ही स्याम के रंग रंगी सो रंगी ।'

—द्विजदेव

३. 'रंग दूसरो और चढैगो नही अलि साँवरो र ग र ग्यी सो र ग्यी ।'

—हरिश्चन्द्र

सवैया

वन वाग तडागनि कु जगली अखियाँ सुख पाइहै देखि दर्ई ।

अव गोकुल माँझ विलोकियैगी वह गोप सभाग सुभाय रई ॥

मिलिहै हँसि गाइ कवै रसखानि कवै ब्रजवालनि प्रेम भई ।

वह नील निचोल के घूँघट की छवि देखवी देखन लाज लई ॥१२८॥

शब्दार्थ—सभाग=भाग्यशाली । रई=युक्त । निचोल=वस्त्र । लाज-लई=लज्जा युक्त ।

अर्थ—कोई गोपी अपनी अभिलाषा प्रकट करती हुई कहती है कि हे सखि ! कृष्ण को वन में, वाग में, तडागों में और कुज-गलियों में देखकर तो मेरी आँखों ने सुख प्राप्त कर लिया है, अब मेरी इच्छा यह है कि उस भाग्य-शाली सुन्दरता से मुक्त कृष्ण को गोकुल के बीच कब देखूँगी । वह कृष्ण प्रेममयी, ब्रज-वालाओं के मध्य में कब हँसकर तथा मिलकर रासलीला करेगा ? और मैं कब अपने पीले वस्त्र के घूँघट के बीच से लज्जायुक्त होकर उसकी शोभा देखूँगी ।

पाठान्तर—वन वाग तडागन कु ज गली अखियाँ सुख पाइ है देखि दर्ई ।

कव गोकुल माँझ विलोकहिगी छवि सो वह गोप सभा गरई ।

मिलि हैं हँसि गारी दै कै रसखान कवै ब्रज वालनि प्रेम मई ।

वह नील निचोल के घूँघट की कव देखवी देखन लाज लई ॥

सवैया

काल्हि पर्यो मुरली-धुनि मैं रसखानि जू कानन नाम हमारो ।

ता दिन ते नहि धीर रखौ जग जानि लयो अति कीनी पँवारो ॥

गाँवन गाँवन मैं अव ती वदनाम भई सब सो कै किनारो ।

ती सजनी फिरि फेरि कहीं पिय मेरो वही जग ठोकि नगारो ॥१२९॥

शब्दार्थ—काल्हि=कल । कानन=कानो में । पँवारो=भँभट । सब सो

कै किनारो=सब से ही किनारा कर लिया, सबसे अलग हो गई। ठोकि नगारो=नगारा बजाकर।

अर्थ—मुरली के प्रभाव का वर्णन करती हुई एक गोपी अपनी सखी से कह रही है कि हे सखि ! कल आनन्द-सागर कृष्ण के द्वारा मुरली में लिया हुआ मेरा नाम जब मेरे कानों में पड़ा तो उसी दिन से (उसी समय से) मेरे मन का धैर्य जाता रहा। सारे संसार को यह मालूम हो गया है कि मैंने अपनी जान को भंगट पाल लिया है। कृष्ण से प्रेम करने के कारण अब तो मैं प्रत्येक गाँव में बदनाम हो गई हूँ, इसीलिए सबसे अलग भी हो गई हूँ। इसीलिए हे सजनी ! मैं तुझ से फिर उसी बात को दोहराती हूँ कि कृष्ण ही मेरा प्रियतम है। इस बात को मैं संसार में नगारा पीटकर कह रही हूँ।

विशेष—इस सवैया में 'सब सो कै किनारो,' और 'ठोकि नगारो' मुहावरों का भावपूर्ण प्रयोग है।

सवैया

देखि ही आँखिन सो पिय को अरु कानन सो उन बैन को प्यारी ।
वाके अनगनि रंगनि की सुरभीनि सुगन्धनि नाक मैं डारो ॥
त्यों रसखानि हिये मैं धरौ वहि सांवरी मूरति मैं उजारी ।
गाँव भरौ कोउ नाँव धरौ पुनि सांवरी हो बनिहो सुकुमारी ॥१३०॥

शब्दार्थ—कानन सो=कानों से। सुरभीनि सुगन्धनि=नाना प्रकार की सुगन्धियों की गन्ध। मैं-उजारी=कामदेव से सुन्दर। नाव धरौ=नाम करो, निन्दा करो।

अर्थ—कोई गोपी अपनी सखी से कृष्ण के प्रति अपने प्रेम का वर्णन करती हुई कहती है कि मैं अब इन अपनी आँखों से केवल प्रियतम कृष्ण का ही दर्शन करूँगी और इन कानों से केवल उनकी प्रिय बामुरी को ही सुनूँगी। उसके बाँके कामदेव जैसी छवि की नाना प्रकार की सुगन्धियों की गन्ध को अपनी नाक में डालूँगी। इस प्रकार मैं उस आनन्द सागर की कामदेव से भी सुन्दर मूर्ति को अपने हृदय में धारण करूँगी। अब चाहे गाँव के सारे निवासी मेरी कितनी ही निन्दा करें मैं कृष्ण के प्रति अपने अचल अनुराग को नहीं छोड़ूँगी।

सवैया

तुम चाहो सो कहौ हम तो नन्दवारे के संग ठईं सो ठईं ।

तुम ही कुलवीने प्रवीने सवै हम ही कुछ छाडि गईं सो गईं ।

रसखान यो प्रीत की रीत नई सु कलंक की मोटै लईं सो लईं ।

यह गाव के वासी हँसै सो हँसै हम स्याम की दासी भई सो भई ॥१३१॥

शब्दार्थ—नन्दवारे के संग=कृष्ण के साथ । ठईं सो ठईं=दृढ़ संकल्प करके मिल चुकी है । कुलवीने=कुलवान । मोटै=गठरियाँ ।

अर्थ—गोपिया किसी अन्य गोपी से जो उन्हें कृष्ण प्रेम से विरत करना चाहती है, कहती है कि तुम जो चाहो हम को कह लो, लेकिन हम तो दृढ़ संकल्प करके कृष्ण के साथ मिल चुकी हैं, अर्थात् उससे प्रेम-सम्बन्ध स्थापित कर चुकी हैं । तुम ही सब प्रकार से कुलवती और प्रवीण सही, पर हमने तो कुल की मर्यादा को तिलाजलि दे दी है । हमारे प्रेम की यह रीति नहीं है, हमें जो भी वदनामी की गठरिया मिली हैं, उन्हें हमने सहर्ष स्वीकार कर लिया है । अब चाहे हमारे ग्राम के निवासी हम पर कितना ही हँसें, पर हम तो कृष्ण की दासी बन ही चुकी हैं ।

विशेष—१. गोपियों के अनन्य प्रेम की सुन्दर व्यंजना है ।

२. वीप्सा अलंकार का प्रयोग प्रभावोत्पादक है ।

३. यह सवैया श्री विश्वनाथ प्रसाद मिश्र द्वारा सम्पादित 'रसखान-ग्रन्थावली' में नहीं है ।

सवैया

मोर पखा धरे चारिक चारु विराजत कोटि अमेठनि फँटो ।

गुंज छरा रसखान विसाल अनग लजावत अंग करैटो ।

ऊँचे अटा चढि एड़ी ऊँचाइ हितौ हुलसाय कै हौंस लपेटो ।

हौ कव के लखि हौ भरि आँखिन आवत गोघन धूरि धूरैटो ॥१३२॥

शब्दार्थ—चारिक=चार-एक अर्थात् थोड़े-से । कोटि अमेठनि फँटो=करोड़ो पेचो से युक्त पगड़ी । गुंजछरा=गुंज की माला, एक आभूषण विशेष ।

अनग=कामदेव । अग करैटो=स्याम शरीर । हौंस=अभिलाषा । भरि आँखिन=आँखों में भरकर । गोघन धूर धूरैटो=गौओं की धूल से भूसरित ।

अर्थ—शाम को घर लौटते हुए कृष्ण की शोभा का वर्णन कोई गोपी-

अपनी सखी से करती हुई कह रही है कि हे सखि ! वह सिर पर थोड़े-से मोर-पंखों का मुकुट धारण किए हुए है । उनकी करोड़ों पेचों से युक्त पगड़ी अत्यन्त शोभायमान हो रही है । उनके हृदय पर पड़ी हुई विशाल गुंजमाला तथा श्याम शरीर कामदेव को भी लज्जित करता है । मैंने उन्हें ऊँची अटारी पर चढ़ कर तथा उचक कर हृदय में हुलस कर अनेक अभिलाषाओं से युक्त होकर देखा है । मैं गौओं की धूल से धूसरित होकर आते हुए कृष्ण को बहुत देर से आँखें भरकर देख रही हूँ ।

विशेष—१ तृतीय पक्ति में औत्सुक्य भावों की सुन्दर योजना है ।

२. यह सवैया श्री विश्वनाथप्रसाद मिश्र सम्पादित 'रसखान ग्रथावली' में नहीं है ।

सवैया

कु जनि कु जनि गु ज के पुंजनि मजु लतानि सौ माल बनैबो ।

मालती मल्लिका कुंद सौ गुंदि हरा हरि के हियरा पहिरैबो ॥

आली कबै इन भावने भाइन आपुन रीझि कै प्यारे रिझैबो ।

माइ भकै हरि हाँकरिबो रसखानि तकै फिरि कै मुसकैबो ॥१३३॥

शब्दार्थ—पु जनि=समूह । हरा=हार । आली=सखी । भावने भाइन=प्रिय भाव । हाकरिबौ=पुकारना ।

अर्थ—कोई गोपी अपनी सखी से अपनी अभिलाषा प्रकट करती हुई कहती है कि कु ज-कु ज के गुंजों के समूहों को इकट्ठा करके उनकी सुन्दर लताओं से माला बनाऊँगी । मालती मल्लिका और कुंदों से हार गूँथकर कृष्ण के हृदय पर पहनाऊँगी, हे सखि ! न जाने कब इन प्रिय भावों से स्वयं ही रीझकर अपने प्रिय कृष्ण को स्थिर पाऊँगी । मैं यथाशक्ति उन्हें पुकारूँगी, वे पीछे की ओर देखेंगे और तब मैं उनकी ओर मुड़कर पुरस्कार दूँगी ।

पाठान्तर—इस सवैया की चौथी पक्ति इस प्रकार भी मिलती है—

'पाइ लुकै दुरि हाँ करिबौ रसखान तकै फिरि कै मुसकैबो ।'

सवैया

सब धीरज क्यो न धरौ सजनी पिय तो तुम सो अनुरागेइगौ ।

जब जोग सँजोग को आन बनै तब जोग विजोग को मानेइगौ ।

निसर्चै निरवार घरी जिय मे रसखान सवै रस पावेइगी ।

जिनके मन सो मन लागि रहै तिनके तन मीं तन लागेइगी ॥१३४॥

शब्दार्थ — अनुरागेइगी = अवश्य प्रेम करेगा । निसर्चै = निश्चय । रस = आनन्द ।

अर्थ — कोई गोपी अपनी सखी को समझाती हुई कहती है कि हे सखि ! तू सब प्रकार से अपने मन में वैर्य धारण कर, क्योंकि एक न एक दिन प्रियतम कृष्ण तुमसे अवश्य प्रेम करेगा । जब मिलने का समय आयेगा तो वियोग की घड़ियाँ नष्ट हो जाएँगी । तुम निश्चय ही अपने हृदय में वैर्य धारण करो, क्योंकि तुम आनन्द-सागर कृष्ण से अवश्य आनन्द प्राप्त करोगी । जिसके मन में तेरा मन लगा हुआ है, उसके शरीर में भी तेरे शरीर का मिलन होगा ।

विशेष — यह सवैया श्री विश्वनाथप्रसाद मिश्र द्वारा सम्पादित 'रसखान-ग्रन्थावली' में नहीं है ।

सवैया

उनही के सनेहन सानी रहै उनही के जु नेह दिवानी रहै ।

उनही की सुनै न औ वैन त्याँ सैन सो चैन अनेकन ठानी रहै ॥

उनही सँग डोलन में रसखान सवै सुखसिन्धु अघानी रहै ।

उनही विन ज्याँ जलहीन ह्वै मीन सी आँखि मेरी असुवानी रहै ॥१३५॥

शब्दार्थ — सनेहन = प्रेम । सानी रहै = परिपूर्ण रहती है । अघानी = तृप्त ।

अर्थ — अपनी प्रेमावस्था का वर्णन करती हुई कोई गोपी अपनी सखी से कह रही है कि हे सखि ! मेरा मन उसी कृष्ण के प्रेम से परिपूर्ण रहता है, मैं उसी के प्रेम में पागल बनी हुई हूँ । मेरे कान केवल उसी की बातों को सुनते हैं, और किसी प्रकार की वाणी को नहीं सुनते । उनकी चितवन ही मुझे अनेक प्रकार से आनन्द प्रदान करती है । मैं उसी के साथ रहने में इतना मुख-सागर प्राप्त कर लेती हूँ कि पूर्णतया तृप्त हो जाती हूँ । उनके बिना मेरी आँखें आँसुओं में डूबकर इस प्रकार तड़पती रहती है जिस प्रकार पानी के बिना मछली ।

विशेष — १. आनन्द-भाव के प्रेम का वर्णन है ।

२. उपमा अलंकार ।

प्रेम-बन्धन

सवैया

चंदन खोर पै बिन्दु लगाय कै कु जन ते निकस्यौ मुसकातो ।

राजत है बनमाल गरे अरु मोरपखा सिर पै फहरातो ।

मै जब ते रसखान बिलोकति ही कछु और न मोहि सुहातो ।

प्रीति की रीति मे लाज कहा सखि है सब सो बड नेह को नातो ॥१३६॥

शब्दार्थ—खोर=तिलक । नेह=प्रेम । बड=बड़ा, महत्वपूर्ण ।

अर्थ—कोई गोपी कृष्ण के प्रति अपने प्रेम का वर्णन करती हुई अपनी सखी से कह रही है कि हे सखि ! चन्दन के तिलक पर बिन्दी लगाकर कृष्ण मुस्कराता हुआ कु जो से निकला । उसके गले मे बनमाला सुशोभित थी और सिर पर मोर-पखो का मुकुट फहरा रहा था । मैने जब से आनन्द-सागर कृष्ण की इस शोभा को देखा है तब से मुझे कुछ भी अच्छा नहीं लगता । हे सखि ! प्रेम की रीति मे लज्जा त्याज्य है, क्योंकि प्रेम का सम्बन्ध सबसे बड़ा सम्बन्ध है ।

विशेष—यह सवैया श्री विश्वनाथप्रसाद मिश्र द्वारा सम्पादित 'रसखान-गथावली' मे नहीं है ।

सवैया

कौन को लाल सलोनी सखी वह जाकी बडी अँखियाँ अनियारी ।

जोहन वक बिसाल के बाननि बेधत है घट तीछन भारी ॥

रसखानि सम्हारि परै नहि चोट सु कोटि उपाय करे सुखकारी ।

भाल लिख्यौ विधि हेत को बधन खोलि सकै ऐसो को हितकारी ॥१३७॥

शब्दार्थ—लाल=पुत्र । सलोनी=सुन्दर । अनियारी=विलक्षण । जोहन=दृष्टि । विधि=ब्रह्मा । हेत=प्रेम ।

अर्थ—कोई गोपी अपनी सखी से कृष्ण के विषय मे पूछती है कि हे सखि ! यह सुन्दर पुत्र किसका है जिसकी बडी बडी विलक्षण आँखे हैं । यह विशाल वंक दृष्टि रूपी भारी तीक्ष्ण बाणो से हृदय को वेधता है । रसखान कहते हैं कि चाहे कोई करोडो सुखकारी उपाय करे, पर इन बाणो की चोट को नहीं संभाल सकता । यदि भाग्य मे ब्रह्मा ने प्रेम का बंधन लिख दिया हो तो ऐसा कोई भी हितकारी नहीं है जो इस बधन को खोल सके ।

विशेष—अंतिम पंक्ति में विवशता के माध्यम से प्रेम की दृढ़ता का वर्णन है।

नेत्रोपालम्भ

सवैया

अली पगे रँग जे रँग सावरे मो पै न आवत लालची नैना ।

धावत है उतही जित मोहन रोके रुकै नहि धूँघट रोना ॥

काननि की कल नाहि परै सखी प्रेम सो भीजे मूर्त विन वैना ।

रसखानि भई मधु की मखियाँ अब नेह को बँधन बधी हूँ छूटै ना ॥१३८॥

शब्दार्थ—अली=सखी । रग=प्रेम । ऐना=घर । काननि की=कानों को । कल=चैन ।

अर्थ—कोई गोपी अपनी मन्त्री से अपने प्रेम का वर्णन करती हुई कहती है कि हे सखि ! मेरे ये लालची नेत्र कृष्ण के प्रेम में इस प्रकार बन्दी हो गये हैं कि अब ये मेरे वश में नहीं रहे । ये जिस ओर भी कृष्ण को देखते हैं, उसी ओर दौड़ने लगते हैं और धूँघट के घर में भी नहीं रुकते, अर्थात् चाहे जितना आवरण इनके ऊपर डाला जाये, ये उस आवरण को भेद कर भी कृष्ण की ओर दौड़ते हैं । हे सखि ! प्रेम से भीगे हुए वयनों को सुने बिना इन कानों को चैन नहीं मिलता, अर्थात् ये कान प्रेय की मधुर बातों को सुनने के लिए सदैव आकुल रहते हैं । रसखान कहते हैं कि मेरी ये आँखें शहद की मखियाँ बन गई हैं, अतः अब प्रेम का बन्धन किस प्रकार छूट सकता है ? कहन का भाव यह है कि जिस प्रकार शहद की मखियाँ अपने ही बनाये हुए शहद में बन्दी हो जाती हैं, उसी प्रकार मेरे नेत्र अपने द्वारा ही उत्पन्न किये गये प्रेम में बन्दी बन गये हैं ।

विशेष—१. अंतिम पंक्ति में रूपक अलंकार है ।

२ आँखों को मधु मक्खी बताना बहुत ही भावपूर्ण है ।

सवैया

श्री वृषभान की छान धुजा अटकी लरकान ते आन लई री ।

वा रसखान के पानि की जानि छुडावति राधिका प्रेममई री ।

जीवन मूरि सी नेज लिये इनहूँ चितयो उनहूँ चितई री ।

लाल लली दृग जोरत ही सुरभानि गुडी उरभाय दई री ॥१३९॥

शब्दार्थ—छान=छत । धुजा=ध्वजा । पानि=हाथ । जीवन-मूरि=सजीवनी बूटी के समान ।

अर्थ—राधा और कृष्ण के प्रेम का वर्णन करती हुई कोई गोपी अपनी सखी से कहती है कि हे सखि ! वृषभानु की छत पर जो ध्वज (पतंग) आकर अटकी थी, वह अन्य लड़को ने आकर ले ली । उस पतंग को आनन्द-सागर कृष्ण के हाथों की जानकर प्रेममयी राधा उसे उनसे छुड़ाने लगी । इसी समय राधा ने सजीवनी बूटी के समान जीवनदायक तथा बरछी के समान चोट करने वाली दृष्टि से कृष्ण की ओर देखा, तथा कृष्ण ने राधा की ओर देखा । राधा और कृष्ण की आँखें मिलते ही वह सुलभने वाली पतंग की डोर और भी अधिक उलभ गई ।

विशेष—१. 'जीवन मूरि सी नेज लिये' में विरोधाभास अलंकार है ।

२ गुडी के माध्यम से प्रेमाभिव्यजना की परिपाटी रीतिकाल में प्रचलित थी । उदाहरण के लिए बिहारी का यह दोहा प्रस्तुत है—

‘उडति गुडी लखि ललन की आँगना अँगना माँह ।

बौरी लौ दौरी फिरति छुवति छबीली छाँह ॥’

३ यह सवैया श्री विश्वनाथप्रसाद मिश्र द्वारा सम्पादित ‘रसखान-ग्रन्थावली’ में नहीं है ।

तुलना—१. हौ भुकि के जु लगी सुरभावन, पूँछत ठोडी गहै है तू कोरी ।

ब्रह्म कहै उरभै सुरभै नहि, छूटत गाँठ न टूटत डोरी ॥’

—ब्रह्म कवि

२. ‘बिसरी सिगरी सुधि ता छन तै,

कछु ऐसिऐ डीठि की फाँस धली ।

कढि केसन के सुरभाइवै कौ,

मनमोहन सो उरभाय चली ॥’

—द्विजदेव

सवैया

आई सबै ब्रज-गोप लली ठिठकी ह्वै गली जमुना-जल न्हाने ।

औचक आइ मिले रसखानि बजावत वेनु सुनावत ताने ॥

हा हा करी सिसकी सिगरी मति मैं हरी हियरा हुलसाने ।

छूमै दिवानी अमानी चकोर सो ओर सो दोऊ चलै दृग बाने ॥१४०॥

शब्दार्थ—व्रज-गोपलली=व्रज की वनिताएँ । ग्रीचक=अचानक । मैन=कामदेव । अयानी=परिणाम पर विचार न करने वाली । बाने=बाप ।

अर्थ—एक गोपी अपनी सखी से कह रही है कि जब सारी व्रज-वनिताएँ यमुना में स्नान करने के लिए आईं तो गली में आकर ठिठक गई, क्योंकि उन्हें अचानक ही आनन्द-सागर कृष्ण मिल गया जो वंशी बजाकर मधुर तानें सुनाने लगा । उसे देखकर सब हा-हा करने लगी और सिसकने लगी । उनकी बुद्धि कामदेव ने हरण कर ली और वे अपने मन में प्रसन्न होने लगी । वे कृष्ण-प्रेम में चकोर की भाँति ऐसी पागल होकर भूमने लगी कि उसके परिणाम पर भी उन्होंने विचार नहीं किया । दोनों ओर से नयन-वाण चलने लगे ।

विशेष—उपमा अलंकार ।

कवित्त

छूट्यौ गृह काज लोक लाज मन मोहिनी को,
भूल्यौ मन मोहन को मुरली बजाइवौ ।
देखो रसखान दिन द्वै मे वात फैलि जै है,
सजनी कहाँ लौ चन्द हाथन दुराइवौ ।
कालि ही कलिन्दी कूल चितयौ अचानक ही,
दोउन को दोऊ ओर मुरि मुसिकाइवौ ।
दोऊ परै पैया दोऊ लेत है बलैया, इन्हे,
भूल गई गैया उन्हे गागर उठाइवौ ॥१४१॥

शब्दार्थ—कहाँ लौ चन्द हाथन दुराइवौ=चन्द्रमा को कहाँ तक हाथों से छिपाया जा सकता है । कलिन्दी-कूल=यमुना का किनारा । पैया=पैर ।

अर्थ—कोई गोपी अपनी सखी से राधा-कृष्ण-मिलन का वर्णन करती हुई कहती है कि हे सखि ! जब राधा और कृष्ण का मिलन हुआ तो राधा गृह-कार्यों को तथा लोक-लज्जा को भूल गई । कृष्ण अपनी बाँसुरी बजाना भूल गए । उनके इस मिलन की बात कुछ ही समय में सब जगह फैल जायेगी, क्योंकि चन्द्रमा को कहाँ तक और कब तक हाथों से छिपाया जा सकता है । कल ही यमुना के तट पर अकस्मात् दोनों ने एक दूसरे को देखा, दोनों एक दूसरे की ओर मुड़कर मुस्कुराये । दोनों एक दूसरे के पैर पड़े और दोनों ही आपस में बलैया लेने लगे । इस प्रेम-व्यापार में दोनों ही इतने तन्मय हुए कि

कृष्ण अपनी गायो को चराना भूल गए और राधा अपनी जल से भरी हुई गागर को उठाना भूल गई ।

विशेष—लोकोक्ति अलंकार ।

सम्पादित—‘रसखान-ग्रथावली’ में नहीं है ।

तुलना—‘बसी को बजैवौ नट नागर को भूल गयो,
नागरि को भूल गयो गागर को भरिबौ ।’

—काशिराम

पाठान्तर—‘ए रही आजु काल्हि सब लोक लाज त्यागि दोऊ,
सीखे है सब विधि सनेह सरसाइबो ।
यह रसखानि दिना द्वै मै बात फैलि जैहै,
कहाँ लौ सयानी चन्दा हाथन छिपाइबो ।
आजु हौ निहार्यौ बीर निपट कलिन्दी-तीर,
दोउन को दोउन सो मुरि मुस्काइबो ।
दोउ परै पैयाँ दोऊ लेत है बलैया, उन्है
भूलि गई गैया इन्है गागर उचाइबो ।’

सवैया

मजु मनोहर मूरि लखै तबही सबही पतही तज दीनी ।
प्राण पखेरु परे तलफै वह रूप के जाल में आस-अधीनी ॥
आँख सो आँख लडी जबही तब सो ये रहै आँसुवा रँग भीनी ।

या रसखानि अधीन भई सब गोप-लली तजि लाज नवीनी ॥१४२॥

शब्दार्थ—मजु=सुन्दर । मूरि=मूल । पतही=प्रतिष्ठा को, पत्तो को ।

अर्थ—कोई गोपी अपनी सखी से कृष्ण के रूप-प्रभाव का वर्णन करती हुई कहती है कि हे सखि ! उस कृष्ण-रूपी सुन्दर और मनोहर मूल को देखकर सभी गोपियो ने अपनी प्रतिष्ठा-रूपी पत्तो को छोड़ दिया है, इसी कारण उनके प्राण-रूपी पक्षी रूप-रूपी जाल में पड़े हुए तडप रहे हैं और जीवन की आशा उसके अधीन हो गई है; अर्थात् गोपियों को जिलाना और मारना कृष्ण के हाथ में आ गया है । जब से कृष्ण की आँखों से गोपियों की आँखें मिली हैं, तभी से ये आँखें निरन्तर आँसुओं से भरी रहती हैं । सारी युवती गोप-कन्याएँ अपनी लज्जा को छोड़कर आनन्द-सागर कृष्ण के अधीन हो गई हैं ।

सवैया

नन्द को नन्दन है दुखकन्दन प्रेम के फन्दन वाँधि लई ही ।
 एक दिना ब्रजराज के मन्दिर मेरी अली इक वार गई ही ॥
 हेर्यौ लला लचकाइ कै मोतन जोहन की चकडोर भई ही ।
 दौरी फिरौ दृग डोरनि मैं हिय मैं अनुराग की बेलि बई ही ॥१४३॥

शब्दार्थ—दुखकन्दन=दुख देने वाला । जोहन की=देखने की । चकडोर
 =चकई नाम के खिलौने की डोर ।

अर्थ—कोई गोपी अपनी सखी से कृष्ण के प्रेम के प्रभाव का वर्णन करती हुई कहती है कि हे सखि ! कृष्ण बहुत दुख देने वाले है । उन्होंने मुझे भी अपने प्रेम के बन्धन में बाँध लिया है । एक दिन मैं कृष्ण के मन्दिर में गई थी, और उस दिन प्रथम बार ही मैं वहाँ गई थी कि कृष्ण ने लचका कर मेरी ओर देखा, मैं तो उनकी दृष्टि के लिए चकई की डोर ही बन गई, अर्थात् जिस प्रकार चकई पर डोर बार-बार लिपट जाती है, उसी प्रकार वे मुझे बार-बार देखते रहे । तभी से मैं आँख की चकडोर से चकई की भाँति दौड़ी फिर रही हूँ और मेरे हृदय में कृष्ण के प्रति प्रेम की बेल फूट निकली है ।

विशेष—१ 'दुखकन्दन' का लाक्षणिक प्रयोग है ।

२ 'हेर्यौ लला लचकाइ कै मोतन, में शारीरिक प्रेम की ओर संकेत है ।

३. रूपक अलंकार ।

सवैया

तीरथ भीर में भूलि परी अली छूट गई नेकु धाय की वाँही ।
 हौ भटकी भटकी निकसी सु कुटुम्ब जसोमति की जिहि घाँही ।
 देखत ही रसखान मनौ सु लग्यौ ही रह्यौ कव को हियराँही ।
 भाँति अनेकन भूली हुती उहि द्यौस की भूलनि भूलत नाँही ॥१४४॥

शब्दार्थ—अली=सखी । धाय=घात्री, पालन-पोषण करने वाली ।

घाँही=स्थान, घर । हियराँही=हृदय में । द्यौस=दिन ।

अर्थ—कोई गोपी अपनी सखी से कृष्ण-मिलन का वर्णन करती हुई कहती है कि हे सखि ! मैं अकस्मात् भूलकर तीर्थ-यात्रियों की भीड़ में जा घुसी और घात्री की बाँह मेरे हाथ से छूट गई । मैं भटकती हुई उस ओर जा निकली, जहाँ यशोदा जी का घर (डैरा) था । मुझे देखते ही आनन्द-सागर कृष्ण मेरे हृदय से इस प्रकार लग गया जैसे वह न जाने कब का इस हृदय से लगा हुआ

था । मैं अनेक प्रकार की भूल कर चुकी थी, जिन्हे मैं भूल गई, पर उस दिन जो भूल कृष्ण-मिलन का कारण हुई थी, वह भुलाए नहीं भूली जाती ।

विशेष—यह सबैया श्री विश्वनाथ प्रसाद मिश्र द्वारा सम्पादित 'रसखान-अथावली' में नहीं है ।

सबैया

समुझें न कछू अजहूँ हरि सो ब्रज नैन नचाइ नचाइ हँसै ।
नित सास की सीरी उसासनि सौ दिन ही दिन माइ की काति नसै ।
चहुँ ओर बवा की सौ सोर सुनै मन मेरेऊ आवति री सकसै ।
पै कहा करौ वा रसखानि विलोकि हियो हुलसै हुलसै हुलसै ॥१४५॥

शब्दार्थ—सोर=बदनामी । सकसै=उलझ । हुलसै=प्रसन्न होना ।

अर्थ—कोई गोपी अपनी सखी से कृष्ण के प्रति अन्य गोपी के आकर्षण को व्यक्त करती हुई कहती है कि हे सखी ! वह आज भी कुछ नहीं समझती, चरन् कृष्ण को देखकर ब्रज में आँखें नचा-नचाकर हँसने लगती है । नित्य सास की ठडी साँसों से उस गोपी की काति दिन-दिन क्षीण होती जा रही है । मैं बाबा की सौगन्ध खाकर कहती हूँ कि चारों ओर उसकी बदनामी को सुनकर मेरे मन में उलझन पैदा हो गई है । लेकिन क्या करूँ, उस आनन्द-सागर कृष्ण को देखकर उसका हृदय बार-बार हुलसने लगता है, अर्थात् वह अपनी बदनामी की चिन्ता न करके बराबर कृष्ण में अनुरक्त है ।

विशेष—अन्तिम पंक्ति में 'हुलसै' शब्द की आवृत्ति भावों में तथा प्रभाव में अभिवृद्धि का कारण है ।

सबैया

मारग रोकि रह्यौ रसखानि के कान परी भनकार नई है ।
लोग चितै चित दै चितए नख तै मन माहि निहाल भई है ।
ठोढी उठाइ चितै मुसकाइ मिलाइ कै नैन लगाइ लई है ।
जो बिछिया बजनी सजनी हम मोल लई पुनि बेचि दई है ॥१४६॥

शब्दार्थ—नख ते=नख से शिख तक, पूर्ण रूप से । निहाल=प्रसन्न ।

बिछिया=पैर का एक आभूषण ।

अर्थ—कोई गोपी अपनी सखी से कहती है कि हे सखि ! आनन्द-सागर कृष्ण ने राधा का मार्ग रोका और उसके कानों में एक नवीन भकार पड़ी ।

उस भंकार को लोगो ने चित्तपूर्वक सुना और राधा भी उसकी भंकार सुनकर पूर्ण रूप से प्रसन्न हो गई। कृष्ण ने उसकी ठोड़ी उठाकर देखा और उसकी ओर मुस्कराये तथा उन दोनों के नेत्रों से नेत्र मिले। हे सजनी ! जो बजने वाली विछिया हमने खरीदी थी, अर्थात् हमारी क्रीतदासी थी, उसीने हमें कृष्ण के हाथ बेच डाला। अर्थात् उसी की ध्वनि सुनकर कृष्ण हमारे पास आते रहे और हमारा प्रेम अगाढ़ होता रहा।

सवैया

जमुना-तट वीर गई जब ते तव तें जग के मन माँझ तहौ ।

ब्रज मोहन गोहन लागि भटू हौ लटू भई लूट सी लाख लहौ ।

रसखान लला ललचाय रहे गति आपनी ही कहि कासो कहौ ।

जिय आवत यो अवतों सद भाँति निसक ह्वै अक लगाय रहौ ॥१४७॥

शब्दार्थ—वीर=सखी। तहौ=जलती हूँ, ईर्ष्या का कारण बन गई हूँ। गोहन=साथ। भटू=सखी। लटू भई=मुग्ध हो गई। लूट सी लाख लहौ=लाखों की सम्पत्ति (प्रेम-सम्पदा) लूट में प्राप्त कर ली। अंक=हृदय।

अर्थ—कोई गोपी अपनी सखी से कृष्ण के प्रति अपने प्रेम का वर्णन करती हुई कहती है कि हे सखि ! जब से मैं यमुना-तट पर गई हूँ और वहाँ कृष्ण से मिलन हुआ है, तब से सारा ससार मुझ से ईर्ष्या करने लगा है। हे सखि ! मैं कृष्ण के साथ रहकर इतनी मुग्ध हो गई कि लाखों की प्रेम-सम्पत्ति मुझे लूट में ही मिल गई। तब से आनन्द-सागर कृष्ण मुझे अपनी ओर इतना अधिक आकृष्ट कर रहे हैं कि मैं अपनी इस अवस्था का वर्णन किसी से भी नहीं कर सकती। अब तो मेरे मन में यही आता है कि मैं ससार के और समाज के सारे बन्धनों को छोड़कर तथा निर्भय होकर कृष्ण के हृदय से लगी रहूँ।

विशेष—यह सवैया श्री विश्वनाथप्रसाद मिश्र द्वारा सम्पादित 'रसखान-ग्रन्थावली' में नहीं है।

सवैया

औचक दृष्टि परे कहूँ कान्हू जू तासो कहै ननदी अनुरागी ।

सो सुनि सास रही मुख मोहि जिठानी फिरै जिय मैं रिस पागी ।

नीके निहारि कै देखे न आँखिन हौ कवहूँ भरि नैन न जागी ।

भो पछितावो यहै जु सखी कि कलक लग्यौ पर अक न लागी ॥१४८॥

शब्दार्थ—अचक=अचानक । अनुरागी=प्रेमिका । रिस=क्रोध ।
भरि नैन न जागी=आँखों में छवि भरकर जागने का अवसर भी नहीं मिला ।
अक=हृदय ।

अर्थ—कोई गोपी अपनी सखी से कह रही है कि हे सखि ! अचानक ही कृष्ण मुझे दिखाई पड़ गये और मैं उन्हें देखने लगी । इसी पर ननद ने मेरी यह बदनामी फैला दी कि मैं कृष्ण में अनुरक्त हूँ और उनकी प्रेमिका हूँ । इस बदनामी को सुनकर सासु ने मुझ से मुँह मोड़ लिया है और जिठानी क्रोध में भर कर फिर रही है । हे सखि ! तू अच्छी प्रकार से मेरी आँखों में भाँक कर देख, तब तुझे पता चलेगा कि मैं कभी भी इन आँखों में कृष्ण के रूप की छवि भरकर नहीं जागी हूँ । हे सखि ! मुझे केवल यही पछतावा है कि कृष्ण-प्रेम का मुझे कलक तो लग गया है, पर मैं कभी भी उसके हृदय से नहीं लग पाई हूँ ।

विशेष—अन्तिम पक्ति में यमक अलंकार ।

तुलना—‘लागे कलकहूँ अक लगे नहि तो सखि भूल हमारी महा है ।’

—हरिश्चन्द्र

सवैया

सास की सास नहीं चलिबो चलियै निसिद्यौस चलावै जिही ढग ।

आली चबाव लुगाइन के डर जाति नहीं न नदी ननदी-सग ।

भावती औ अनभावती भीर मैं छवै न गयी कबहूँ अंग सो अग ।

घैरु करै घरुहाई सवै रसखानि सौ मो सौ कहा कै भयो रग ॥१४६॥

शब्दार्थ—सासनही=आदेश के अनुसार । निसिद्यौस=रात-दिन ।
चबाव=बदनामी की चर्चा । भावती=प्रिय । अनभावती=अप्रिय । घैरु=
बदनामी । घरुहाई=बदनाम करने वाली स्त्रियाँ । रग=प्रेम ।

अर्थ—कोई गोपी अपनी सखी से कृष्ण के प्रति अपने प्रेम का उल्लेख करते हुए कहती है कि यद्यपि मैं सासु के आदेश के अनुसार ही चलती हूँ । वह रात-दिन जिस प्रकार चलाती है, उसी प्रकार चलती हूँ, अर्थात् हर प्रकार से प्रत्येक समय उसकी आज्ञा का पालन करती हूँ । अन्य नारियों के द्वारा बदनामी की चर्चा के डर से मैं अपनी ननदी के साथ नदी के किनारे भी नहीं जाती । प्रिय तथा अप्रिय भीड़ में भी मेरा शरीर कभी भी उसके शरीर से छुआ नहीं है । फिर भी बदनाम करने वाली सभी स्त्रियाँ मेरी बदनामी

करती है । आनन्द-सागर कृष्ण के साथ मेरा प्रेम क्या हुआ मानो एक आफत ही मैंने मोल ले ली ।

विशेष—इन पक्तियों में प्रेमिका गोपी का भोलापन अंकित है ।

सवैया

घर ही घर घैरु घनो घरिही घरिहाइनि आगै न साँस भरौ ।

लखि मेरियै ओर रिसाहि सवै सतराहि जी सी हैं अनेक करौ ।

रसखानि तो काज सवै ब्रज ती रो मेवरी भयी कहि कासो लरौ ।

विनु देखे न क्यों हूँ निमेषै लगै तेरे लेखे न हूँ या परेखे मरौ ॥१५०॥

शब्दार्थ—घरही घर=प्रत्येक घर में । घैरु=वदनामी की चर्चा । घरिही=घड़ी भर में ही । घरिहाइनि=वदनामी करने वाली । सीहै=सौगन्ध । तो काज=तेरे कारण । निमेषै=पलक । परेखे=पछतावे ।

अर्थ—कोई गोपी कृष्ण से अपनी विवश स्थिति का वर्णन करती हुई कहती है कि तुम्हारे प्रेम के कारण प्रत्येक घर में घड़ी भर में ही मेरी बहुत अधिक वदनामी फैल गई है जिसके कारण मैं वदनाम करने वाली स्त्रियों के सामने साँस भी नहीं भर सकती । यदि मैं अपने को निर्दोष सिद्ध करने के लिए अनेक सौगन्ध खाती हूँ तो वे भृकुटी चढ़ाकर तथा मेरी ओर देखकर क्रोध करती हैं । हे आनन्द-सागर कृष्ण । तेरे कारण मारा ब्रज मेरा शत्रु बन गया है । तुम्हीं बताओ अब मैं किस-किस से लड़ती फिरूँ । तुम्हारे देखे बिना और तुम्हें देखते समय मेरी पलक नहीं लगती, अर्थात् न तो मुझे तुम्हारे वियोग में चैन है और न तुम्हारे मिलन में । इसी पछतावे में मैं मर रही हूँ ।

विशेष—१. प्रेमजन्य विवश स्थिति का मार्मिक वर्णन है ।

२. प्रथम पक्ति में अनुप्रास और यमक का सुन्दर प्रयोग है ।

३. अन्तिम पक्ति में विरोधाभास अलंकार ने भावों के प्रभाव को द्विगुणित कर दिया है ।

तुलना—१. 'देखे निरमोही के विसे में 'सेख' तोहि पिय,
लेखे नाहि तेरे सु परेखे माहि मरिये ।'

२. 'सबही सही नाडि कहीं कछु पै
तुव लेखे नहीं या परेखे मरी ।'

—शेख आलम

—हरिश्चन्द्र

दोहा

स्याम सघन घन घेरि कै, रस बरस्यौ रसखानि ।

भई दिवानी पानि करि, प्रेम-मद्य मन मानि ॥१५१॥

शब्दार्थ—स्याम=काला, कृष्ण । सघन=गहन, प्रेमपूर्ण । रस=जल, आनन्द । दिवानी=दिवानी । पानि करि=पीकर । प्रेम-मद्य=प्रेम रूपी शराब । मन मानि=छिककर, पूर्ण तृप्त होकर ।

अर्थ—कोई गोपी अपनी सखी से कहती है कि हे सखि ! गहन बादल रूपी प्रेमपूर्ण श्याम कृष्ण ने मेरे ऊपर जल रूपी आनन्द की वर्षा की और मैंने छिककर प्रेम रूपी शराब पी । उस शराब को पीकर मैं कृष्ण दिवानी हो गई ।

भाव यह है कि मैं कृष्ण के प्रेम में मदोन्मत्त बन गई हूँ ।

विशेष—श्लेष और रूपक अलंकार ।

सवैया

कोउ रिभावन कौ रसखानि कहै मुकतानि सो माँग भरौगी ।

कोऊ कहै गहनो अग-अग दुकूल सुगन्ध पर्यौ पहिरौगी ॥

तूँ न कहै न कहै तौ कहौ हौ कहूँ न कहौ तेरे पाँय परौगी ।

देखहि तूँ यह फूल की माल जसोमति-लाल निहाल करौगी ॥१५२॥

शब्दार्थ—मुकतानि सो=मोतियो से । दुकूल=वस्त्र । निहाल=प्रसन्न ।

अर्थ—कोई गोपी अपनी सखी से कह रही है कि हे सखि । आनन्द-सागर कृष्ण को रिभाने के लिए कोई गोपी तो यह कहती है कि मैं अपनी भौहो में मोतियो को पिरोऊँगी, कोई कहती है कि मैं अपने अग-अग पर आभूषण पहनूँगी और कोई कहती है कि मैं अपने वस्त्रों को सुन्दर एवं मादक गन्ध से परिपूर्ण कर लूँगी । यदि तू किसी से मेरी बात न बताये और इस बात का वचन दे तो मैं तुझे बताये देती हूँ कि मैं तो इस फूल-माला से ही यशोदा-पुत्र कृष्ण को प्रसन्न कर लूँगी ।

कहने का भाव यह है कि कृष्ण को फूल-माला ही सर्वोत्तम प्रिय है, किन्तु इस बात को अन्य गोपियाँ नहीं जानती ।

विशेष—तृतीय पक्ति में शब्द-योजना अनुपम है ।

सवैया

प्यारी पै जाइ कितौ परि पाइ पची समझाइ सखी की सी बैना ।
 वारक नन्दकिशोर की ओर कह्यौ दृग छोर की कोर करै ना ।
 ह्वै निकस्यौ रसखान कहूँ उत डीठ पर्यौ पियरो उपरैना ।
 जीव सो पाय गई पचिवाय कियौ रुचि नेह गये लचि नैना ॥१५३॥

शब्दार्थ—कितौ=कितना ही । परि पाउ=पैरो में पड़कर । पची
 समझाई=समझाकर थक गई । सी=सौगन्ध । वारक=एक बार । डीठ
 पर्यौ=दिखाई दिया । पियरो=पीला । उपरैना=वस्त्र । पचिवाय=वात
 रोग शान्त हुआ । गये लचि नैना=नेत्र लज्जा के कारण झुक गये ।

अर्थ—कोई गोपी अपनी सखी से कृष्ण के प्रति आकृष्ट किसी अन्य
 गोपी की प्रेम-दशा का वर्णन करती हुई कहती है कि हे सखि ! मैं तुम्हारी
 सौगन्ध खाकर कहती हूँ कि मैंने अपनी उस प्रिय सखी के पास जाकर और
 उसके पैरो में पड़कर यह बात इतनी बार कही कि मैं समझाते-समझाते थक
 गई । मैंने उससे कहा कि एक बार भी तुम कृष्ण की ओर अपनी आँखों की
 पलकें न उठाना । परन्तु उसकी विवशता यह है कि जब भी कृष्ण बाहर
 निकलते हैं और उनके पीले वस्त्र पर उसकी दृष्टि पड़ती है, तभी उसमें
 नवीन जीवन का-सा संचार होता हो, उसका वात रोग शान्त हो जाता है
 वह कृष्ण के प्रति मनोहर प्रेम का प्रदर्शन करने लगती है और इसी कारण
 लज्जा से उसके नेत्र झुक जाते हैं ।

विशेष—यह सवैया श्री विश्वनाथप्रसाद मिश्र द्वारा सम्पादित 'रसखान-
 ग्रन्थावली' में नहीं है ।

सवैया

सखियाँ मनुहारि कै हारि रही भृकुटी को न छोर लली नच्यौ ।
 चहुँघा घन घोर नयौ उनयौ नभ नायक ओर चितै चितयौ ।
 विकि आप गई हिय मोल लियौ रसखान हितु न हियो रिभ्यौ ।
 सिगरो दुख तीछन कोटि कटाछन काटि कै सौतिन बाँटि दियौ ॥१५४॥

शब्दार्थ—मनुहारि कै=अनुनय-विनय करके । नच्यौ=नीचा किया ।
 उनयौ=घिर आया । नायक=श्रीकृष्ण से तात्पर्य है ।

अर्थ—कोई गोपी अपनी सखि से किसी अन्य मानवती गोपी का वर्णन
 करती हुई कहती है कि हे सखि ! सारी सखियाँ उस मानवती गोपी की

अनुनय-विनय करती हुई थक गई, पर उसके क्रोध में, तनिक भी अन्तर नहीं आया। अचानक चारों ओर से आकाश में नवीन घन घिर आया। इस उद्दीपक वातावरण के कारण उस गोपी का ध्यान कृष्ण की ओर गया। वह स्वयं ही बिक गई और उसके प्रियतम कृष्ण ने उसे मोल ले लिया, अर्थात् वह पूर्णतया उसके वश में हो गई। इस प्रकार कृष्ण ने अन्य प्रेमिकाओं के हृदय को रिक्का लिया। तब उस मानवती गोपी ने अपना सारा दुख अपने तीक्ष्ण कटाक्षों के द्वारा दूर करके अपनी सौतो में बाँट दिया; अर्थात् उसे कृष्ण के साथ देखकर अन्य सपत्नी गोपियों को दुःख हुआ।

विशेष—१ प्रहर्षण अलंकार।

२ यह सवैया श्री विश्वनाथप्रसाद मिश्र द्वारा सम्पादित 'रसखान-ग्रन्थावली' में नहीं है।

सवैया

खेलै अलीजन के गन मैं उत प्रीतम प्यारे सो नेह नवीनो।

बैननि बोध करै इत कौ उत सैननि मोहन को मन लीनो।

नैननि की चलिबी कछु जानि सखी रसखानि चितैवे कौ कीनो।

जा लखि पाइ जभाइ गई चुटकी चटकाइ विदा करि दीनो ॥१५५॥

शब्दार्थ—अलीजन=सखियों का समूह। बैननि=वचनो से। चलिबी=चलना।

अर्थ—कोई गोपी अपनी सखी से किसी क्रियाविदग्धा गोपी का वर्णन करती हुई कहती है कि वह सखियों के समूह में खेल रही है, पर उस ओर प्रियतम कृष्ण के साथ उसका नवीन अनुराग हुआ था। वह वचनो से तो इस ओर का बोध करा रही थी, परन्तु सैनो से उस ओर चलने का संकेत करके कृष्ण के मन को अपनी ओर आकर्षित कर रही थी। हे सखि! उसकी आँखों को चलता हुआ देखकर आनन्द-सागर कृष्ण ने उसकी ओर ध्यान दिया। कृष्ण को अपनी ओर आकर्षित देखकर उसने जँभाई ली और चुटकी बजाकर उसे विदा किया, अर्थात् संकेत से ही अभिसार-स्थल को बता दिया।

विशेष—जो नायिका चातुर्य से कार्य करके अपनी इच्छा को पूर्ण करने में—नायक को संकेत स्थल पर ले जाने में—सफल होती है, उसे क्रियादिराधा कहते हैं।

तुलना—१. 'कहत नटत रीभक्त खिभक्त मिलत खिलत लजियात।

भरे मौन में कहत है नयन ही सो बात ॥'

२ 'ललन-चलनु सुनि पलनु में अँसुवा भलके आइ ।
भई लखाइ न सखिनु हूँ भूठै ही जमुहाइ ॥'

—विहारी

सवैया

मोहन के मन भाइ गयौ इक भाइ सो ग्वालिनै गोधन गायौ ।
ताको लग्यौ चट, चौहट सो दुरि औचक गात सो गात छुवायौ ॥
रसखानि लही इनि चातुरता चुपचाप रही जब लो घर आयौ ।
नैन नचाइ चितै मुसकाइ सु ओट ह्वै जाइ अँगूठा दिखायौ ॥१५६॥

शब्दार्थ—गोधन=गोचारण का गीत । चट=मन । औचक=अचानक ।

अर्थ—कोई गोपी अपनी सखी से प्रेमलीला का वर्णन करती हुई कहती है कि जब ग्वालिन ने मधुर स्वर से गोचारण का गीत गाया तो वह कृष्ण को बहुत अच्छा लगा और साथ ही गाने वाली गोपी के प्रति आकृष्ट हो गये । ग्वालिन ने अचानक लज्जा के कारण अपना शरीर अपने शरीर में छिपा लिया; अर्थात् वह लज्जा के कारण सिमट गई । रसखान कहते हैं कि उसने इतनी चतुरता से कार्य किया कि जब तक उसका घर नहीं आया तब तक तो वह चुपचाप रही और जब उसका घर आ गया तो वह आँखें नचाकर, मुस्कराकर और ओट में होकर कृष्ण को अँगूठा दिखाकर अपने घर में घुस गई ।

विशेष—अनुभावो की सुन्दर योजना है ।

सवैया

कान परे मृदु बैन मरु करि मौन रही पल आधिक साधे ।
नद बवा घर को अकुलाय गई दधि लै विरहानल दाधे ।
पाय दुहूनि प्राननि प्रान सो लाज दवै चितवै दृग आधे ।
नैननि ही रसखान सनेह सही कियो लेउ दही कहि राधे ॥१५७॥

शब्दार्थ—मरु करि=कठिनाई से । आधिक=आधा । विरहानल दाधे=विरह की आग से दग्ध होकर । दवै=भयभीत होकर । चितवै=देखना ।

अर्थ—कोई गोपी अपनी सखी से राधा के प्रेम की आकुलता का वर्णन करती हुई कहती है कि जब राधा के कान में कृष्ण के सुन्दर शब्द पड़े तो

वह कठिनता से आधे पल तक तो चुपचाप रही, फिर अकुलाकर और विरह की आग से दग्ध होकर नद बाबा के घर गई। वहाँ पर उसे कृष्ण मिले। वे दोनों एक-दूसरे को अपने प्राणों के समान प्यार करते थे। दोनों ने एक-दूसरे को आधी दृष्टि से देखा और फिर वे लज्जा के कारण भयभीत हो गये। इस प्रकार उन दोनों ने अपना प्रेम आँखों के द्वारा ही पक्का कर लिया। तब 'दही लो' राधा ने यह आवाज लगानी शुरू कर दी।

विशेष—यह सवैया श्री विश्वनाथप्रसाद मिश्र द्वारा सम्पादित 'रसखान-ग्रन्थावली' में नहीं है।

सवैया

केसरिया पट, केसरि खौद, बनौ गर गुज को हार ढरारो।
को हौ जू आपनी या छवि सो जु खरे अँगना प्रति डीठि न डारो।
आनि विकाऊ से होइ रहे रसखानि कहै तुम्ह रोकि दुवारो।
'है तौ विकाऊँ जौ लेत वनै हँसबोल तिहारो है मोल हमारो' ॥१५८॥

शब्दार्थ—पट=वस्त्र। खौर=तिलक। ढरारो=सुन्दर। अँगना=नारी। हँसबोल=हँस कर बातें करना।

अर्थ—कोई गोपी अपनी सखी से कृष्ण के सौन्दर्य का वर्णन करती हुई कहती है कि हे सखि ! वह केसरिया रंग के वस्त्र धारण किए हुए है, मस्तक पर केसरी रंग का तिलक लगा हुआ है, गले में गुँजो का सुन्दर हार पहने हुए है। इस ब्रज में कौन ऐसी नारी है जो इस शोभा को देखकर इस पर अपनी दृष्टि नहीं डालेगी, अर्थात् सभी नारियाँ इस शोभा को देखे बिना नहीं रह सकेगी। यदि तुम्हारा द्वार रोककर वह तुमसे यह कहे कि मैं विकने के लिए हूँ और मेरा मूल्य तुम्हारा हँसकर बात करना है तो तुम भी अन्य जैसी हो जाओगी, अर्थात् अपनी सुधि-बुधि भूलकर उनके सामने पूर्ण आत्मसमर्पण कर दोगी।

सवैया

एक समय इक ग्वालनि को ब्रजजीवन खेलत दृष्टि पर्यौ है।
बाल प्रवीन सकै करि कै सरकाइ कै मौरन चीर धर्यौ है ॥
यौ रस ही रस ही रसखानि सखो अपनो मन भायो कर्ष्यौ है।
नन्द के लाडिले ढाँकि दै सीस इहा हमरो वरु हाथ भर्यौ है ॥१५९॥
शब्दार्थ—ब्रजजीवन=कृष्ण। सकै करि कै=बलपूर्वक।

अर्थ—कोई गोपी अपनी सखी से मिलन-लीला का वर्णन करती हुई कहती है कि हे सखि ! एक समय एक गोपी ने कृष्ण को खेलते हुए देखा । वह वाला था और कृष्ण चतुर थे, अतः कृष्ण ने बलपूर्वक अपने सिर से मोर-मुकुट उतार कर उसके सिर पर रख दिया । हे सखि ! इस प्रकार कृष्ण ने आनन्द-पूर्वक अपनी मनोकामना पूर्ण की । तब उस गोपी ने कहा—हे नन्द के प्रिय पुत्र, हमारा सिर ढँक दो, क्योंकि हमारा हाथ तो खाली नहीं है, अतः हम स्वयं अपना सिर ढँकने में असमर्थ हैं ।

पाठांतर—इस सवैया की दूसरी पंक्ति इस प्रकार भी मिलती है—

‘वाल प्रवीन प्रवीनता कै सरकाय काँधे लै चीर धर्यौ है ।’

सवैया

मैं रसखान की खेलनि जीति कै मालती माल उतार लई री ।
मेरीये जानि कै सूधि सबै चुप ह्वै रही काहु करी न खई री ।
भावते स्वेद की वास सखी ननदी पहिचानि प्रचड भई री ।
मैं लखिवौ लखि कै आँखियाँ मुसकाय लचाय नचाय दई री ॥१६०॥

शब्दार्थ—खेलनि जीति कै=खेल में जीत कर । मेरीये=मेरी ही है ।
सूधि=भोली । खई=भगडा । भावते=प्रेम के । स्वेद=पसीना । प्रचड=अत्यन्त क्रुद्ध ।

अर्थ—कोई गोपी अपनी सखी से कहती है कि हे सखि ! मैंने खेल में आनन्द-सागर कृष्ण को जीत कर उसकी मालती की माला लेकर स्वयं पहन ली । मेरी भोली सखियो ने यह समझकर कि यह माला मेरी ही है, मुझसे कोई भगडा नहीं किया, अर्थात् किसी प्रकार के व्यग्र नहीं कसे । उस माला में से प्रेम-पसीने की सुगंध की पहिचान कर मेरी ननद मुझ पर अत्यन्त क्रुद्ध हुई । तब मैंने हँसकर, आँखों को नीचा करके और नचाकर, अर्थात् अपनी आँखों से अपने प्रेम-भाव को सूचित करके वह माला मैंने उन्हे ही वापिस कर दी ।

विशेष—यह सवैया श्री विश्वनाथप्रसाद मिश्र द्वारा सम्पादित ‘रसखान-ग्रन्थावली’ में नहीं है ।

सवैया

ब्रजभान के गेह दिवारी के द्यौस अहीर अहीरनि भीर भई ।
जितही तितही धुनि गोधन की सब ही ब्रज ह्वै रह्यौ राग मई ॥

रसखान तबै हरि राधिका यो कछु सैननि ही रस बेल बई ।
 उहि अंजन आँखनि आँज्यौ भटू इन कु कुम आड लिलार दई ॥१६१॥
 शब्दार्थ—द्यौस=दिन । राग मई=रागपूर्ण, प्रेमानन्द से परिपूर्ण । बई
 =उत्पन्न हुई । उहि=कृष्ण ने । भटू=सखी । आड=तिलक । लिलार=
 मस्तक ।

अर्थ—कोई गोपी अपनी सखी से राधा-कृष्ण के मिलन का वर्णन करती
 हुई कहती है कि हे सखि ! वृषभानु के घर दिवाली के दिन अहीर और
 अहीरनियों की भारी भीड़ हुई । सब ओर से गोचारण के गीत गाये जा रहे
 थे जिनके कारण समूचा ब्रज प्रेमानन्द से परिपूर्ण हो रहा था । उसी समय
 कृष्ण और राधा के मध्य नेत्रों के कुछ ऐसे भकेत हुए जिनके कारण उनके
 हृदयों में आनन्द देने वाली प्रेम-बेल उत्पन्न हुई । अपने प्रेम को साकेतिक
 रूप से प्रकट करने के लिए कृष्ण ने अपनी आँखों में अंजन लगाया और राधा
 ने अपने मस्तक पर कु कुम का तिलक लगाया । अंजन लगा कर कृष्ण ने सकेत
 से राधा को यह बताया कि मैं तुम्हें अंजन की भाँति सदैव अपनी आँखों में
 रखूँगा, और तिलक लगाकर राधा ने यह प्रकट किया कि तुम्हारे कारण ही
 मेरा सौभाग्य बना रहेगा ।

विशेष—यह सवैया श्री विश्वनाथप्रसाद मिश्र द्वारा सम्पादित 'रसखान-
 ग्रथावली' में नहीं है ।

सवैया

वात सुनी न कहूँ हरि की, न कहूँ हरि सो मुख बोल हँसी है ।
 काल्हि ही गोरस बेचन कौ निकसी ब्रजवासिनि बीच लसी है ॥
 आजु ही वारक 'लेहु दही' कहि कै कछु नैनन में बिहसी है ।
 वैरिनि बाहि भई मुसकानि जु वा रसखानि के प्रान वसी है ॥१६२॥
 शब्दार्थ—काल्हि ही=कल ही । गोरस=दही । लसी=सुशोभित होना ।
 वारक=एक बार ।

अर्थ—कृष्ण-प्रेम में व्याकुल किसी गोपी का वर्णन एक गोपी अपनी सखी
 से करती हुई कहती है कि हे सखि ! उसने तो कभी कृष्ण की बात भी नहीं
 सुनी, न कभी उसने हँसकर कृष्ण से बातें की हैं । यह तो कल ही दही बेचने
 के लिए निकली थी और ब्रजवासियों के मध्य सुशोभित हो रही थी । आज

ही वह एक बार यह कह कर कि 'दही लेओ' वह आँखो ही आँखो में कुछ मुसकरा दी थी। उसकी वही मुसकराहट उसके लिए वैरिन बन गई और वह आनन्द-सागर कृष्ण के प्राणों में बस गई, अर्थात् कृष्ण उस पर मुग्ध हो गये।

सवैया

ग्वालिन द्वैक भुजान गहै रसखानि कौ लाई जसोमति पाहै ।
लूटत है कहै ये वन मैं मन मैं कहै ये सुख-लूट कहाँ है ॥
अग ही अंग ज्यों ज्यों ही लगै त्यों त्यों ही न अग ही अग समाहै ।
वे पछलै उलटे पग एक तौ वै पछलै उलटे पग जाहै ॥१६३॥
शब्दार्थ—पाहै=पास। न अग ही अग समाहै=अपने अंगों में नहीं समाती है, अर्थात् अत्यन्त प्रसन्न होती है।

अर्थ—दो-एक ग्वालिन ने कृष्ण को बाँहों से पकड़कर यशोदा जी के पास ले गई और उनसे कृष्ण की शिकायत करने लगी कि इनसे पूछो कि ये वन में और मन में हमें लूटते हैं। भला इनसे इनको क्या सुख मिलता है? हमारे अंग से ज्यों-ज्यों इनका शरीर छूता है तो ऐसे आनन्द का अनुभव होता है कि हम अपने अंगों में ही नहीं समाती, अर्थात् अत्यन्त प्रसन्न होती है। गोपियाँ यदि एक पग लौटती हैं तो ये लौटकर उनके मार्ग को घेर लेते हैं।

विशेष—उपालम्भ के माध्य से कृष्ण के प्रति गोपियों के अमित प्रेम का वर्णन है।

सवैया

दूर ते आई दुरे ही दिखाइ अटा चढि जाइ गह्यौ तहाँ आरौ ।
चित्त कहूँ चितवै कितहूँ, चित्त और सो चाहि करै चखवारौ ॥
रसखानि कहै यहि बीच अचानक जाइ सिढी चढि खास पुकारौ ।
सूखि गई सुकुवार हियो हनि सैन पटू कह्यौ स्याम सिधारौ ॥ १६४॥
शब्दार्थ—चितवै=देखना। सिढी=सीढ़ी। भटू=सखी।

अर्थ—दूर से आते हुए कृष्ण को दिखाकर किसी गोपी ने अपनी सखी से कहा कि अटारी पर चढ़ कर देखो कि कृष्ण कहाँ आ गया है। यह सुन कर वह सखी ऊपर गई, पर उसका मन कहीं था और वह देख किसी और ओर रही थी (क्योंकि उसके मन में डर था कि घर के लोग उसे देख न ले।) रसखान कहते हैं कि जब वह कृष्ण को देख रही थी तो इसी बीच अचानक सिढ़ी

पर चढ़कर उसकी सासु ने उसे आकर पुकारा । इस भय से कि कहीं सासु ने उन्हे देख तो नहीं लिया है, वह कोमलांगी भय के मारे सूख गई, उसका हृदय धडकने लगा । उसकी भयग्रस्त दशा को देखकर उसकी सखी ने आँखों के इशारे से ही बता दिया कि कृष्ण चला गया है, अतः डरने की कोई बात नहीं है ।

पाठान्तर—इस सवैया की द्वितीय पक्ति इस प्रकार भी मिलती है—

‘चित्त कहूँ चितवै कितहूँ चित चोर सो चाहि करै चख चारौ ।’

सुलना—‘ताही समै औचक ही चढ़ि परकारी ‘सेख’

सासु आनि अनजानि नीचे ते पुकारिये ।

मूरछि मृगाछी गिरी हियो हनि हाथनि सो ।

नैनन सो कह्यौ हा हा स्याम जू सिधारिये ॥’

—शेख आलम

दोहा

वक बिलोकनि हसनि मुरि, मधुर बैन रसखानि ।

मिले रसिक रसराज दोउ, हरखि हिये रसखानि ॥ १६५ ॥

शब्दार्थ—वक बिलोकनि=वक्र दृष्टि । हरखि=हर्षित होकर ।

अर्थ—मिलन का वर्णन करते हुए रसखान कहते हैं कि वक्र दृष्टि से मुड़कर हँसते हुए और मधुर वचन बोलते हुए आनन्द सागर कृष्ण हृदय में हर्षित होकर राधा से इस प्रकार मिले मानो रसिक और रसराज दोनों मिल गये हों ।

विशेष—उत्प्रेक्षा अलंकार ।

प्रेम-वेदना

सवैया

वह गोधन गावत गोधन मैं जब ते इहि मारग ह्वै निकस्यौ ।

तब ते कुलकानि कितीय करौ यह पापी हियो हुलस्यौ हुलस्यौ ॥

अब तौ जु भई सु भई नहि होत है लोग अजान हँस्यौ सुहँस्यौ ।

कोउ पीर न जानत जानत सो तिनके हिय मैं रसखानि बस्यौ ॥ १६६ ॥

शब्दार्थ—गोधन=गोचारण का गीत । गोधन मैं=गऊओं के समूह में ।
कितीय करौ=कितना ही करे, कितना ही रोके ।

अर्थ—कोई गोपी अपनी सखी से कृष्ण के प्रति अपने आकर्षण को व्यक्त करती हुई कहती है कि जब मे कृष्ण गोचारण के गीत गाता हुआ गौओं के समूह के साथ इस मार्ग से निकला है, तब से यह कुल की मर्यादा चाहे जितना रोकती है, पर यह पापी हृदय बार-बार हुलस रहा है। अब तो जो हो गया है, सो हो गया है, वह टल नहीं सकता, चाहे अजानी लोग कितना ही मुझ पर हँसे, मेरे हृदय की वेदना को कोई नहीं जानता, केवल वही जान सकता है जिसके हृदय में आनन्द-सागर कृष्ण बसा हुआ है, अर्थात् जिसे कृष्ण से प्रेम है।

विशेष—प्रथम पक्ति में यमक अलंकार है।

सवैया

वा मुसकान पै प्रान दियो जिय जान दियो वहि तान पै प्यारी ।
मान दियो मन मानिक के सग वा मुख मजु पै जोवनवारी ॥
वा तन की रसखानि पै री तन ताहि दियो नहि व्यान विचारी ।
सो मुँह मोरि करी अब का हए लाल लै आज समाज मे रवारी ॥१६७॥
शब्दार्थ—मजु=सुन्दर। आन=मर्यादा। रवारी=वदनामी।

अर्थ—कोई गोपी अपनी सखी से कहती है कि हे सखि ! मैंने कृष्ण की मुरकराहट पर अपने प्राणों को न्योछावर कर दिया था। उसकी मधुर वांसुरी की तान पर अपने जी को न्योछावर कर दिया था। अपने मन रूपी मोती के साथ ही मैंने अपना सम्मान भी उन्हें सौंप दिया था; अर्थात् प्रेम के कारण जो वदनामी होगी, उसकी भी मैंने तनिक भी चिन्ता नहीं की थी। उसके सुन्दर मुख पर मैंने अपने यौवन को न्योछावर कर दिया था। उसके शरीर पर मैंने अपना शरीर वार दिया था। इस आत्म-समर्पण में मैंने अपनी कुल मर्यादा का भी विचार नहीं किया था। जिस कृष्ण के लिए समाज में मेरी वदनामी हुई है, वह कृष्ण अब मुझसे मुँह मोड़कर चला गया है। यह बड़े ही दुख की बात है।

विशेष—रूपक अलंकार।

सवैया

मोहन सो अटक्यो मनु री कल जाते परै सोई क्यो न बतावै ।
व्याकुलता निरखे विन मूरति भागति भूख न भूपन भावै ॥

देखे ते नेकु सम्हार रहै न तवै भुकि के लखि लोग लजावै ।

चैन नही रसखानि दुहूँ विधि भूली सबै न कछू बनि आवै ॥ १६८ ॥

शब्दार्थ—कल जातें परै=जिससे सुख हो । नेकु=तनिक ।

अर्थ—कोई गोपी अपनी सखी से कृष्ण के प्रति अपने प्रेम का वर्णन करती हुई कहती है कि हे सखि ! मेरा मन कृष्ण से लग गया है जिसके कारण मैं सदैव व्याकुल रहती हूँ । मेरी यह व्याकुलता नष्ट हो और मुझे सुख मिले, ऐसी विधि मुझे कोई नहीं बताता । कृष्ण की मूर्ति को देखे बिना मुझे व्याकुलता रहती है । भूख भाग जाती है, अर्थात् कुछ भी खाने को मन नहीं करता और न आभूषण ही मुझे अच्छे लगते हैं । किन्तु जब मैं उन्हें देख लेती हूँ तो अपने को तनिक भी नहीं सँभाल पाती, तब उसके सामने मुझे भुकी देखकर लोग मुझे लज्जित करते हैं । रसखान कहते हैं कि मुझे दोनों प्रकार से चैन नहीं है । उनके देखने पर और न देखने पर मैं सब कुछ भूल जाती हूँ और उस समय मुझे कोई उपाय नहीं सूझता ।

सर्वाया

भई वावरी हँडति वाहि तिया अरी लाल ही लाल भयी कहा तेरो ।

ग्रीवा ते छूटि गयी अबही रसखानि तज्यौ घर मारग हेरो ॥

डरियै कहै माय हमारी बुरी हिय नेकु न सूनो सहै छिन मेरो ।

काहे को खाइबो जाइबो है सजनी अनखाइबो सीस सहेरो ॥ १६९ ॥

शब्दार्थ—लाल=रत्न । लाल=कृष्ण । ग्रीवा=गर्दन, हृदय । माय=सासु । अनखाइबो=डॉट-फटकार । सहेरो=सहना ही पड़ेगी ।

अर्थ—कोई गोपी कृष्ण के विरह में पागल सी हो गई है । उसकी सखी उससे उस स्थिति का कारण पूछती है तो वह कुशलता से और वाते उसे बताती है । दूसरी सखी पूछती है कि हे सखि ! तुम पागल सी बनकर किसको हँड रही हो ? वह उत्तर देती है—मेरे हार का रत्न टूट कर गिर गया है । वह अभी-अभी मेरी गर्दन से छूट कर गिर गया है । मैंने घर तक का मार्ग ढूँढ़ लिया है, लेकिन वह मिला ही नहीं । यह सुन कर उसकी सखी कहती है—तब इसमें डरने की क्या बात है ? वह उत्तर देती है—मेरी सासु बहुत बुरी है, वह मेरे हृदय को क्षणभर के लिए भी सूना नहीं देख सकती । अब तो उसका पाना-पाना क्या है । अब तो मुझे सासु की डॉट-फटकार सहनी ही पड़ेगी ।

विशेष—१ वाग्वैदग्ध्य की सुन्दर योजना है।

२. लाल शब्द के प्रयोग में यमक अलंकार है।

सवैया

मो मन मोहन कों मिलि कै सबहीं मुसकानि दिखाइ दई।

वह मोहनी मूरति रूपमई सबही चितई तब ही चितई॥

उन ती अपने अपने घर की रसखानि चली विधि राह लई।

कछु मोहि को पाप पर्यी पल में पग पावत पौरि पहार भई॥ १७०॥

शब्दार्थ—रूपमई=सौन्दर्य युक्त। चितई=देखना। पग पावत पौरि पहार भई=पैदल अपने घर तक पहुँचना पहाड़ बन गया।

अर्थ—कोई गोपी अपनी सखी से कृष्ण के प्रति अपने अनुराग को व्यक्त करती हुई कहती है कि हे सखि ! मेरा मन जब मोहन के मन से मिला; अर्थात् जब मुझे कृष्ण के प्रति प्रेम हुआ तो सारी सखियाँ मुस्करा दीं। वास्तविकता तो यह है कि कृष्ण की सौन्दर्यमयी मूर्ति को जब सब अन्य सखियों ने देखा था तो मैंने भी देखा था। रसखान कहते हैं कि वे सब तो अपने-अपने घर अच्छी तरह से पहुँच गईं, पर मुझे ही पल भर में यह पाप लगा है कि पैदल अपने घर तक पहुँचना मेरे लिए पहाड़ बन गया, अर्थात् बहुत कठिन हो गया।

सवैया

डोलिवो कु जनि कु जनि को अरु वेनु वजाइवो वेनु चरैवो।

मोहिनी ताननि सो रसखानि सखानि के सग को गोधन गैवो॥

ये सब डारि दिये मन मारि विसारि दयौ सगरी सुख पैवो।

भूलत क्यों करि नेहन ही को 'दही' करिवो मुसकाई चितैवो॥ १७१॥

शब्दार्थ—वेनु=वेणु वशी। मोहिनी=मोहित करने वाली। रसखानि=आनन्द-सागर कृष्ण। गोधन=गोचारण के गीत।

अर्थ—एक गोपी अपने हृदय में उमड़े हुए कृष्ण-प्रेम का वर्णन अपनी सखी से करती है कि आनन्द-सागर कृष्ण का कुन्ज-कुन्ज में घूमना, वशी वजाना, गीतें चराना, मोहित करने वाली ताने सुनाना, अपने साथियों के साथ गोचारण के गीत गाना, प्रेम से दही माँगना और मुस्करा कर देखना कैसे भूला जा सकता है? अर्थात् कृष्ण की ये सब क्रीड़ाएँ मेरे मन में गड़ गई हैं। इन्होंने

मेरे मन को अपने वश में कर लिया है और इन्हीं के कारण मेरा सारा प्राप्त किया हुआ सुख छू-मन्तर-हो गया है ।

सवैया

प्रेम मरोरि उठै तब ही मन पाग मरोरनि में उरझावै ।

रूसे से ह्वै दृग मोसो रहै लखि मोहन मूरति मो पै न आवै ॥

बोले बिना नहि चैन परै रसखानि सुने कल श्रौनन पावै ।

भीह मरोरिबो री रूसिवो भुकिबो पिय सो सजनी सिखरावै ॥१७२॥

शब्दार्थ—पाग मरोरनि में = पगड़ी के घुमावों में । रूसे से = रूठे हुए से ।

श्रौनन = कान ।

अर्थ—कोई गोपी अपनी सखी से कृष्ण के प्रति अपने प्रेम का वर्णन करती हुई कहती है कि हे सखि ! जब भी वह अपनी पगड़ी के घुमावों में मेरे मन को उलझाता है, तभी मेरा प्रेम सजग उठता है । मेरे नेत्र मुझसे रूठे हुए से रहते हैं और वे कृष्ण को देख कर मेरे वश में नहीं रहते । कृष्ण की बातें सुने बिना मुझे चैन नहीं पड़ता, तथा उसकी बातें सुनने पर कानों को आनन्द प्राप्त होता है । यह सुन कर उसकी सखी ने प्रियतम से भीह मोड़ने की, वक्र दृष्टि से देखने की, रूठने की तथा फिर मान जाने की शिक्षा दी ।

विशेष—अनुभावों की सुन्दर योजना है ।

सवैया

वागन में मुरली रसखान सुनी सुनिकै जिय रीझ पचैगो ।

धीर समीर को नीर भरौ नहि माइ भकै श्री बबा सकुचैगो ॥

आली दुरेधे को चोटनि नैम कहौ अब कौन उपाय बचैगौ ।

जायबौ भाँति कहाँ घर सो परसों वह रास परोस रचैगौ ॥१७३॥

शब्दार्थ—रीझ पचैगौ = प्रेम के वशीभूत हो जायेगा । धीर समीर = वृन्दावन का एक कुत । भकै = भकभक करना । दुरेधे = निर्लज्ज । नैम = नियम ।

अर्थ—कोई गोपी कृष्ण के प्रति अपनी आसक्ति का सकेत देती हुई अपनी सखी से कहती है कि हे सखि ! वागों में कृष्ण की मुरली की ध्वनि को सुन कर यह मन प्रेम के वशीभूत हो जायेगा । धीर समीर से पानी भरकर न लाने के कारण सास भक-भक करेगी और बाबा शर्म से सकुचा जायेगे । हे सखि ! उस निर्लज्ज कृष्ण की चोटों से कुल की मर्यादा का नियम किस प्रकार

बच सकता है ? अब घर से भी किस प्रकार कहाँ चली जाऊँ, क्योंकि परसो ही वह हमारे पडोस में अपनी रासलीला करेगा ।

विशेष—यह सबैया श्रीविश्वनाथप्रसाद मिश्र द्वारा सम्पादित 'रसखान-ग्रन्थावली' में नहीं है ।

सबैया

वेनु बजावत गोवन गावत ग्वालन सग गली मधि आयी ।

वासुरी मैं उनि मेरोई नाँव सुग्वालिनि के मिस टेरि सुनायो ॥

ए सजनी सुनि सास के त्रासनि नन्द के पास उसास न आयी ।

कैसी करी रसखानि नही हित चैनन ही चितचोर चुरायो ॥१७४॥

शब्दार्थ—मेरोई नाँव=मेरा ही नाम । मिस=वहाने से । त्रासनि=डर से । नद=ननद ।

अर्थ—एक गोपी अपनी सखी से कृष्ण की वाँसुरी के प्रभाव का वर्णन करती हुई कह रही है कि हे सखि ! वशी बजाता हुआ, गोचारण के गीत गाता हुआ अन्य ग्वालों के साथ जब कृष्ण मेरी गली में आया तो उसने सुग्वालिन के वहाने से वाँसुरी में मेरा नाम बजाकर सुनाया । हे सजनी । अपने नाम को सुनकर मैं तो सास के डर से इतनी डर गई कि मुझे अपनी ननद के पास भी ठीक तरह से साँस नहीं आये । आनन्द-सागर कृष्ण ने यह कैसी बात कर दी, इसमें मेरा भला नहीं है, क्योंकि उस चितचोर ने मेरे सुख को भी चुरा लिया है, अर्थात् जब से वाँसुरी में उसने मेरा नाम बजाया है, तब से मैं उसके प्रेम में इतनी डूब गई हूँ कि मुझे पलभर के लिए भी चैन नहीं मिलता । मेरा मन हर समय कृष्ण के लिए ही तड़पता रहता है ।

सोरठा

एरी चतुर सुजान, भयी अजान हि जान कै ।

तजि दीनी पहचान, जान अपनी जान को ॥ १७५ ॥

शब्दार्थ—सुजान=प्रिय । जान=जानकर । जानको=प्रिया को ।

अर्थ—कोई गोपी अपनी सखी से कहती है कि हे सखि ! वह चतुर प्रिय मुझे जानकर भी अजान बना हुआ है, अर्थात् उसने मेरी पूर्णतया उपेक्षा कर दी है । अपनी प्रिया मुझसे गहरा सम्बन्ध बनाकर भी वह आज मुझे पहिचानता भी नहीं है ।

विशेष—यमक, विरोधाभास अलंकार ।

सवैया

पूरव पुन्यनि ते चितई जिन ये अखियाँ मुसकानि भरी जू ।

कोऊ रही पुतरी सी खरी कोऊ घाट डरी कोऊ वाट परी जू ॥

जे अपने घरही रसखानि कहै अह हौसनि जाति मरी जू ।

लाल जे बाल बिहाल करी ते निहाल करी न निहाल करी जू ॥१७६॥

शब्दार्थ—चितई=देखी । पुतरी=काठ की पुतली । हौसनि=प्रसन्नता-भरी लालसाएँ । बिहाल=व्याकुल । निहाल=प्रसन्न ।

अर्थ—कोई गोपी अपनी सखी से कहती है कि हे सखि ! कृष्ण की हँसी भरी आँखों को जो बालाएँ देख पाई, यह उनके पूर्व जन्मों के पुण्यों का ही फल था । उन मुस्कान-भरी आँखों को देखकर कोई तो काठ की पुतली की तरह निश्चेष्ट खड़ी रही, कोई घाट पर डर गई और कोई अपनी सुधि-बुधि खोकर मार्ग में ही पड़ गई । रसखान कहते हैं कि जो बालाएँ अपने घर थी, वे प्रसन्नता-भरी लालसाओं में मरी जाती थी । कृष्ण ने जिन बालाओं को व्याकुल किया था, वस्तुतः उन्हें व्याकुल न करके प्रसन्न किया था ।

सवैया

आजु री नन्दलला निकस्यौ तुलसीवन ते बन कै मुसकातो ।

देखे बनै न बनै कहतै अब सो सुख जो मुख मै न समातो ॥

हौ रसखानि बिलोकिये कौ कुलकानि के काज कियौ हिय हातो ।

आइ गई अलबेली अचानक ए भटू लाज को काज कहा तो ॥१७७॥

शब्दार्थ—नन्दलला=कृष्ण । तुलसीवन=वृन्दावन । बनकै=वन-ठनकर । हातो=दूर । भटू=सखी ।

अर्थ—कोई गोपी अपनी सखी से कहती है कि हे सखि ! आज वन-ठनकर मुस्कराता हुआ कृष्ण वृन्दावन से निकला । उसकी शोभा न तो देखते बनती थी और न कहते बनती थी और उसे देखकर जो सुख प्राप्त हुआ, उसका वर्णन नहीं किया जा सकता । उस आनन्द-सागर को देखने के लिए सभी ब्रज-बालाओं ने कुल की लाज और मर्यादा को अपने हृदय से दूर कर दिया । हे सखि ! इतने में ही, अचानक वह अलबेली आ गई तो फिर लाज का क्या काम था ? अर्थात् सभी कृष्ण के प्रति पूर्णतया अनुरक्त होकर अपनी लौकिक मर्यादाओं को भूल गई ।

सर्वैया

अति लोक की लाज समूह मैं छोरि कै राखि थकी वहु सकट सो ।
पल मैं कुलकानि की मेड नखी नहिं रोकी रुकी पल के पट सो ॥
रसखानि सु केतो उचाटि रही उचटी न सकोच की औचट सो ।
अलि कोटि कियौ हटकी न रही अटकी अँखियाँ लट की लट सो ॥१७८॥

शब्दार्थ—समूह मैं=भीड़ में ही । मेड=सीमा । नखी=लाघ दी । पल के पट सो=पलक रूपी वस्त्र में । उचाटि=व्याकुल । औचट=ठेस, चोट ।

अर्थ—कोई गोपी अपनी सखी से कृष्ण के रूप के प्रभाव का वर्णन करती हुई कहती है कि हे सखि ! भीड़ में ही अत्यधिक लोक की लाज को छोड़कर मैं अत्यन्त सकटमें पड़कर थक गई, क्योंकि उस समय भी मैं अपने मन को काबू में न रख सकी । कृष्ण को देखते ही क्षणभर में ही कुल की मर्यादा की सीमा मैंने लाँघ दी, अर्थात् कुल-लाज को छोड़ दिया । मेरी दृष्टि पलको के वस्त्र में भी नहीं रुक सकी । रसखान कहते हैं कि मैं चाहे जितनी व्याकुल रही, पर मैं सकोच की चोट से पृथक् न हो सकी, अर्थात् सकोच किये बिना न रह सकी । हे सखि ! मैंने करोड़ों प्रयत्न किये, पर स्वयं को न रोक सकी और मेरी आँखें कृष्ण की लटकती हुई कुतल-राशि में उलझ गई ।

रास लीला

कवित्त

अधर लगाइ रस प्याइ वाँसुरी वजाइ,
मेरो नाम गाइ हाइ जादू कियौ मन मैं ।

नटखट नवल सुघर नन्दनन्दन ने,
करि कै अचेत चेत हरि कै जतन मैं ।

भटपट उलट पुलट पट परिधान,
जान लागी लालन पै सबै वाम वन मैं ।

रस रास सरस रँगिलो रसखानि आनि,
जानि जोर जुगुति विलास कियौ जन मैं ॥१७९॥

शब्दार्थ—नवल=युवक । सुघर=सुन्दर । जतन मैं=यत्नपूर्वक । पट=वस्त्र । वाम=स्त्री । सरस=आनन्द देने वाला ।

अर्थ—कोई गोपी अपनी सखी से रासलीला का वर्णन करती हुई कहती

है कि जब कृष्ण ने अपनी बाँसुरी को अपने अघरो से लगाकर और उसे अघरो का रस पिलाकर तथा मेरा नाम आकर बजाया तो मेरे मन पर मानो वह जादू कर गया। नटखट युवक सुन्दर कृष्ण ने मुझे अचेत करके यत्नपूर्वक हरि के ध्यान में लगा दिया, अर्थात् कृष्ण के ध्यान के बिना मुझे और किसी बात का पता न रहा। बाँसुरी की ध्वनि को सुनकर सारी ब्रज की स्त्रियाँ जल्दी से अपने वस्त्रों को उलटा-सीधा पहनकर वन में पहुँच गईं। तब सुन्दर रास रचने वाले सरस और रँगीले कृष्ण ने वहाँ आकर रासलीला की तथा युवतियों का समूह एकत्र करके उनके साथ आनन्द मनाया।

सवैया

काछ नयौ इकती बर जेउर दीठि जसोमति राज कर्यौ री ।

या ब्रज-मडल मे रसखान कछू तब ते रस रास पर्यौ री ॥

देखियै जीवन को फल आजु ही लाजहि काल सिगार हौ बीरी ।

केते दिनानि पै जानति हौ अँखियान के भागनि स्याम नच्चौरी ॥१८०॥

शब्दार्थ—काछ=कटिवस्त्र। इकती=अद्वितीय, अनुपम। जेउर=जेवर-आभूषण। दीठि=ढिठौना, काजल का टीका (माताएँ अपने बच्चों को काजल का टीका इसलिए लगा देती हैं ताकि उन्हें किसी की नजर न लग जाये)। राज=सुन्दर। बीरी=पगली।

अर्थ—कोई गोपी अपनी सखी से रास-लीला का वर्णन करती हुई कहती है कि रासलीला के लिए तत्पर कृष्ण का कटि-वस्त्र अनुपम और नवीन है। वे सुन्दर आभूषण पहने हुए हैं। यशोदा ने उसके माथे पर सुन्दर ढिठौना लगाया हुआ है। हे पगली! जब से इस ब्रज-मंडल में आनन्द-सागर कृष्ण ने रासलीला करनी शुरू की है, तब से ब्रजवासियों में नवीन जीवन का संचार हो गया है। अपने जीवन के पुण्य बल से प्राप्त इस रासलीला का आज तो देखकर आनन्द उठा ले, कल से लज्जा का शृंगार कर लेना; अर्थात् लज्जा को त्याग कर रासलीला को देख, क्योंकि न जाने कितने दिनों के पश्चात् इन आँखों के भाग्य से कृष्ण नृत्य करेंगे।

विशेष—१. 'बीरी' शब्द का प्रयोग घनिष्ठ आत्मीयता का सूचक है।

२. श्री विश्वनाथप्रसाद मिश्र द्वारा सम्पादित 'रसखान-ग्रन्थावली' में यह सवैया नहीं है।

सवैया

आजु भटू इक गोपकुमार ने रास रच्यो इक गोप के द्वारै ।
मुन्दर वानिक सौ रसखानि वन्यो वह छोहरा भाग हमारै ॥
ए विधना । जो हमै हँसती अब नेकु कहूँ उतको पग धारै ।
ताहि वदी फिरि आवै घरै विनही तन श्री मन जोवन वारै ॥१८१॥

शब्दार्थ—भटू=सखी । वानिक=वेश । वदी=शर्त लगाकर कहती हूँ ।
वारै=न्यौछावर करके ।

अर्थ—कोई गोपी अपनी सखी से कहती है कि हे सखि ! आज एक गोप ने (कृष्ण ने) दूसरे गोप के द्वारे पर रास-लीला रचाई । हमारे सौभाग्य से वह नन्द पुत्र कृष्ण अच्छे वेश वाला बन गया, अर्थात् उसकी छवि द्विगुणित हो गई । हे भगवान् ! जो हमारे प्रेम को लक्ष्य करके हमारे ऊपर हँसती है, अब यदि वह तनिक भी उस ओर चली जाये तो मैं शर्त लगाकर कहती हूँ कि वे अपना मन और जीवन कृष्ण पर न्यौछावर किये बिना अपने घर वापिस नहीं आ सकती ।

सवैया

आज भटू मुरली-वट के तट नद के साँवरे रास रच्यो री ।
नैननि सैननि वैननि सो नहि कोऊ मनोहर भाव वच्यो री ॥
जद्यपि राखन कौ कुल कानि सवै ब्रज-वालन प्रान पच्यो री ।
तद्यपि वा रसखानि के हाथ विकानी कौ अत लच्यो पै लच्यो री ॥१८२॥

शब्दार्थ—भटू—सखी । साँवरे—कृष्ण ने

अर्थ—कोई गोपी अपनी सखी से कृष्ण द्वारा रचाई गई रासलीला का वर्णन करती हुई कहती है कि हे सखी ! आज मुरली-वट के नीचे श्रीकृष्ण ने रासलीला रची थी । उसमें उन्होंने जो प्रदर्शन किया, वह इतना विविधतापूर्ण था कि उनकी आँखों से, सैनो से तथा वचनो से कोई भी मनोहर भाव नहीं बचा, अर्थात् अपने आंगिक और वाचिक नृत्यों के द्वारा उन्होंने सभी प्रकार के मनोहर भावों की अभिव्यक्ति कर दी थी । यद्यपि अपने वेश की मर्यादा का पालन करने के लिए सारी ब्रज-वालाओं ने प्राणपण से प्रयत्न किया, तथापि वे अत मे अपने प्रण से झुक गई और आनन्द-सागर कृष्ण के हाथ विक गई । अर्थात् सभी ब्रज-बनिताएँ कृष्ण की छवि पर मुग्ध हो गई ।

सवैया

कीजै कहा जु पै लोग चवाव सदा करिवौ करि है वजमारौ ।
सीत न रोकत राखत कागु सुगावत ताहिरी गावन हारौ ।
आव री सीरी करै अँखिया रसखान धनै धन भाग हमारौ ।
आवत है फिरि आज बन्यौ वह राति के रास को नाचन हारौ ॥१८३॥

शब्दार्थ—चवाव=निन्दा । वजमारौ=अत्यन्त घातक । सीत न रोकत
राखत कागु=कौआ शीतकाल (शरद् ऋतु) का आगमन नहीं रोक सकता ।
(शरद् आगमन के साथ ही श्राद्ध-समय समाप्त हो जाता है । अतः कौआ नहीं
चाहता कि शरद् ऋतु आवे, पर उसे रोकना उस बेचारे के बस की बात नहीं
है । सीरी करै=शीतल करे, आनन्द प्राप्त करे ।

अर्थ—कोई गोपी अपनी सखी से रासलीला में सम्मिलित होने का
आग्रह करती हुई कहती है कि हे सखि ! यदि लोग हमारी अत्यन्त घातक
निन्दा सदा करते रहते हैं, तो करे, हमें इससे चिन्तित नहीं होना चाहिए,
क्योंकि कौआ चाहे जितनी काँव-काँव करे, पर वह शरद् ऋतु के आगमन को
नहीं रोक सकता । अतः चलो, रासलीला में सम्मिलित होकर हम अपनी आँखें
शीतल करे, आनन्द प्राप्त करे । हमारा भाग्य धन्य है जो हमें इस प्रकार की
रासलीला को देखने का अवसर प्राप्त हुआ है । कल रात को रासलीला में
नृत्य करने वाला वह कृष्ण आज फिर वन-ठनकर रासलीला में सम्मिलित हो
रहा है ।

विशेष—१ लोकोक्ति का सुन्दर प्रयोग है ।

२. यह सवैया श्री विश्वनाथप्रसादमिश्र द्वारा सम्पादित 'रसखान
ग्रथावली' में नहीं है ।

सवैया

सासु अछै वरज्यौ विटिया जु बिलोके अतीक लजावत है ।
मोहि कहै जु कहूँ वह बात कही यह कौन कहावत है ।
चाहत काहू के मूँड चढ्यौ रसखान भुकै भुकि आवत है ।
जब तै वह ग्वाल गली में नच्यौ तब तै वह नाच नचावत है ॥१८४॥

शब्दार्थ—अछै वरज्यौ=अच्छी प्रकार रोकी । विटिया=पुत्रवधू ।
मूँड चढ्यौ=सिर पर चढ़ गया, घृष्ट हो गया ।

अर्थ—कोई गोपी अपनी सखी से रासलीला का वर्णन करती हुई कहती

है कि यद्यपि अपनी पुत्रवधू को उसकी सास ने रासलीला में आने से अच्छी प्रकार रोक दिया, तथापि वह न रुक सकी। अपनी आज्ञा का उल्लंघन देखकर सास बहुत लज्जित हो रही है। यदि मुझसे वह यह बात कहती तो मैं तुरन्त उत्तर दे देती कि यह कहाँ की बात है। आनन्द-सागर कृष्ण इतने वृष्ट हो गये हैं कि वे किसी गोपी को अपने वश में करना चाहते हैं, तभी तो वे बार-बार उसकी ओर झुकझुककर आते हैं। जब से कृष्ण ने उस गली में रासलीला की है, तब से उसने सभी गोपियों को पूर्णतया अपने वश में कर लिया है।

विशेष—१. मुहावरो का सुन्दर प्रयोग।

२ यह सबैया श्री विश्वनाथप्रसाद मिश्र द्वारा सम्पादित 'रसखान-ग्रन्थावली' में नहीं है।

सबैया

देखत सेज बिछी री अछी सु बिछी बिप सो भिदिगौ सिगरे तन ।
ऐसी अचेत गिरी नहि चेत उपाय करे सिगरी सजनी जन ।
बोली सयानी सखी रसखानि वचै यौ सुनाइ कह्यौ जुवती गान ।
देखन कौ चलियै री चलो सब रास रच्यौ मनमोहन जू वन ॥१८५॥
शब्दार्थ—अछी=अच्छी। भिदिगौ=दौड़ गया। सयानी=चतुर।

अर्थ—रासलीला के प्रभाव से एक गोपी इतनी भाव-विभोर हो गई कि उसे अपनी सुधि ही न रही। उसी की अवस्था का वर्णन एक गोपी अपनी सखी से कर रही है कि एक गोपी अपनी अच्छी सेज को बिछी देखकर उस पर सोना चाहती थी कि इतने में वाँसुरी की ध्वनि सुनाई दी। उसे सुनकर उसके सारे शरीर में बिप-सा फैल गया। वह ऐसी अचेत होकर गिरी कि उसकी सारी सखियों ने अनेक उपाय किये, पर उसे चेत नहीं हुआ। तब एक चतुर गोपी ने अपनी सखियों को बताया कि इसकी अचेतना तभी हट सकती है जब इसको सुनाकर यह कहा जाये कि हे सखि! कृष्ण ने वन में रास रचा है, अतः सब उसे देखने के लिए चलो।

तुलना—१ 'दुसह विरह दारुन दसा, रहै न और उपाय।

जात जात ज्यो राखियतु, पिय को नाम सुनाय ॥

—बिहारी

२. 'मोहि घरीक जिवायौ चहै तो।

कहै किन वाही बिसासी की बातें।'

—किशोर

फाग-लीला

सवैया

खेलतु फाग लख्यी पिय प्यारी को ता सुख की उपमा किहि दीजै ।
देखत ही बनि आवै भलै रसखान कहा है जो वारि न कीजै ॥
ज्यौ ज्यौ छवीली कहै पिचकारी लै एक लई यह दूसरी लीजै ।
त्यौ त्यौ छवीलो छकै छवि छाक सो हेरै हँसे न टरै खरौ भीजै ॥१८६॥
शब्दार्थ—किहि=किस प्रकार । वारि=न्यौछावर करना । छकै छवि

छाक सो=रूप के नशे में मस्त होते हैं ।

अर्थ—कोई गोपी अपनी सखी से फागलीला का वर्णन करती हुई कहती है कि हे सखि ! मैंने कृष्ण और उनकी प्यारी राधा को फाग खेलते हुए देखा । उस समय की जो शोभा थी, उसकी किस प्रकार उपमा दी जा सकती है । उस समय की शोभा तो देखते ही बनती है और कोई भी ऐसी वस्तु नहीं है जो उस शोभा पर न्यौछावर न की जा सके । ज्यो-ज्यो वह सुन्दरी राधा चुनौती देकर एक के बाद दूसरी पिचकारी कृष्ण के ऊपर चलाती है, त्यो-त्यो वे रूप के नशे में मस्त होते जाते हैं । राधा की पिचकारी को देखकर वे हँसते तो हैं, पर वे वहाँ से भागे नहीं और खड़े-खड़े भीगते रहे ।

विशेष—यह सवैया श्री विश्वनाथप्रसाद मिश्र द्वारा सम्पादित 'रसखान ग्रन्थावली' में नहीं है ।

सवैया

खेलत फाग सुहागभरी अनुरागहि लालन कौ भरि कै ।
मारत कु कुम केसरि के पिचकारिन मै रंग को भरि कै ॥
गेरत लाल गुलाल लली मन मोहिनि मौज मिटा करि कै ।
जात चली रसखानि अली मदमत्त मनी-मन को हरि कै ॥१८७॥

शब्दार्थ—अनुरागहि=प्रेम को । मनी-मन=मन रूपी मणि ।

अर्थ—कोई गोपी अपनी सखी से होली का वर्णन करती हुई कहती है कि हे सखि ! सौभाग्यवती ब्रजवालाएँ कृष्ण के प्रेम को हृदय में धारण करके फाग (होली) खेल रही हैं । वे कु कुम और केसर को तथा रंग भरी पिचकारी को कृष्ण के ऊपर छोड़ रही हैं । ब्रजवालाएँ, जो मन को मोहने वाली हैं, अपने सुख को भुलाकर कृष्ण के ऊपर लाल गुलाल डाल रही हैं । हे सखि !

वह ब्रजवाला मदमस्त मन रूपी मन का हरण करके चली जा रही है ।

पाठांतर—इस सवैया की अतिम पक्ति का यह रूप भी मिलता है—

‘जात चली रसखान अली मदमत्त मनौ मन को हरि कै ।’

सवैया

फागुन लाग्यौ जब ते तब ते ब्रजमंडल धूम मच्यौ है ।

नारि नवेली बचै नहि एक विसेख यहै सवै प्रेम अच्यौ है ।

साँझ सकारे वही रसखानि सुरंग गुलाल लै खेल रच्यौ है ।

को सजनी निलजी न भई अब कौन भट्ट जिहि मान बच्यौ है ॥१८८॥

शब्दार्थ—नवेली=नई, युवती । अच्यो=पीना । सुरग=सुन्दर रग, लाल ।

अर्थ—कोई गोपी अपनी सखी से होली का वर्णन करती हुई करती है कि हे सखि ! जबसे फागुन का महीना लगा है, तबसे सारे ब्रज-मंडल में धूम मची हुई है । कोई भी युवती नारी इस धूमधाम से नहीं बची है और सभा ने एक विशेष प्रकार का प्रेम पी लिया है । प्रातः और साय आनंद-सागर कृष्ण लाल गुलाल लेकर फाग का खेल खेलते रहते हैं । हे सजनी ! इस फागुन के महीने में कौन ऐसी ब्रजवाला है जो निर्लज्ज नहीं बन गई है ? तथा जिसका मान बचा रह गया है ?

विशेष—अतिम पक्ति में काकुवक्रोक्ति अलंकार ।

कवित्त

आई खेलि होरी ब्रजगोरी वा किसोरी सग,

अंग अग इगनि अनग सरसाइ गौ ।

कुकुम की मार वा पै रगनि उद्धार उडै,

बुक्का औ गुलाल लाल लाल बरसाइगौ ।

छोडै पिचकारिन धमारिन विगोइ छोडै,

तोडै हिय-हार धार रग बरसाइ गौ ।

रसिक सलोनी रिझवार रसखानि आजु,

फागुन मै औगुन अनेक दरसाइ गौ ॥१८९॥

शब्दार्थ—अनग=कामदेव । तरसाइ गौ=ललचा गया । धपारिन=होली-गीत । सलोनी=सुन्दर ।

अर्थ—कोई गोपी अपनी सखी से कृष्ण की होली का वर्णन करती हुई

कहती है कि आज कृष्ण ने ब्रज की गोरियो और राधा के साथ ऐसी होली खेली कि उनके अंग-अंग को रग कर कामभावना उत्पन्न कर दी। कुकुम की मार से और उसके ऊपर अनेक प्रकार के रंगों को डालकर लाल गुलाल की मुट्टियाँ बिखेरकर वह कृष्ण सबको ललचा गया। उसने पिचकारियाँ छोड़ी, होली के गीत गाये तथा गोपियों के हृदय के हारों को तोड़कर वह रंग की धारा बरसा गया। रसखान कहते हैं कि वह रसिक और सुन्दर कृष्ण आज फागुन में होली खेलते समय अपने अनेक अवगुणों को प्रकट कर गया।

कवित्त

गोकुल को ग्वाल काल्हि चौमुँह की ग्वालिन सो,

चाचर रचाइ एक धूमहि मचाइ गौ ।

हियो हुलसाइ रसखानि तान गाइ बाँकी,

सहज सुभाइ सब गाँव ललचाइ गौ ।

पिचका चलाइ और जुवती भिजाइ नेह,

लोचन नचाइ मेरे अगहि नचाइ गौ ।

सासहि नचाइ भोरी नदहि नचाइ खोरी,

बैरनि सचाइ गोरी मोहि सकुचाइ गौ ॥१६०॥

शब्दार्थ—काल्हि=कल । चौमुँह=चारों ओर की । पिचका=पिचकारी । भिजाई नेह=प्रेम में भिगोकर । खोरी=गली । बैरनि सचाइ=बैरों का बदला लेकर । सकुचाइ गौ=लज्जित कर गया ।

अर्थ—कोई गोपी अपनी सखी से होली का वर्णन करती हुई कहती है कि हे सखि ! कल गोकुल का एक ग्वाला (कृष्ण) चारों ओर की गोपियों को घेरकर, चाँचर रचाकर धूम मचा गया। रसखान कहते हैं कि वह बाँकी बाँसुरी की तान सुनाकर तथा हृदय को उल्लसित करके सहज स्वभाव से सब गाँव वालों को ललचा गया है। वह अपनी पिचकारी चलाकर तथा समस्त युवतियों को प्रेम से भिगोकर और अपनी आँखों को नचाकर मेरे सारे अंगों को नचा गया है। वह हमारी ही गली में मेरी सासु को तथा भोली ननद को नचाकर और पुराने बैरों का बदला लेकर मुझे लज्जित कर गया।

सवैया

आवत लाल गुलाल लिये मग सूने मिली इक नार नवीली ।
 त्यौ रसखानि लगाइ हिये भटू मौज कियौ मन माहि अधीनी ।
 सारी फटी सुहुमारी हटी अगिया दर की सरकी रगभीनी ।
 गाल गुलाल लगाइ लगाइ कै अक रिभाइ विदा करि दीनी ॥१६१॥

शब्दार्थ—लाल=कृष्ण । सारी=साडी । अक=हृदय ।

अर्थ—कोई गोपी अपनी सखी से कृष्ण की होली का वर्णन करती हुई कहती है कि हे सखि ! कृष्ण हाथ में गुलाल लिये हुए आ रहे थे कि सूने मार्ग में उन्हें एक युवती नारी मिली । उसे उन्होंने अपने हृदय से लगाकर आनन्द के साथ अपनी मनचाही की । उसकी साडी फट गई, सौकुमार्य नष्ट हो गया, चोली फट गई और अपने स्थान से हट गई । कृष्ण ने उसके कपोलो पर गुलाल लगाकर, उसके हृदय से लगाकर तथा रिभाकर विदा कर दिया ।

सवैया

लीने अवीर भरे पिचका रसखानि खारो वहु भाय भरौ जू ।
 मार से गोपकुमार कुमार से देखत ध्यान टरौ न टरौ जू ॥
 पूरव पुन्यनि हाथ पर्यौ तुम राज करौ उठि काज करौ जू ।
 ताहि सरौ लखि लाज जरो इहि पाख पतिव्रत ताख धरौ जू ॥१६२॥

शब्दार्थ—पिचका=पिचकारी । भाय=भाव मार=कामदेव । कुमार=थोड़ी अवस्था के । सरौ=समक्ष, सम्मुख । पाख=पक्ष । ताख=प्राला । ताख धरौ=छोड़ दिया ।

अर्थ—कोई गोपी अपनी सखी से कृष्ण की होली का वर्णन करती हुई कहती है कि हे सखि ! वह आनन्द सागर कृष्ण अनेक प्रकार के भावों में भरकर तथा अवीर भरी पिचकारी लेकर खड़ा हुआ था । छोटी अवस्था के गोपकुमार कामदेव जैसे दिखाई दे रहे थे जिन्हें देखते देखते ध्यान उन पर टारे से भी नहीं टरता था । वह तुम्हारे हाथ पूर्व जन्म के पुण्यों के कारण ही लग गया है, अतः तुम उठकर अपना काम करो और उस पर शासन करो उसको सामने देखकर लज्जा को छोड़ो तथा । इस पक्ष में पतित-धर्म का त्याग कर दो ।

विशेष—१ द्वितीय पक्ति में उपमा अलंकार ।

२. चतुर्थ पक्ति में मुहावरे का भावपूर्ण प्रयोग ।

तुलना—हम भावत है हरिचन्द पिया अहो लाडिलि देर न भामै करो ।

चलो फूलौ भूलाओ भुको उभको इहि पाख पतिव्रत ताख धरौ ॥

सवैया

मिलि खेलत फाग बढ्यौ अनुराग सुराग सनी सुख की रमकै ।

कर कु कुम लै करि कजमुखी प्रिय के दृग लावन की धमकै ॥

रसखानि गुलाल की धूँधर मै ब्रजवालन की द्युति यौ दमकै ।

मनौ सावन माँझ ललाई के माँझ चहूँ दिसि ते चपला चमकै ॥१६३॥

शब्दार्थ—अनुराग=प्रेम । रमकै=अठखेलियाँ । कजमुखी=कमल
जैसे सुन्दर मुख वाली । लावन की=फेंकने के लिए । धूँधर=धु धार ।
चपला=बिजली ।

अर्थ—कोई गोपी अपनी सखी से कृष्ण की होली का वर्णन करती हुई
कहती है कि हे सखि ! कृष्ण गोपियों के साथ फाग खेल रहे थे । सुख की इन
सौभाग्यशाली अठखेलियों में उनका प्रेम बढ गया था । कमल जैसे सुन्दर मुख
वाली गोपियाँ हाथ में कु कुम लेकर उसे उनके ऊपर फेंकने के लिए अवसर
ताक रही थी । रसखान कहते हैं कि गुलाल की धुँआधार में ब्रजवालाओं की
द्युति इस प्रकार चमक रही थी, मानो सावन मास की लालिमा में चारों ओर
से बिजली चमक रही हो ।

विशेष—अतिम पक्ति में उत्प्रेक्षा अलंकार ।

राधा का सौन्दर्य

कवित्त

आजु बरसाने बरसाने सव आनन्द सो,

लाडिली बरस गाँठि आई छवि छाई है ।

कौतुक अपार घर घर रग विसतार,

रहत निहारि सुध बुध विसराई है ।

आये ब्रजराज ब्रजरानी दधि दानी सग,

अति ही उमगे रूप रासि लूटि पाई है ।

गुनी जन गान घन दान सनमान, वाजे—

पौरनि निसान रसखान मन भाई है ॥१६४॥

शब्दार्थ—बरसाने=वर्षा ऋतु में । बरसाने=ब्रज का एक गाँव, राधा

इसी गाँव की रहने वाली थी । रंग विसतार=आनंद का प्रसार । निसान=नगाडा ।

अर्थ—राधा के सौन्दर्य का वर्णन करती हुई कोई गोपी अपनी सखी से कहती है कि हे सखी ! आज वर्षा ऋतु में वरसाने गाँव के सभी निवासी प्रसन्न हैं, क्योंकि आज प्यारी राधा की वर्षगाँठ है, इसीलिए चारों ओर शोभा छाई हुई है । हर स्थान पर अपार आश्चर्य और आनन्द का प्रसार है जिसे देखकर लोग अपनी सुधि-बुधि भूल जाते हैं । दही का दान लेने वाले कृष्ण राधा के साथ यहाँ आये हैं । वे अत्यन्त प्रसन्न हैं, क्योंकि उन्हें रूप-राशि राधा को लूटने का अवसर मिला है । गाँव में हर स्थान पर गुणी व्यक्ति गीत गाते हुए सम्मानपूर्वक दान का दान कर रहे हैं और सर्वत्र मनोहर नागड़े बज रहे हैं

विशेष—यह कवित्त श्री विश्वानाथप्रसाद मिश्र द्वारा सम्पादित 'रसखान-ग्रन्थावली' में नहीं है ।

कवित्त

कैधो रसखान रस कोस दृग प्यास जानि,
आनि कै पियूप पूष कीनो विधि चद घर
कैधो मनि मानिक वैठारिवै को कंचन मैं,
जरिया जोवन जिन गढिया सुघर घर ।
कैधो काम कामना के राजत अधर चिन्ह,
कैधों यह भीर जान वोहित गुमान हर ।
एरी मेरी प्यारी दुति कोटि रति रम्भा की,
वारि डारो तेही चित चोरनि चिबुक पर ॥१६५॥

शब्दार्थ—रस कोस—आनन्द-निधि । पियूप पूष=अमृत का सार । विधि=ब्रह्म । गढिया सुघर घर=सुन्दर घर बना लिया । वोहित=नौका । गुमान हर=गर्व को नष्ट करने वाला । दुति=शोभा ।

अर्थ—कोई गोपी राधा से उसके सौन्दर्य का वर्णन करती हुई कहती है कि ब्रह्मा ने ससार को प्यासा जानकर उसकी तृप्ति के लिए तुम्हारे नेत्रों में आनन्द-निधि भर दिया है । तुम्हारा मुख इतना सुन्दर है जैसे अपने अमृत-सार को सजोकर स्वयं चन्द्रमा उपस्थित हो गया हो । तुम्हारे शरीर का गठन ऐसा है जैसे सोने में माणि-मुक्ताओं को जड़ने के लिए कुशल जड़िया यौवन ने

सुन्दर घर (रत्न जड़ने के लिए) स्थान बना जिया हो । तुम्हारे अघरो की लाली काम कामना जैसी सुशोभित है । तुम्हारी नासिका का छिद्र उस भौरे के समान है जिसमें ज्ञान की नौका का गर्व नष्ट हो जाता है, अर्थात् सुधि-बुधि नष्ट हो जाती है । मेरी प्यारी सखी राधा ! तेरी मनोहर चिबुक पर मैं करोड़ो रति और रम्भा की शोभा को न्यौछावर करती हूँ ।

विशेष — यह कवित्त श्री विश्वनाथ प्रसाद मिश्र द्वारा सम्पादित 'रसखान ग्रन्थावली' में नहीं है ।

सर्वैया

श्री मुख यौ न बखान सकै वृषभान सुता जू को रूप उजारो ।
हे रसखान तू ज्ञान सभार तरैनि निहार जु रीभन हारो ।
चारु सिंदूर को लाल रसाल लसै ब्रज बाल को भाल टिकारो ।
गोद में मानौ विराजत है घनस्याम के सारे को सारे को सारो ॥१६६॥

शब्दार्थ—श्रीमुख=मुख की शोभा । वृषभान सुता=राधा । तरैनि=नक्षत्र । रसाल=सरस । टिकारो=टीका । घनस्याम के सारे की सारे को सारो=मंगल ।

अर्थ—कोई गोपी अपनी सखी से राधा के सौन्दर्य का वर्णन करती हुई कहती है कि हे सखि ! राधा के मुख की शोभा का कौन वर्णन कर सकता है । उसका सौन्दर्य प्रकाशित करने वाला है । रसखान कहते हैं कि हे मनुष्य ! तू अपना ज्ञान सभाल और यदि तू राधा के रूप का कुछ बोध करना चाहता है तो नक्षत्रों की ओर देख, अर्थात् जिस प्रकार नक्षत्रों की प्रभा अनुपम है, उसी प्रकार राधा का रूप भी अद्वितीय है । उस ब्रजवाला के मस्तक पर लगा हुआ सिन्दूर का टीका अत्यन्त सुन्दर एवं सरस है । वह टीका ऐसा प्रतीत होता है मानो चन्द्रमा की गोद में मंगल सुशोभित हो ।

विशेष—१. उत्प्रेक्षा अलंकार ।

२. 'घनस्याम के सारे की सारे को सारो' में क्लिष्टत्व दोष है क्योंकि इसका अर्थ क्लिष्टता से निकलता है—घनस्याम का साला=चन्द्रमा; चन्द्रमा की स्त्री=वीरवहूटी; वीरवहूटी का भाई मंगल ।

३. यह सर्वैया श्री विश्वनाथ प्रसाद मिश्र द्वारा सम्पादित 'रसखान-ग्रन्थावली' में नहीं है ।

सर्वैया

अति लाल गुलाल दुकूल ते फूल अली । अलि कुंतल राजत है ।
 मखतूल समान के गुज घरानि में किसुक की छवि छाजत है ॥
 मुकता के कदव ते अव के मोर सुने सुर कोकिल लाजत है ।
 यह आवनि प्यारी जु की रसखानि वसत-सी आज विराजत है ॥१६७॥

शब्दार्थ—अली=सखी । अलि=भ्रमर । कुंतल=केश । मखतूल=
 काला रेशम । छरानि में=डोरियो मे ।

अर्थ—कोई गोपी अपनी सखी से राधा के सौन्दर्य का वर्णन करती हुई कहती है कि हे सखि ! उसका अत्यन्त लाल गुलाल के समान दुकूल गुलाब के लाल फूल की भाँति शोभायमान है । उसकी काली केशराशि भोरी के समान सुशोभित है । काले रेशम की डोरियो मे बँधे हुए गुज पलाश-पुष्प की भाँति शोभा सम्पन्न है । उसके मोती कदव और आम की मजरियो के समान शोभायमान है । उसकी वाणी मे इतना माधुर्य है कि उसके वचनों को सुनकर कोयल भी लजा जाती है । इस अपनी प्यारी और आनन्द की खान राधा की शोभा वसन्त श्री के समान प्रतीत हो रही है ।

विशेष—यमक, उपमा, छेकानुप्रास और साग रूपक अलंकार ।

सर्वैया

तन चन्दन खौर कै वैठी भटू रही आजु सुधा की सुता मनसी ।
 मनौ इन्दुवधून लजावन को सब जानिन काढि घरी गन सी ॥
 रसखानि विराजति चौकी कुची विचु उत्तमताहि जरी तन सी ।
 दमकै दृग वान के घायन को गिरि सेत के सधि के जीवन सी ॥१६८॥

शब्दार्थ—सुधा की सुता मनसी=सुधा की मानस-पुत्री । इन्दुवधून=
 चन्द्रमा की पत्नियो तारिकाओ को । लजावन=लज्जित करने के लिए ।
 गन सी=गणश्री, अपने समूह की सात्विक छटा । चौकी=हार के बीच का
 चदा । उत्तमताहि=सौन्दर्य को । सधि=बीच । जीवन-सी=जलाशय की
 भाँति ।

अर्थ—कोई गोपी अपनी सखी से राधा की सुन्दरता का वर्णन करती हुई कहती है कि हे सखि ! अपने शरीर पर चन्दन लगाकर बैठी हुई वह सुधा की मानस पुत्री राधा ऐसी प्रतीत हो रही है, मानो चन्द्रमा की पत्नियों

तारिकाओं को लज्जित करने के लिए सब प्रकार से अपनी समग्र सात्विक शोभा को बाहर निकाल कर बैठी हुई हो । रसखान कवि कहते हैं कि उसके कुचों के बीच में हार का चंदा इस प्रकार शोभा दे रहा है, जैसे सौन्दर्य को ही उसके शरीर में जड़ दिया गया हो । वह चन्दा ऐसा प्रतीत होता है मानो दृग बाणों का घाव दमक रहा हो, अथवा श्वेत पर्वत के सधिस्थान में कोई जलाशय हो ।

विशेष—१. उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा और अतिशयोक्ति अर्थालंकारों का बड़ा ही भावपूर्ण प्रयोग हुआ है ।

२ 'दमकै दृग वान के घायन को' में दी गई उपमा रसानुभूति में बाधक है ।

संक्षेप

आज सँवारति नेकु भटू तन, मद करी रति की दुति लाजै ।

देखत रीझि रहे रसखानि सु और छटा विधिना उपराजै ॥

आए है न्यौते तरैमन के मनो सग पतंग पतंग जु राजै ।

ऐसे लसै मुकुतागन मै तित तेरे तरौना के तीर विराजै ॥१६६॥

शब्दार्थ—भटू=सखी । रति=कामदेव की स्त्री, जो सर्वाधिक सुन्दर मानी जाती है । दुति=द्युति, शोभा । लाजै=लज्जित हो जाती है । रसखानि=आनन्द सागर कृष्ण । विधिना=ब्रह्मा । उपराजै=उत्पन्न करे । तरैमन के=नक्षत्रों के, मोतियों के । पतंग=सूर्य, तरौना । पतंग=शलभ, तिल । तीर=किनारा ।

अर्थ—कोई गोपी राधा से उसके सौन्दर्य का वर्णन करती हुई कहती है कि हे सखि ! आज तनिक अपना शरीर सभाल लो, क्योंकि इसके सौन्दर्य के समक्ष रति का सौन्दर्य भी मन्द हो गया है और वह इसी कारण लज्जित हो रही है । आनन्द सागर कृष्ण तुम्हारी शोभा को देखकर रीझ रहे हैं । तुम्हारे अतिरिक्त ब्रह्मा और क्या उत्पन्न करे ? अर्थात् तुम उसकी सौन्दर्य सृष्टि की चरम पराकाष्ठा हो । मोतियों से युक्त तुम्हारे तरौना के किनारे पर सुशोभित होता हुआ तिल इस प्रकार सुशोभित हो रहा है मानो सूर्य के साथ सारे नक्षत्र आकर एकत्र हो गए हो ।

विशेष—प्रतीप, श्लेष, यमक, उपमा अलंकार ।

सवैया

प्यारी की चारु सिंगार तरगनि जाय लगि रति की दुति कूलनि ।
 जोवन जेव कहा कहियै उर पै छवि मजु अनेक दुकूलनि ।
 कंचुकी सेत मै जावक विन्दु विलोकि मरै मघवानि की सूलनि ।
 पूजे है आजु मनौ रसखान सु भूत के भूप वधूक के फूलनि ॥२००॥
 शब्दार्थ - सिंगार तरगन = सौन्दर्य की लहरे । जेव = कान्ति । सेत =
 श्वेत, सफेद । जावक = महावर, लाल रंग । मघवानि की सूलनि = इन्द्र वज्र
 की चोट । भूत के भूप = शिव । वधूक के फूलनि = दुपहरिया के लाल रंग के
 फूलों से ।

अर्थ—कोई गोपी राधा के सौन्दर्य का वर्णन अपनी सखी से करती हुई
 कहती है कि हे मखि ! उस प्यारी राधा के सुन्दर सौन्दर्य की लहरे रति की
 शोभा के किनारों से जा लगी है, अर्थात् वह रति के समान सुन्दर है । उसके
 यौवन की कान्ति का तो कहना ही क्या ? उसके हृदय पर अनेक सुन्दर वस्त्रों
 की शोभा सुशोभित है । उसकी श्वेत कंचुकी में लाल रंग के विन्दु को देखकर
 तो मनुष्य इन्द्र के वज्र की चोट की भाँति भारी चोट खाकर मर जाता है ।
 उसके कुचों पर पड़ा हुआ लाल वस्त्र इस प्रकार प्रतीत हो रहा है । मानो
 वधूक के फूलों से शिव की पूजा की गई हो ।

विशेष—१ उत्प्रेक्षा अलंकार ।

२. यह सवैया श्री विश्वनाथप्रसाद मिश्र द्वारा सम्पादित
 'रसखान ग्रन्थावली' में नहीं है ।

तुलना—'दुरत न कुच बिच कंचुकी, चुपरी सादी सेत ।

कवि अंकन के अर्थ लौ, प्रगट दिखाई देत ॥'

—विहारी

सवैया

बाँकी मरोर गटी भृकुटीन लगी अखियाँ तिरछानि तिया की ।
 टाँक सी लाँक भई रसखानि सुदामिनि ते दुति दूनी हिमा की ॥
 सोहै तरग अनग की अंगनि ओष उरोज उठी छतिया की ।
 जोवन जोति सु यौ दमकै उसकाइ दई मनो वाती दिया की ॥२०१॥
 शब्दार्थ—टाक = पतली । लाक = लक, कमर । सुदामिनि = सौदामिनी,

विजली । दुति छुति, शोभा । अनग=कामदेव । ओप=शोभा । उरोज=स्तन ।

अर्थ—कोई गोपी राधा की वय सन्धि का वर्णन अपनी सखी से करती हुई कहती है कि राधा की तिरछी आखो ने, जो भृकुटी तक फैली हुई है, गर्वीली वक्रता ग्रहण कर ली है । आनन्द सागर राधा की कमर पतली हो गई है । उसके हृदय की (शीरर की) शोभा दामिनी से भी अधिक बढ़ गई है । उसके अगो मे कामदेव की तरंगे शोभायमान है, उसकी छाती के उठे हुए स्तन भी शोभायुक्त है । उसकी यौवन शोभा इस प्रकार दमक रही है, मानो दीपक की वाती उकसा दी गई हो; अर्थात् जिस प्रकार दीपक की वाती को बढ़ाने से धूमिल प्रकाश स्पष्ट हो जाता है, उसी प्रकार राधा के अगो मे भी यौवन की शोभा स्पष्ट दिखाई दे रही है ।

विशेष—उपमा, अधिक, छेकानुप्रास अलंकार ।

तुलना—१ 'अग अंग नग जगमग, दीप सिखा सी देह ।

दिया बढ़ाये हू रहै, बडो उजेरो गेह ॥

—बिहारी

२. 'पलट चली मुसकाय, दुति रहीम उपजाय अति ।

वाती सी उकसाय, मानो दीनी देह की ।'

—रहीम

सवैया

बासर तूँ जु कहूँ निकरै रवि को रथ माँझ अकास अरै री ।

रैन यहै गति है रसखानि छपाकर आँगन ते न टरै री ॥

छौस निस्वास चलयौई करै निसि छौस की आसन पाय घरै री ।

तेरो न जात कछू दिन राति विचारे बटोही की वाट परै री ॥२०२॥

शब्दार्थ—बासर=दिन । छपाकर=चन्द्रमा । छौस=दिवस, दिन ।

बाह परै=रास्ता रुक जाता है ।

अर्थ—कोई गोपी राधा से उसके सौन्दर्य का वर्णन करती हुई कहती है कि हे राधा ! यदि तू दिन मे अपने घर से बाहर निकल आती है तो तेरे सौन्दर्य से सूर्य इतना चकित हो जाता है कि उसका रथ आकाश मे ही रुक जाता है, अर्थात् सूर्य अपनी गति भूलकर एकटक तुझे ही देखता रह जाता

है । हे आनन्द-सागर राधा ! रात को भी यही दशा होती है । तेरा सौन्दर्य देखकर चन्द्रमा तेरे आँगन में ही ठहर जाता है और आगे नहीं बढ़ता । दिन में तो पवन चलता ही रहता है, पर रात में भी वह दिन की आशा से तेरे पीछे लगा रहता है, अर्थात् तेरी सुगन्धि का लोभी पवन रात-दिन चलता रहता है । इस पवन के रात-दिन चलते रहने के कारण तेरा तो कुछ नहीं बिगड़ता, पर बेचारे पयिक का रास्ता रुक जाता है, अर्थात् वह अपने रास्ते पर चल नहीं पाता ।

विशेष—अत्युक्ति और व्याजस्तुति अलंकार ।

तुलना—‘मेरे कहे हाहा करि नीरे ह्वै निहारी जब,
जेते बट बाट के बटाऊ मारे जात हैं ।’

—आलम

सवैया

जाको लसै मुख चन्द समान कमानी सी भीह गुमान हरै ।
दीरघ नैन सरोजहुँ तैं मृग खजन मीन की पाँत दरै ॥
रसखान उरोज निहारत ही मुनि कीन समाधि न जाहि टरै ।
जिहि नीके नवै कटि हार के भार सो तासो कहै सब काम करै ॥२०३॥

शब्दार्थ—गुमान हरै=गर्व को नष्ट करती है । सरोज=कमल । दरै=चूर्ण करना । उरोज=स्तन ।

अर्थ—कोई गोपी अपनी सखी से राधा के सौन्दर्य का वर्णन करती हुई कहती है कि हे सखि ! जिसका मुख चन्द्रमा के समान सुशोभित है । कमानी सी भीहे गर्व को नष्ट करती है, विशाल है नेत्र कमल से बढ़कर हैं और मृग, खजन तथा मीन की पक्षियों को चूर्ण करने वाले हैं । आनन्द-सागर स्तनों को देखते ही ऐसा कीन ऋषि है जो अपनी समाधि से विचलित नहीं हो जाता । जो कटि के हार के बोझ से ही, अपनी सुकुमारता के कारण, नीचे झुक जाती है, उससे सब काम करने को कहते हैं ।

विशेष—१. उपमा, व्यतिरेक, वक्रोक्ति, अतिशयोक्ति अलंकार ।

२. यह सवैया श्री विश्वनाथप्रसाद मिश्र द्वारा सम्पादित ‘रसखान-ग्रन्थावली’ में नहीं है ।

पाठान्तर—इस सवैया की प्रथम दो पक्तियों का यह रूप भी मिलता है ।

‘यह जाको लसै मुख चन्द-समान कमान-सी भीह गुमान हरै ।
अति दीरघ नैन सरोजहूँ ते मृग खजन मीन की पाँति दरै ॥’

सवैया

प्रेम कथानि की बात चलै चमकै चित चंचलता चिनगारी ।
लोचन बक विलोकनि लोलनि बोलनि मै बतियाँ रसकारी ॥
सोहै तरंग अनग को अगनि कोमल यौ भ्रमकै भनकारी ।
पूतरी खेलत ही पटकी रसखानि सु चौपर खेलत प्यारी ॥२०४॥

शब्दार्थ—लोलनि=सुन्दर, मधुर । रसकारी=आनन्ददायक । अनग=कामदेव । भ्रमकै=ध्वनि करती है । पूतरी=चौसर की गोट ।

अर्थ—कोई गोपी अपनी सखी से चौपड़ का वर्णन करती हुई कह रही है कि जब भी प्रेम-कथाओं की चर्चा चलती है तो कृष्ण के मन में चंचलता की चिनगारी चमकने लगती है । वे वक्र दृष्टि से देखने लगते हैं, मधुर बोल बोलने लगते हैं और उनकी बातें अत्यधिक आनन्द से भरी हुई होती हैं । उनके अगो में कामदेव की लहरे सुशोभित हो जाती हैं । रसखान कहते हैं कि उन्होंने अपनी प्राणप्रिया के साथ चौपड़ खेलते हुए अपनी गोट को पटक दिया, अर्थात् वे अपनी प्रिया के प्रेम में इतने तल्लीन हुए कि चौपड़ खेलना ही भूल गये ।

विशेष—अनुप्रास अलकार ।

मानवती राधा

सवैया

वारति जा पर ज्यौ न थकै चहुँ ओर जिती नृपुंती घरती है ।
मान सकै घरती सो कहाँ जिहि रूप लखै रति सी रती है ।
जा रसखान बिलोकन काज सदाई सदा हरती वरती है ।
तौ लगि ता मन मोहन की अँखियाँ निसि द्यौस हहा करती है ॥२०५॥^२

शब्दार्थ—वारति=न्यौछावर करती हुई । ज्यौ=जीव, प्राण । ती=स्त्रियाँ । मान सकै घर=जो मान धारण कर सके । रती=रती के समान । हरती वरती है=आकुल रहती है । तौ लगि=तेरे लिए । निसि द्यौस=रात-दिन । हहा करती है=अनुनय-विनय करती रहती है ।

अर्थ—मानवती राधा को उसकी सखी समझाती हुई कहती है कि हे राधे ! जिस कृष्ण पर चारों ओर के राजाओं की सभी स्त्रियाँ अपने प्राणों

को न्यौछावर करते हुए नहीं थकती । ऐसी स्त्रियाँ कहाँ है जो कृष्ण से विमुख होकर मान धारण कर सके, भले ही उनकी सुन्दरता में रति भी रत्ती के समान हो, नगण्य हो । जिस आनन्द-सागर कृष्ण को देखने के लिए सभी स्त्रियाँ सदा ही आकुल रहती हैं, उसी मनमोहन कृष्ण की आँखें रात-दिन तेरे लिए अनुनय-विनय करती रहती हैं । (अतः तू अपना मान छोड़कर कृष्ण से शीघ्र मिल ।)

विशेष—१. यमक, व्यतिरेक, उपमा ।

२. यह सवैया श्री विश्वनाथप्रसाद मिश्र द्वारा सम्पादित 'रसखान-ग्रन्थावली' में नहीं है ।

सवैया

मान की औधि है आधी घरी अरी जौ रसखानि डरै हित के डर ।
कै हित छोड़ियै पारियै पाइनि ऐसे कटाछनही हियरा-हर ॥
मोहनलाल को हाल विलोकियै नेकु कछु किनि छवै कर सो कर ।
ना करिवे पर वारे है प्रान कहा करि है अब हाँ करिवे पर ॥२०६॥

शब्दार्थ—औधि=अवधि । हित=प्रेम । कै=या तौ । हियरा हर=हृदय को हर; मन को जीत लो ।

अर्थ—कोई गोपी अपनी मानिनी सखी राधा को समझाती हुई कहती है कि यदि आनन्द-सागर प्रेम के कारण डर जाये तो मान की आधी घड़ी होनी चाहिए, अर्थात् यदि कृष्ण तेरे मान से भयभीत हो गये हैं तो मुझे अपना मान छोड़ देना चाहिए । या तो तुम उनसे प्रेम ही छोड़ दो, और यदि प्रेम को नहीं छोड़ सकती तो उसके पैरों में पड़कर ऐसी तिरछी दृष्टि से देखो कि उसके मन को ही जीत लो । तुम अपने वियोग में कृष्ण का तनिक हाल तो देखो, वह बेचारा तुम्हारे विरह में हाथ मल रहा है । वह तुम्हारी 'नहीं' पर ही अपने प्राणों को न्यौछावर करता है । न जाने 'हाँ' करने पर वह क्या करेगा ।

विशेष—परम्परागत वर्णन है ।

सवैया

तू गरवाइ कहा भगरै रसखानि तेरे बस बावरो होसै ।
तौ हूँ न छाती सिराइ अरी करि भार इतै उतै बाझिन कोसै ।

लालहि लाल कियेँ अँखियाँ गहि लालहि काल सो क्यौ भई रोसै ।

ए विधना तू कहा री पढी बस राख्यो गुपालहि लाल भरोसै ॥२०७॥

शब्दार्थ—गरवाइ=गर्व करके । सिराइ=ठडी पडना । करि भार=डाह करके ।

अर्थ—कोई गोपी अपनी सखी राधा को समझाती हुई कहती है कि तू गर्व करके मुझसे क्या झगड़ा करती है । आनन्द सागर कृष्ण तेरे प्रेम में पागल होकर तेरे वश में हो गये हैं, तो भी तेरी छाती ठडी नहीं हुई और डाह करके फिर भी मुझे बध्या होने की गाली देती है । कृष्ण तेरे लिए लाल आँखें किये हुए हैं, अर्थात् आतुरता से तेरी प्रतीक्षा करते हैं । कृष्ण को अपने वश में करके भी काल की भाँति क्यों क्रोध करती है । हे दैव ! तूने यह विद्या कहाँ से पढी है कि तूने कृष्ण को अपने प्रेम का झूठा विश्वास दे दिया है और वह तेरे ही भरोसे रहता है ।

विशेष—अनुप्रास और यमक अलंकार ।

सवैया

पिय सो तुम मान कर्यौ कत नागरि आजु कहा किनहूँ सिख दीनी ।

ऐसे मनोहर प्रीतम के तरुनी बरुनी पग पोछै नवीनी ॥

सुन्दर हास सुधानिधि सो मुख नैननि चैन महारस भीनी ।

रसखानि न लागत तोहि कछू अब तेरी तिया किनहूँ मति दीनी ॥२०८॥

शब्दार्थ—कत=क्यों । सिख=शिक्षा । बरुनी=बरौनियों से । सुधानिधि=चन्द्रमा । महारस=अत्यधिक आनन्द ।

अर्थ—कोई गोपी अपनी मानिनी सखी, राधा की ताड़ना करती हुई कहती है कि हे चतुर सखि ! तुम अपने प्रिय से क्यों मान कर रही हो ? तुम्हें आज क्या हो गया है ? किसने तुमको ऐसी शिक्षा दी है ? तुम्हारा प्रिय तो इतना मनोहर है कि तरुणियाँ उसके पैरों को अपनी बरौनियों से पोछती हैं । उसका हास्य सुन्दर है, मुख चन्द्रमा के समान सुन्दर है, उसके नेत्र सुख देने वाले और अत्यन्त आनन्द से भरे हुए हैं । ऐसा आनन्द सागर प्रिय अब तेरा कुछ नहीं लगता, अर्थात् तू उससे रूठी हुई है । हे तिया ! न जाने किसने तेरी मति को छीन लिया है जो तू ऐसे मनोहर प्रियतम से मान करके बैठी हुई है ।

विशेष—१. अनुप्रास, उपमा अलंकार ।

२ 'तिया' शब्द के प्रयोग में भर्त्सना का भाव निहित है ।

कवित्त

डहडही वैरी मंजु डार सहकार की पै,
 चहचही चुहल चहूँकित अलीन की ।
 लहलही लोनी लता लपटी तमालन पै,
 कहकही तापै कोकिला की काकलीन की ।
 तहतही करि रसखानि के मिलन हेत,
 वहवही बानि तजि मानस मलीन की ।
 महमही मन्द मन्द मारुत मिलनि तैसी,
 गहगही खिलनि गुलाब की कलीन की ॥२०६॥

शब्दार्थ—डहडही=फली हुई । सहकार=आम । अलीन की=भौरो की । लहलही=हरी भरी । लोनी=सुन्दर । काकलीन की=कुजो की । तहतही=शीघ्रता । रसखानि=आनन्द सागर कृष्ण । वहवही=भदी । बानि=आदत, स्वभाव । मारुत=हवा । गहगही=पूर्ण विकसित ।

अर्थ—कोई गोपी अपनी सखी मानवती राधा से वसन्त ऋतु का वर्णन करती हुई कहती है कि हे सखि ! आम की बीरो से युक्त तथा फली हुई सुन्दर डाली पर चारो ओर से भौरो की गूँज आनन्दपूर्वक गूँज रही है । हरी भरी सुन्दर लताये तमाल वृक्षो से लिपटी हुई है जिनपर कोयले कुज रही हैं । शीघ्रता से कृष्ण से मिलने के लिए गोपियाँ अपने हृदय का मलीन स्वभाव छोड़कर आतुर हो गई हैं । सुगन्धित मन्द मन्द मारुत चल रहा है और गुलाब की कलियाँ खिलकर पूर्ण विकसित हो गई हैं ।

ऐसे समय में तेरा मान करना उचित नहीं है ।

सवैया

जो कवहूँ मग पाँव न देत सु तो हित लालन आपुन गौनै ।
 मेरो कह्यौ करि मान तजौ कहि मोहन सो बलि बोल सलौनै ॥
 सौहै दिवावत हौ रसखानि तूँ सौहै करै किन लाखनि लौनै ।
 नोखी तूँ मानिनि मान कर्यौ किन मान दसत में कीनौ है कौनै ॥२१०॥
 शब्दार्थ—सलौनै=रुधुर । सौहै=सौगन्ध । सौहै=सम्मुख । लाखनि=

लाखों में सुन्दर मुख । नोखी=विलक्षण ।

अर्थ—कोई गोपी अपनी मानिनी सखी राधा को समझाती हुई कहती है कि जो स्त्रियाँ कभी घर से बाहर कदम भी नहीं रखती, वे भी कृष्ण के लिए स्वयं छिपकर गमन करती हैं, अर्थात् कृष्ण में इतना आकर्षण है कि धीरा भी उनसे मिलने के लिए अधीरा बन जाती है । अतः तू मेरा कहना मान कर अपना मान छोड़ और मोहन से मधुर-मधुर शब्दों में बातें कर । रसखान कहते हैं कि मैं तुम्हको सौगन्ध दिलाकर कहती हूँ कि हे लाखों में सुन्दर मुखवाली तू कृष्ण के सामने जा । हे मानिनी ! तू तो बहुत ही विलक्षण है, वरना बसन्त-ऋतु में भी कोई मान करता है ? अतः तू मेरा कहना मान और अपना मान तजकर कृष्ण से बातें कर ।

विशेष—तृतीय और चतुर्थ पंक्ति में यमक अलंकार ।

सखी-शिक्षा

सवैया

सोई है रास मैं नैसुक नाच कै नाच नचायौ कितौ सबको जिन ।
सोई है री रसखानि किते मनुहारनि सूँधे चितौत न हो छिन ॥
तो मैं धौं कौन मनोहर भाव बिलोकि भयौ बस हाहा करी तिन ।
औसर ऐसो मिलै न मिलै फिर लगर मौडो कनौड़ो करै छिन ॥२११॥
शब्दार्थ—लंगर=शरारती । मौडो=बालक । कनौड़ो=कृतज्ञ ।

अर्थ—कोई गोपी अपनी सखी को शिक्षा देती हुई कहती है कि हे सखि । वह वही कृष्ण है जो रासलीला में तनिक नाच कर सबको नचाया करता है । वही आनन्द-सागर कृष्ण है जो अनेक मनुहार करने पर भी पलभर के लिए भी सीधी तरह नहीं देखता; अर्थात् हर समय शरारत करता रहता है । न जाने तुम्हें वह कौन-से मनोहर भाव देखकर तेरे प्रति आकृष्ट हो गया है । ऐसा अवसर शायद आगे मिले या न मिले कि वह शरारती कृष्ण तुम्हें कृतज्ञ करे, अर्थात् तेरे प्रति आकृष्ट हो, अतः अब जो अवसर मिला है, उसे हाथ से न जाने दे ।

विशेष—उल्लेख अलंकार ।

सवैया

तौ पहिराइ गई चुरिया तिहि को घर बावरी जाय भरै री ।
वा रसखान को ऐतौ अधीन कै मान करै चलि जाहि परै री ॥

आवन को पुतरीत हठा करै नैननि धार अखण्ड ढरैरी ।

हाथ निहारि निहारि लला मनिहारिन की मनुहारि करै री ॥२१२॥

शब्दार्थ—ऐतौ अवीर ने—इस प्रकार अपने प्रेम के वश में करके । चलि जाहि परै—दूर हट, यह स्त्रियों की भर्त्सना देने की एक प्रकार की गाली है । मनुहारि—सत्कार ।

अर्थ—कोई गोपी अपनी सखी को समझाती हुई कहती है कि हे सखि । तुझे जो मनिहारी चूड़ियाँ पहना गई, तू जाकर उसका घर क्यों नहीं भर देती; अर्थात् उसे काफी धन क्यों नहीं दे देती । तू ने उस आनन्द-सागर कृष्ण को इस प्रकार अपने प्रेम के वश में कर लिया है कि वह तेरे बिना अब एक पल भी नहीं रह सकता और अब तू उसके पास जाने में हिचकिचाती है, उससे मान करती है । चल दूर हट । तेरे आने के लिए, तुझसे मिलने के लिए, कृष्ण की आँखें तुझसे अनुनय-विनय करती हैं और तेरे वियोग में उसकी आँखों से निरन्तर आँसू बहते रहते हैं । तू ने जो चूड़ियाँ पहन रखी हैं, इन चूड़ियों वाले हाथों को देखकर कृष्ण उस मनिहारी का अवश्य सत्कार करेगा, अर्थात् उसे साधुवाद देगा ।

विशेष—१ यमक अलंकार ।

२ यह सवैया श्री विशनाथप्रसाद मिश्र द्वारा सम्पादित 'रसखान ग्रन्थावली' में नहीं है ।

सवैया

मेरी सुनौ मति आइ अली उहाँ जौनी गली हरि गावत है ।

हरि है विलोकति प्रानन को पुनि गाढ परे घर आवत है ॥

उन तान की तान तनी ब्रज मैं रसखानि समान सिखावत है ।

तकि पाय वरौ रपटाय नही वह चारो सो डारि फँदावत है ॥२१३॥

शब्दार्थ—अली—सखी । जौनी—जिस । गाढ—विपत्ति । समान—ज्ञान ।

अर्थ—एक गोपी अपनी सखी से कृष्ण के प्रति सचेत रहने के लिए कहती हुई वर्णन करती है कि हे सखि । मेरी बात को ध्यान से सुनो और जिस गली में कृष्ण अपनी वाँसुरी बजाता हुआ जाता है, उस गली में बिल्कुल मत जाओ, क्योंकि देखते ही कृष्ण प्राणों को हर लेता है और फिर गोपियाँ

बेचारी प्रेम की विपत्ति लेकर ही अपने घरों को लौटती है। उसने अपनी चाँसुरी की तानों का सारे ब्रज में तान तान रक्खा है, अतः मैं तुझसे ज्ञान की बात कहती हूँ कि बहुत सोच समझकर पैर रक्खो, क्योंकि वह कृष्ण इसी प्रकार फँसाता है, जिस प्रकार चारा देकर मछली को फँसाया जाता है।

विशेष—१ यमक, श्लेष अलंकार।

२. 'तकि पाय घरौ रपटाय नही' मुहावरे का भावपूर्ण प्रयोग है।

सवैया

काहे कूँ जाति जसोमति के गृह पोच भली घर हूँ तो रई ही।

मानुष को डसिबौ अपुनो हँसिबौ यह बात उहाँ न नई ही॥

वैरिनि तौ दृग-कोरनि मे रसखान जो बात भई न भई ही।

माखन सौ मन लै यह क्यो वह माखनचोर के ओर नई ही॥२१४॥

शब्दार्थ—पोच भली=चाहे कमजोर ही सही। रई=दूध मथने की लकड़ी। उहाँ=वहाँ पर। वैरिनि=औरतो का आत्मीयता-सूचक सम्बोधन। तौ=तेरे। न भई ही=पहले नहीं थी। माखन सौ=माखन के समान कोमल।

अर्थ—कोई गोपी यशोदा के घर गई और वहाँ से कृष्ण के प्रेम के वशीभूत होकर लौटी। उसकी भर्त्सना करती हुई उसकी सखी कह रही है कि तू यशोदा के घर गई ही क्यों? रई तो तेरे भी पास थी, भले ही वह कमजोर सही। वहाँ कृष्ण के द्वारा प्रेम का जाल फैलाकर भोली नारियों को डसना और उन नारियों के फिर अपनी हँसी कराना कोई नई बात नहीं है। वहाँ तो प्रतिदिन ऐसा ही होता रहता है। हे वैरिनि! तेरे नेत्रों में आज जो बात मैं देख रही हूँ, वह पहले तो नहीं थी, अर्थात् आज तुम्हारी आँखों में प्रेम की मादकता है। अपना माखन-जैसा कोमल हृदय लेकर तू उस माखनचोर की ओर गई ही क्यों थी?

विशेष—१ उपमा अलंकार।

२. अतिम पंक्ति में 'माखन' और 'माखनचोर' का प्रयोग अत्यन्त औचित्यपूर्ण है।

३. श्री विश्वनाथप्रसाद मिश्र द्वारा सम्पादित 'रसखान-ग्रन्थावली' में यह सवैया नहीं है।

सवैया

हेरति बारही यार उसै तुव वावरी वाल, कहा बी करैगी ।

जो कवहुँ रसखानि लखै फिर क्यो हूँ न वीर ही वीर धरैगी ॥

मानि है काहू की कानि नही, जव रूप ठगी हरि रंग ढरैगी ।

यातै कही सिख मानि भट्ट यह हेरनि तेरे ही पैडे परैगी ॥२१५॥

शब्दार्थ—हेरति=देखती है । वीर=सखी । कानि=लज्जा, भय । रग=प्रेम । सिख=शिक्षा । भट्ट=सखी । हेरनि=देखा । पैडे=पीछे ।

अर्थ—कोई गोपी अपनी सखी को समझाती हुई कहती है कि हे सखि ! तू बार-बार कृष्ण की ओर देखती है । हे पगली ! तू नहीं जानती कि इसका परिणाम क्या होगा ? यदि कभी आनन्द-सागर कृष्ण ने तेरी ओर देख लिया तो, हे सखि ! फिर तू अपना सारा वैर्य खो बैठेगी और उसमें अनुरक्त हो जायेगी । तब तू किसी भी प्रकार की लज्जा नहीं पावेगी और कृष्ण के प्रेम में रग जायेगी । हे सखि ! इसलिए मैं तुझसे कहती हूँ कि तू मेरी शिक्षा मान, अन्यथा यह देखना तेरे ही पीछे पड़ जायेगा, अर्थात् जव तू कृष्ण से प्रेम करने लगेगी तो फिर तुझे बड़ी व्याकुलता होगी, तेरा सुख-चैन सब दूर हो जायेगा ।

सवैया

वाँके कटाछ चितैवो सिर्यौ बहुधा वरज्याँ हित कै हितकारी ।

तू अपने ढग की रसखानि सिखावनि देति न हौँ पचिहारी ॥

कौन की सीख सिखी सजनी अजहूँ तजि दै बलि जाउँ तिहारी ।

नन्द के नन्दन के फन्द अजूँ परि जैहै अनोखो निहारिनिहारी ॥२१६॥

शब्दार्थ—कटाछ=कटाक्ष, तिरछी दृष्टि से । हितकारी=प्रेम करने वाला पति । हौ पचिहारी=मैं कोशिश करके हार गई हूँ । निहारिनिहारी=देखने वाली ।

अर्थ—कोई गोपी अपनी मानिनी सखी को समझाती हुई कहती है कि हे सखि ! तूने वाँयी-तिरछी दृष्टि से देखना तो सीख लिया है, अर्थात् तू प्रेम करना तो जान गई है, पर प्राय अपना अपने प्रेम करने वाले पति की भर्त्सना कर देती है । तू तो अपने ही प्रकार की आनन्द-सागर से भरी हुई युवती है, जो मेरी शिक्षा नहीं मानती । मैं तो तुझे शिक्षा देते-देते कोशिश

करके हार गई हूँ । हे सजनी ! तू ने किसकी शिक्षा को ग्रहण कर लिया है ? अपना मान छोड़ दे, मैं तुझ पर न्योछावर होती हूँ । हे -विलक्षण दृष्टि से देखने वाली ! यदि तू कही कृष्ण के फन्दे में पड़ गई तो फिर मुसीबत आ जायेगी । अतः तुझे अपना मान छोड़कर अपने प्रियतम से प्रेम करना ही उचित है ।

सवैया

वैरिन तूँ वरजी न रहै अवही घर बाहिर बैर बढ़ैगौ ।

टोना सु नन्द छुटोना पढै सजनी तुहि देखि विसेपि पढ़ैगौ ॥

हसि है सखि गोकुल गाँव सतै रसखानि तबै यह लोक रढ़ैगौ ।

बैरु चढ़ै घरहि रहि बैठि अटा न एढै बदनाम चढ़ैगौ ॥२१७॥

शब्दार्थ—वरजी न रहै=रोकने पर नहीं रुकती । टोना=जादू । छुटोना=लडका । विसेप=विशेष । लोक=दुनिया । बैरु=आयु ।

अर्थ—कोई गोपी कृष्ण के प्रेम में दिवानी अपनी सखी को समझाती हुई कहती है कि हे सखि । तू रोकने पर भी नहीं रुकती । यदि तेरा कृष्ण के प्रति ऐसा ही लगाव रहा तो घर और बाहर बैर बढ़ जायेगा । नन्दपुत्र कृष्ण जादू के मन्त्र से तो सदा ही पढता रहता है, पर तुझे देखकर वह और भी विशेष रूप से पढेगा । सारा गोकुल गाँव तेरी हँसी उड़ायेगा और सारी दुनिया तेरी निन्दा करेगी । अब तेरी आयु चढ़ रही है; अर्थात् तू युवती हो रही है, अतः तेरा घर के अन्दर बैठना ही ठीक है; अट्टाली पर चढ़ना ठीक नहीं है, क्योंकि इससे तेरी बदनामी होगी ।

विशेष—१. 'वैरिनि' शब्द का प्रयोग आत्मीयता का सूचक है ।

२. 'बैरु चढ़ै' मुहावरे का भावपूर्ण प्रयोग है ।

३. अन्तिम पदित में लक्षणा शब्द-शक्ति और असंगति अलंकार का प्रयोग भाववर्द्धक है ।

सवैया

गोरस गाँव ही मैं विचिबो तचिबो नहीं नन्द-मुखानल झारन ।

गैल गहे चलियै रसखानि तौ पाप बिना डरियै किहि कारन ॥

नाहिं री ना भट्ट, क्यों करि कै बन पैठत पाइबी लाज सम्हारन ।

कुंजनि नन्दकुमार बसै तहाँ मार बसै कचनार की डारन ॥ २१८ ॥

शब्दार्थ—तचिवो=जलना । नद-मुखानल-भारन=ननद के मुँह की आग की लपटे । गैल—मार्ग । भटू=सखी । मार=कामदेव ।

अर्थ—कोई गोपी अपनी सखी से गोरस बेचने के लिए बाहर चलने के लिए कहती है । उसकी बात सुनकर वह सखी कहती है कि हे सखि ! मैं गोरस गाँव में ही बेचूँगी, क्योंकि ननद के मुख की आग की लपटों में जलना, ननद की फटकारे सुनना, अच्छा नहीं है । जब मैं बाहर जाती हूँ तो मेरी ननद कृष्ण और मुझे लक्ष्य करके अनेक प्रकार की मर्मन्तिक गालियाँ देती है । यह सुनकर वह गोपी कहती है कि हम अपने रास्ते चली जायेंगी । जब तुम्हारे मन में कोई पाप ही नहीं है तो फिर तुम अपने मन में क्यों डरती हो ? यह सुनकर फिर सखी कहती है कि सखि ! मैं तुम्हारे साथ नहीं चलूँगी, क्योंकि उस वन में घूमने पर जहाँ कृष्ण रहते हैं, किस प्रकार अपनी लाज सँभाली जा सकती है । वहाँ कुंजों में तो कृष्ण रहते हैं और कचनार की डालियों में कामदेव निवास करता है ।

कहने का भाव यह है कि उस वन का, जहाँ कृष्ण रहते हैं, वातारवण ही इतना मादक है कि वहाँ पहुँचते ही मन इतना कामपूर्ण हो जाता है कि फिर उचित-अनुचित का ध्यान ही नहीं रहता । अतः मुझे गाँव से बाहर निकलना उचित नहीं है ।

सवैया

वार ही गोरस बेचि री आजु तू माइ के मूड चढ़ै कत मौड़ी ।

आवत जात ही होइगी साँभ भटू जमुना मतरौड़ ली औड़ी ॥

पार गए रसखानि कहै अँखियाँ कहूँ होहिगी प्रेम कनौड़ी ।

राधे बलाइ ल्यौ जाइगी बाज अबै ब्रजराज सनेह की डौंडी ॥ २१६ ॥

शब्दार्थ—वार ही=इस पारही । मौड़ी=सखी । मतरौड़=मथुरा और वृन्दावन के बीच का एक स्थान । प्रेम कनौड़ी=प्रेम के वशीभूत ।

अर्थ—एक गोपी अपनी सखी से कहती है कि हे सखि ! आज तू अपना गोरस नदी के इस पार ही बेच ले और नदी के उस पार न जा । क्योंकि यमुना पार से मतरौड़ तक जाते-आते ही साँभ हो जायेगी । दूसरा कारण यह है कि नदी के उस पार जाने पर आनन्द सागर कृष्ण मिल जायेंगे, जिन्हें देखते ही न जाने आँखें प्रेम के वशीभूत हो जायें । फिर यह बात राधा तक भी पहुँच जायेगी और सारे ब्रज में कृष्ण के प्रेम की डौंडी पिट जायेगी ।

तुलना—‘हाय दर्द न बिसाखी सुनै कछु है जग बाजत नेह की डौडी ।’

— घनानन्द

कवित्त

ब्याही अनब्याही ब्रज माही सब चाही तासी,
 दूनी सकुचाही दीठि परै न जुन्हैया की ।
 नेकु मुसकानि रसखानि को बिलोकत ही,
 चेरी होति एक बार कुंजनि दिखैया की ॥
 मेरो कह्यो मानि अन्त मेरो गुन मानिहै री,
 प्रात खात जात ना सकात सौहै मैया की ।
 भाई की अटक ती लौ सासु की हटक जौ लौ,
 देखी ना लटक मेरे दूलह कन्हैया की ॥ २२० ॥

शब्दार्थ—जुन्हैया=चाँदनी । चेरी=दासी । हटक=बाधा ।

अर्थ—कोई गोपी अपनी सखी से कृष्ण की छवि का वर्णन करती हुई कहती है कि ब्रज की जितनी भी विवाहित नारियाँ और अविवाहित युवतियाँ हैं, सब कृष्ण को चाहती हैं, उससे प्रेम करती हैं । वैसे वे इतनी लज्जाशील हैं कि चाँदनी की दृष्टि भी उन पर न पड़ जाये, इसलिए दूने सकोच के साथ वे अपने घर से बाहर निकलती हैं । किन्तु उस तथा कुन्ज दिखाने वाले कृष्ण की तनिक सी मुस्कराहट को भी देख कर वे तुरन्त उसकी दासी बन जाती हैं । हे सखि । तुम मेरा कहना मानो और अन्त में तुम मेरा अहसान स्वीकार करोगी । तुम्हें अपनी माँ की सौगन्ध है, तुम कभी भी प्रात काल बिना खाना खाये वन में न जाना, अन्यथा वहाँ सारे दिन तुम्हें भूखा रहना पड़ेगा । भाई की बाधा और सासु की रुकावट मेरे मार्ग में तब तक ही बनी हुई है, जब तक उन्होंने मेरे प्रिय कृष्ण की छवि को नहीं देखा है; अन्यथा वे स्वयं भी उस छवि पर मुग्ध हो जायेगी ।

सवैया

मो हित तो हित है रसखान छपाकर जानहि जान अजानहि ।
 सोउ चबाव चलयौ चहुँवा चलि री चलि री खत तोहि निदानहि ॥
 जो चाहियै लहियै भरि चाहि हिये सहियै हित काज कहा नहि ।
 जान दै सास रिसान दै नन्दहि पानि दै मोहि तू कान दै तानहि ॥ २२१ ॥
 शब्दार्थ—मो हित तो हित है=मेरी भलाई तेरी ही भलाई में है ।

छपाकर=चन्द्रमा । चवाव=निन्दा । खत=हानि । निदानहि=अन्त में ।
जो चाहियै लहियै भरि चाहि=यदि कृष्ण को प्रेम पूर्वक आँख भरकर देखना
चाहती है । हित काज=प्रेम के लिए । पानि=हाथ ।

अर्थ—कोई गोपी अपनी सखी को शिक्षा देती हुई कहती है कि मेरी
भलाई तेरी ही भलाई है । अर्थात् मैं जो कुछ कह रही हूँ वह सब तेरी ही
भलाई के लिए कह रही हूँ । तू चन्द्रमा को जानकर भी अजान क्यों बनी हुई
है; अर्थात् चन्द्रमा भावोद्दीपक है, इस बात को जानकर भी तू कृष्ण से क्यों
नहीं मिल रही है । तेरे कलक की चर्चा चारों ओर चल रही है और इस चर्चा
से अन्त में तुझे ही हानि होगी, अतः तू चल कर कृष्ण से मिल । यदि तू
कृष्ण को प्रेमपूर्वक आँख भरकर देखना चाहती है तो तुझे सभी प्रकार की
निन्दा सहन करनी होगी, क्योंकि प्रेम के लिए क्या कुछ नहीं महा
जाता । अतः तू सास की चिन्ता छोड़, नन्द को क्रुद्ध होने दे, मुझे अपना हाथ
दे; अर्थात् मेरे ऊपर विश्वास कर और कृष्ण की तानों को सुन; अर्थात् कृष्ण
से मिल ।

विशेष — १. तृतीय पक्ति में यमक अलकार ।

२. यह सवैया श्री विश्वनाथ प्रसाद मिश्र द्वारा सम्पादित 'रस-
खान ग्रन्थावली' में नहीं है ।

सवैया

तेरी गलीन मैं जा दिन ते निकसे मन मोहन गोधन गावत ।
ये ब्रज लोग सो कौन सी बात चलाइ कै जो नहि नैन चलावत ॥
वे रसखानि जो रीझिहै नेकु तौ रीझि कै क्यों न बनाइ रिभावत ।
वावरी जी पै कलक लग्यौ तो निसक ह्वै क्यों नहीं अंक लगावत ॥२२२॥

शब्दार्थ—गोधन=गोचारण का गीत । अंक=हृदय ।

अर्थ—कृष्ण प्रेम से विमुख किसी गोपी को उसकी सखी समझती हुई
कहती है कि जिस दिन से तेरी गली में से श्रीकृष्ण गोचारण का गीत गाते
हुए निकले हैं, उस दिन से न जाने ब्रज में लोगो ने कौन सी बात चला दी है
कि तेरे नेत्र ही पटकने बन्द हो गये हैं । यदि आनन्द सागर कृष्ण तुझ पर
तनिक भी रीझ गये हैं तो तू अच्छी प्रकार से रिझाकर उन्हें अपने वश में
क्यों नहीं करती, यदि तुझे प्रेम का कलक लग ही गया है तो निर्भय होकर
कृष्ण को अपने हृदय से क्यों नहीं लगाती ?

विशेष—१. 'बात' का क्लिष्ट प्रयोग है।

२ अतिम पक्ति में शब्द एवं भाव छटा अनुपम है।

तुलना—१. 'कौन संकोच रह्यौ है निवाज,

जो तू तरसै उनहूँ तरसावत।

बावरी जो पै कलक लग्यौ,

तो निसक ह्वै क्यो नहि अक लगावत।

—निवाज

२. विस्तु विरचि बिचारि मनावत,

गावत कीरति मोद पगावत।

बावरी जो पै कलक लग्यौ,

तो निसक ह्वै क्यो नही अक लगावत।'

—मोहन

३ होनी हुती सो तो होय चुकी,

इन बातन में अब लाभ कहा है।

लागे कलंकहु अक नही,

तो सखि भूल हमारी महा है।'

—हरिश्चन्द्र

सवैया

जाहु न कोऊ सखी जमुना जल रोके खड़ा मग नन्द को लाला।

नैन नचाइ चलाइ चितै रसखानि चलावत प्रेम को भाला ॥

मैं जु गई हुती वरन बाहर मेरी करी गति टूटि गौ माला।

होरी भई कै हरी भए लाल कै लाल गुलाल पगी ब्रजवाला ॥ २२३ ॥

शब्दार्थ—मग=मार्ग। नन्द को लला=कृष्ण।

अर्थ—कोई गोपी अपनी सखी को समझाती हुई कहती है कि हे सखि ! किसी को भी यमुना जल भरने नहीं जाना चाहिए, क्योंकि कृष्ण मार्ग रोके हुए खड़ा है। वह अपनी आँखों को नचाकर मन को चंचल बना कर प्रेम का भाला चलाता है। मैं जो बाहर निकल गई तो मेरी उस कृष्ण ने ऐसी दुर्गति की कि मेरे गले की माला भी टूट कर गिर गई। यह होली है या कृष्ण के द्वारा हरण है, क्योंकि सभी ब्रजवालाएँ कृष्ण के गुलाल से लाल हो रही हैं।

सोरठा

अरी अनोखी वाम, तू आई गौने नई ।

बाहर घरसि न पाय, है छलिया तुव ताक मैं ॥२२४॥

शब्दार्थ—अनोखी=सुन्दर । वाम=स्त्री । छलिया=कृष्ण । तुव ताक मैं=तेरी खोज मे ।

अर्थ—ब्रज मे आई किसी नई गोपी को अन्य गोपी चेतावनी देती हुई कहती है कि हे सुन्दर नारी ! तू नई-नई गौने मे आई है, अतः यहाँ की बातों को नहीं जानती । तू अपने घर से बाहर पैर न रखना, क्योंकि कृष्ण तेरी खोज मे है । यदि तू उसे मिल गई तो वह तुझे अपने प्रेम-बन्धन मे बाँध लेगा ।

संयोग-वर्णन

सवैया

विहरै पिय प्यारी सनेह सने छहरै चुनरी के फवा कहरै ।

सिहरै नव जोवन रग अनग सुभग अपागनि की गहरै ॥

वहरै रसखानि नदी रस की लहरै वनिता कुल हू भहरै ।

कहरै विरही जन आतप सो लहरै लली लाल लिये पहरै ॥२२४॥

शब्दार्थ—सनेह सने=प्रेम पूर्वक । फवा=फुंदने । फहरै=गिरते हैं । सुभग=सुन्दर । अपागनि=नेत्रों की कोरे । कहरै=दुखी होते हैं । आतप=विरह दुख ।

अर्थ—कोई गोपी अपनी सखी से राधा-कृष्ण के मिलन का वर्णन करती हुई कहती है कि हे सखि ! कृष्ण प्रिया राधा के साथ प्रेमपूर्वक विचरण करते हैं जिसकी चुनरी के फुंदने छहर कर गिरते हैं । सुन्दर नेत्र-बोरो की गभीरता से उसका नव-यौवन सिहरता है तथा प्रेम के कारण काम-भावना उत्पन्न होती है । रसखान कहते हैं कि वहाँ पर आनन्द की नदी बहती है जिसके किनारों पर खड़ी ब्रज-वालाँ काँपती हैं । उसके कारण विरही जनो का विरह दुख बढ़ता है और वे उससे दुखी होते हैं तथा कृष्ण राधा के साथ प्रसन्न हो रहे हैं ।

विशेष—अनुप्रास अलंकार ।

सवैया

सोई हुती पिय की छतियाँ लगि बाल प्रबीन महा मुद मानै ।

केस खुले छहरै बहरै फहरै छबि देखत मैं अमानै ॥

वा रस मै रसखानि पगी रति रैन जगी आँखियाँ अनुमानै ।

चन्द पै बिम्ब औ बिम्ब कैरव कैरव पै मुकता प्रयानै ॥२२६॥

शब्दार्थ—सोई हुई=सोई हुई थी । मुद=प्रसन्नता । छहरै=फैले हुए थे । बहरै फहरै=बाहर निकलकर हिल रहे थे । मैं=कामदेव अमानै=अमान्य, तिरस्करणीय । चन्द=चन्द्रमा जैसा मुख । बिम्ब=कुँदरु, आँखों की ललाई । कैरव=कुमुद, आँखों के सफेद कोए । मुकतान—मोतियों के; रात में जागने के कारण आँसुओं के ।

अर्थ—कोई गोपी अपनी सखी से अन्य सखी के सुरतान्त का वर्णन करती हुई कहती है कि वह चतुर बाला अत्यन्त प्रसन्नता के साथ अपने प्रिय-तम की छाती से लगाकर सोई हुई थी । उसके खुले हुए केश बाहर निकलकर हिल रहे थे । उसकी शोभा को देखकर कामदेव भी तिरस्करणीय था । प्रिय के साथ आनन्द में डूबी रहकर रातभर जागने की बात का पता उसकी आँखों से चल रहा था । उसका अलसाया हुआ मुख, लाल आँखें, आँखों के सफेद कोए और रातभर जागने के कारण जम्भाई के कारण निकले हुए आँसू ऐसे प्रतीत होते थे मानो चन्द्रमा पर बिम्ब, बिम्ब पर कुमुद और कुमुद पर मोती हो ।

विशेष—प्रतीप और रूपक अलंकार ।

सवैया

अगनि अग मिलाइ दोऊ रसखानि रहे लिपटे तरु घाही ।

संगनि सग अनग को रंग सुरग सनी पिय दै गलवाही ॥

वैन ज्यौ मैं सु ऐन सनेह को लूटि रहे रति अन्तर जाही ।

नीबी गहै कुछ कंचन कुम्भ कहै वनिता पिय नाही जु नाही ॥२२७॥

शब्दार्थ—अनग=कामदेव । रग=प्रेम । सुरग=उन्मादक । ऐन=घर ।

अर्थ—कोई गोपी अपनी सखी से किसी अन्य गोपी के सुरत-शृंगार का वर्णन करती हुई कहती है कि वे दोनों वृक्ष की छाया में अपने अंग से अंग मिला रहे थे । वह नायिका उसके साथ कामदेव के उन्मादक प्रेम में डूबकर

उसे बाहुपाश में जकड़े हुए थी। उसके वचन कामदेव के घर जान पड़ते थे; अर्थात् उसके वचनों से काम-भावना की अभिव्यक्ति हो रही थी। वे दोनों रति के अन्तर्गत प्रेम की लूट कर रहे थे। जब उसका प्रिय उसकी नीवी को और कचन कुच-कुम्भों को ग्रहण करता था तो वह वनिता नहीं नहीं कर रही थी।

विशेष—अनुप्रास, उपमा, रूपक अलंकार।

तुलना—‘हाथन सो गहि नीवी कह्यौ पिय,
नाही जु नाही जु नाही जु नाही।’

—हरिश्चन्द्र

सवैया

आज अचानक राविका रूप-निधान सो भेट भई वन माही।

देखत दीठि परे रसखानि मिले भरि अक दिये गलवाही ॥

प्रेम-पगी वतियाँ दुहुँ घाँ की दुहुँ को लगी अति ही चितचाही।

मोहिनी मन्त्र वसीकर जन्त्र हटा पिय की तिय की नहि नाही ॥२२८॥

शब्दार्थ—रूप-निधान—सौन्दर्य-भण्डार । रसखानि—आनन्द-सागर कृष्ण । अक—बाहुपाश । प्रेम-पगी—प्रेमपूर्ण ।

अर्थ—कोई गोपी अपनी सखी से राधा-कृष्ण के मिलन का वर्णन करती हुई कहती है कि हे सखि ! आज अचानक वन में राधा और सौन्दर्य-भण्डार कृष्ण की भेट हो गई। आनन्द-सागर कृष्ण ने उसे देखते ही गलवाँही देकर बाहुपाश में बाँध लिया। दोनों प्रेम-पूर्ण बातें करने लगे, दोनों के मन में ही मिलन की अत्यन्त प्रबल इच्छा थी। प्रियतम कृष्ण का ‘हा हा करना’ यदि मोहिनी मन्त्र था तो राधा का ‘नहीं नहीं करना’ वशीकरण मन्त्र था।

सवैया

वह सोई हुती परजक लली लला लीनों सु आह भुजा भरिकै।

अकुलाइ कै चौकि उठी सु डरी निकरी चहै अकनि ते फरिकै ॥

भटका भटकी मैं फटी पटुका दर की अगिया मुकता भरिकै।

मुख बोल कहे रिस से रसखानि हटी जू लला निबिया धरिकै ॥२२९॥

शब्दार्थ—हुती=थी । परजक=पर्यक । अकनि ते=भुजाओं में से ।
‘पटुका=दुपट्टा । दरकी=फट गई । मुकता=मोती ।

अर्थ—कोई गोपी अपनी सखी से अन्य सखी की सुरत का वर्णन करती हुई कहती है कि वह अपने पलग पर सोई हुई थी कि कृष्ण ने आकर उसे अपनी भुजाओं में भर लिया। वह आकुल होकर चौक उठी, डर गई और फड़क कर उसकी गोद से निकलने का प्रयत्न करने लगी। इस भटका भटकी में उसका दुपट्टा फट गया, चोली भी फट गई और उसमें से मोती टूटकर नीचे गिर पड़े। रसखान कहते हैं, तब उसने क्रोधपूर्वक कृष्ण से कहा कि हे कृष्ण ! दूर हट जाओ, मेरी नीवी घडक रही है।

विशेष—अनुभावों का सजीव एवं स्वाभाविक वर्णन है।

सवैया

अँखियाँ अँखियाँ सौ सकाई मिलाई हिलाई रिभाई हियो हरिवो ।
बतिया चित चोरन चेटक सी रस चारु चरित्रन ऊचरिवो ॥
रसखानि के प्रान सुधा भरिवो अधरान पै त्यौ अधरा धरिवो ।
इतने सब मैन के मोहिनी जन्त्र पै मन्त्र बसीकर सी करिवो ॥ २३०॥

शब्दार्थ—सकाई=सकोचपूर्वक । चेटक=जादू । चारु=सुन्दर ।
ऊचरिवो=उच्चरित करना, कटना । बसीकरण=वशीकरण । सी=सी सी की ध्वनि ।

अर्थ—कोई गोपी अपनी सखी से अन्य सखी के सुख शृंगार का वर्णन कहती हुई कहती है कि उसने सकोचपूर्वक अपने प्रियतम की आँखों से अपनी आँखें मिलाई; गर्दन हिलाकर और उसके द्वारा अपने प्रिय को रिभाक, उसने उसका हृदय अपने वश में कर लिया। चित्त को चुराने वाले चीरो की सी जादू-भरी बातें करके उसने रमणीय आनन्द दिया। अपने प्रिय के अधरों पर अपने अधर रखकर उसने उसके प्राणों में अमृत उड़ेल दिया। इतने सारे मोहने वाले कामदेव के मन्त्रों को अपनाकर भी उसने सी-सी ध्वनि करके अपने करने प्रियकर वशीकरण मन्त्र डाल दिया।

विशेष—यमक, उपमा अलंकार ।

सवैया

वागन काहे को जाओ पिया, बैठी ही बाग लगाम दिखाऊँ ।
एडी अनार सी मौरि रही, बरियाँ दोउ चम्पे की डार नवाऊँ ॥

छातिन मैं रस के निबुआ अरु घूँघट खोलि कै दाख चखाऊँ ।

टाँगन के रस के चसके रति फूलनि की रसखानि लूटाऊँ ॥२३१॥

शब्दार्थ—मौरि रही=फूल रही है । दाख=द्राक्षा, अधर । टाँगन=छुहारा ।

अर्थ—कोई नायिका नायक से कह रही है कि हे प्रियतम ! तुम वाग मे क्यो जाते हो ? मैं घर बैठे ही तुम्हे वाग लगाकर दिखा सकती हूँ । मेरी एडियाँ अनार की भाँति फूल रही है, मानो ये ही अनार है । दोनो बाँहे ही मानो चम्पे की डाले हैं । छाती मे उभरे हुए स्तन ही मानो रस भरे नीबू हैं । मैं घूँघट खोलकर तुम्हे द्राक्षा चखा सकती हूँ, अर्थात् मेरे अधरो के चुम्बन मे द्राक्षा का आनन्द भरा हुआ है । रसखान कहते हैं कि जंग रूपी छुहारो का रस तुम्हे चखा सकती हूँ और प्रेम की कलियाँ तुम पर लुटा सकती हैं ।

विशेष—वर्णन मे काव्यात्मकता कम है और सागरूपक की संयोजना का प्रयत्न अधिक है ।

वियोग-वर्णन

सवैया

फूलत फूल सवै वन बागन बोलत मौर वसत के आवत ।

कोमल की किलकार सुनै सब कत विदेसन ते सब घावत ॥

ऐसे कठोर महा रसखान जु नेकहु मारी ये पीर न पावत ।

हक सी सालत है हिय मैं जब बैरिन कोमल कूक सुनावत ॥२३२॥

शब्दार्थ—कंत=प्रियतमा । हक=वरछी ।

अर्थ—कोई विरहणी गोपी अपनी सखी से कहती है कि सारे बागो मे फूल खिल गये हैं । वसन्त के आगमन के कारण भीरे उन पर गूँज रहे हैं । कोयल की कू-कू सुनकर सबके प्रियतम कृष्ण इतने कठोर हैं कि मेरी विरह-वेदना की तकनिक भी चिन्ता नहीं करते । जब कोयल बोलती है तो उसकी कूक हृदय मे वरछी के समान लगती है ।

विशेष—१. उपमा अलंकार ।

२. परम्परागत वर्णन ।

३. यह सवैया श्री विश्वनाथ प्रसाद मिश्र द्वारा सम्पादित 'रसखान-ग्रन्थावली' मे नहीं है ।

सवैया

रसखान सुनाह वियोग के ताप मलीन महा दुति देह तिया की ।

पकज सौ मुख गौ मुरभाय लगी लपटै बरै स्वाँस हिया की ॥

ऐसे मे आवत कान्ह सुने हुलसै सुतनी तरकी अँगिया की ।

यो जन जोति उठी तन की उसकाय दई मनौ वाती दिया की ॥२३३॥

शब्दार्थ—सुनाह=प्रियतम । ताप=दुख । पकज=कमल । बरै=जलने लगी । हुलसै=प्रसन्न हुई । सुतनी=दृढ़ डोर ।

अर्थ—कोई गोपी अपनी सखि से किसी अन्य विरहिणी गोपी के विषय में कह रही है । वह गोपी अपने प्रियतम के वियोग-दुख से इतनी दुखी थी कि उसके शरीर की शोभा भी मर पड़ गई थी । उसका कमल-जैसा मुख भी मुरझा गया था । उसके हृदय की साँसे लपट बनकर जलने लगी थी । इसी बीच उसने अपने प्रियतम के आगमन की खबर सुनी । वह इतनी प्रसन्न हुई कि उसकी कचुकी की दृढ़ डोर भी कसमसाने लगी । उसका शरीर इस प्रकार शोभायुक्त हो उठा, मानो दीपक की बत्ती को उकसा दिया गया हो ।

विशेष—१. उपमा, उत्प्रेक्षा, समाधि अलंकार ।

२ सवैया २०० में भी यही उत्प्रेक्षा है ।

३ यह सवैया श्री विश्वनाथप्रसाद मिश्र द्वारा सम्पादित 'रसखान-ग्रन्थावली' में नहीं है ।

सवैया

विरहा की जु आँच लगी तन में तब जाय परी यमुना जल में ।

विरहानल तैं जल सूखि गयो मछली बही छाँडि गई तल में ॥

जब रेत फटी रु पताल गई तब सेस जर्यौ धरती-तल में ।

रसखान तबै इहि आँच मिटै जब आय कै स्याम लगै गल में ॥२३४॥

शब्दार्थ—विरहानल=वियोग की आग । धरती-तल=पाताल लोक । आँच मिटै=दुख दूर होगा, ज्वाला शान्त होगी ।

अर्थ—कोई गोपी अपनी सखी से अन्य विरहिणी गोपी का वियोग-दुख वर्णन करती हुई कहती है जब उसके शरीर में वियोग-दुख की आग बढ़ गई तो वह उसे शान्त करने के लिए यमुना जल में कूद गई । तब विरह की आग के कारण यमुना का जल सूख गया और मछलियाँ जल के अभाव के कारण

यमुना के तल में बैठ गईं । उस आग के कारण जब यमुना का जल अत्यन्त गर्म हो गया तो उसकी गरमी से पाताल-लोक में स्थित शेषनाग भी जलने लगा । रसखान कहते हैं कि यह ज्वाला तभी शांत हो सकती है जब कृष्ण उसके गले से आकर लगेगे ।

विशेष—१. अहात्मकता के कारण भाव-शून्यता ।

२. यह सवैया श्री विश्वनाथप्रसाद मिश्र द्वारा सम्पादित 'रसखान-ग्रन्थावली' में नहीं है ।

तुलना—'प्यारी कौ परसि पौन गयो मानसर पँह,
लागत ही औरे गति भई मानसर की ।
जलचर जरे औ सिवार जरि छार भयी,
जल जरि गयी पक सूख्यो भूमि दरकी ।'

—गग कवि

सवैया

बाल गुलाब के नीर उसीर सो पीर न जाइ हियँ जिन ढारौ ।
कज की माल करौ जु विछावत होत कहा पुनि चदन गारौ ॥
एते इलाज विकाज करौ रसखानि को काहे को जारे पै जारौ ।
चाहत ही जु जिवायौ भटू तौ दिखावौ बड़ी बड़ी आँखनिवारौ ॥२३५॥

शब्दाथ—गुलाब के नीर=गुलाब जल । उसीर=खस । गारौ=लेप ।
विकाज=व्यर्थ । भटू=सखी ।

अर्थ—कोई विरह-व्याकुल गोपी अपनी सखी से कहती है कि हे सखी ! मेरे हृदय में गुलाबजल और खस छिड़कना बेकार है । कंजमाला का बिछावन करने से तथा चदन का लेप करने से भी कोई लाभ नहीं है । ये सारे उपचार व्यर्थ हैं, वरन् ये तो मेरी जलन को और अधिक बढ़ाते हैं । हे सखि ! यदि तুম मुझे जीवित रखना चाहती हो तो मुझे विशाल नेत्र वाले कृष्ण का दर्शन करा दो ।

विशेष—वर्णन परम्परागत है ।

सवैया

काह कहूँ रतियाँ की कथा वलियाँ कहि आवत है न कछू री ।
आइ गोपाल लियौ भरि अक कियौ मनभायौ पियौ रस कू री ॥

ताहि दिना सो गडी अँखियाँ रसखानि मेरे अंग अंग में पूरी ।

पै न दिखाई परै अब बावरी दै कै वियोग विथा की मजूरी ॥२३६॥

शब्दार्थ—रतियाँ की=रात की । अक=गोद ।

अर्थ—कोई गोपी अपनी सखी से अपनी-विरह व्यथा का वर्णन करती हुई कहती है कि हे सखि ! मैं रात की बातें तुमसे क्या कहूँ ? वे बातें तो कहने में ही नहीं आती । कृष्ण ने मुझे अपनी गोद में भर लिया, उसने अपनी मनोकामना पूरी की, और रस का पान किया । उसी दिनसे उस आनन्द-सागर की आँखें पूर्णतया मेरे अंग-अंग में गड़ी हुई हैं, अर्थात् मैं उनकी शोभा को तनिक देर के लिए भी नहीं पूल पाती । किन्तु हे सखि ! वियोग-व्यथा को मजदूरी रूप में देकर वह कृष्ण अब दिखाई नहीं पड़ता ।

विशेष—१. परम्परागत वर्णन है ।

२. 'बावरी' शब्द आत्मीयता का सूचक है ।

कवित्त

काह कहूँ सजनी सँग की रजनी नित बीतै मुकुन्द कोटे री ।

आवन रोज कहै मनभावन आवन की न कवौ करी फेरी ।

सौतिन-भाग बढ़्यौ ब्रज मै जिन लूटत हैं निसि रग घनेरी ।

मो रसखानि लिखी विधना मन मारिकै आयु बनी हौ अहेरी ॥२३७॥

शब्दार्थ—मुकुन्द=कृष्ण । रग=आनन्द । विधना=ब्रह्मा । अहेरी=शिकारी ।

अर्थ—कोई गोपी अपनी सखी से सपत्नी-भाव को प्रकट करती हुई कहती है कि हे सजनी ! मैं तुमसे अपनी व्यथा किस प्रकार प्रकट करूँ ? सारी रात कृष्ण की बाट देखते-देखते ही बीत जाती है । मनभावन कृष्ण रोजाना मेरे पास आने को कहते हैं, लेकिन उनकी मेरे यहाँ आने की कभी बारी ही नहीं आती । आजकल तो ब्रज में वह सौत ही बहुत भाग्यशाली है जो कृष्ण के साथ रात को अत्यधिक आनन्द का भोग करती है । रसखान कहते हैं कि मेरे भाग्य में तो ब्रह्मा ने यही लिखा है कि मैं अपने-आपको मारने के लिए स्वयं ही अपनी शिकारी बनी हुई हूँ ।

सवैया

आये कहा करि कै कहिए वृषमान लली सो लला दृग जोरत ।

ता दिन तें अँसुवान की धार रुकी नहीं जद्यपि लोग निहोरत ।

वेगि चलो रसखान बलाइ लीं क्यो अभिमानन भौंह मरोरत ।

प्यारे । पुरन्दर होय न प्यारी अवै पल आधिक मे ब्रज बोरत ॥२३८॥

शब्दार्थ—निहोरत=समझाते हैं । बलाइ लीं=बलैया लेती हूँ ।

पुरन्दर=इन्द्र । पल आधिक मे=एकआध पल मे । बोरत=डुबोना ।

अर्थ—राधा की कोई सखी कृष्ण को समझाती हुई कहती है कि हे कृष्ण ! तुम यह तो बताओ कि राधा से अपनी आँखें मिलाकर तुम उस पर क्या जादू कर आये हो, क्योंकि उसी दिन से उसकी आँसुओं की धारा रुकी नहीं है, यद्यपि लोग उसे बहुत समझाते हैं । हे आनन्द-सागर कृष्ण । जल्दी चलो, मैं तुम्हारी बलैया लेती हूँ, क्यो अभिमान करके तुम रुक रहे हो । हे प्यारे ! यदि तुम नहीं चले तो वह विरहिणी राधा अपने आँसुओं में एक-आध पल में ही इन्द्र बनकर सारे ब्रज को डुबो देगी ।

विशेष—१. एक बार इन्द्र ने ब्रज-वासियों से रुष्ट होकर समूचे ब्रज को डुबा देने का सकल्प किया और मूसलाधार वर्षा शुरू कर दी तब कृष्ण ने गोवर्धन पर्वत उठाकर ब्रजकी रक्षा की । इस सबैया की अंतिम पंक्ति में इसी कथा की ओर संकेत है ।

२. 'पुरन्दर होय न प्यारी' का एक अर्थ यह भी हो सकता है—राधा को इन्द्र मत समझो, क्योंकि इन्द्र से तो तुमने गोवर्धन उठाकर ब्रज की रक्षा कर ली थी, पर राधा से किसी प्रकार भी उसे नहीं बचा पाओगे ।

३. श्री विश्वनाथप्रसाद मिश्र द्वारा सम्पादित 'रसखान-ग्रन्थावली' में यह सबैया नहीं है ।

तुलना—१ 'सखी इन नैननि तैं धन हारे ।

बिनही रितु बरपत निति बासर, सदा मलिन दोउ तारे
ऊरध स्वास समीर तेज अति, सुख अनेक द्रुम डारे
वदन सदन कहि वसे वचन-खग, दुख पावस के मारे ।
दुरि दुरि बूँद परत कंचुकि पर, मिलि अजन सौ कारे ।
मानौ परनकुटी सिव कीन्ही, विवि मूरति धरि न्यारे ।
घुमरि घुमरि बरपत जल छाँडत, डर लागत अँधियारे ।
बूडत ब्रजहि सूर को राखै, बिनु गिरवरधर प्यारे ॥'

२. 'कहु रहीम उत जाय कै, गिरधारी सो टेरि ।
अब दृग जल भरि राधिका, जहि डुबावत फेरि ॥'
—रहीम

३. 'लाडिली के अँसुवान को सागर,
बाढत जात मनो नभ छवे है ।
बात कहा कहिए ब्रज की अब,
बूडौई ह्वै है कि वृढत ह्वै है ॥'
—रघुनाथ

४. 'जानि ब्रज वृडत जू होते गिरिधारी तौ पे,
ब्रज मे बढौते दुख-सोते कहो काहे के ।'
—द्विजदेव

सवैया

गोकुल के बिछुरे को सखी दुख प्रान ते नेकु गयो नही काढ्यौ ।
सो फिर कोस हजार ते आय कै रूप दिखाय दधे पर दाध्यौ ।
सो फिर द्वारिका ओर चले रसखान है सोच यहै जिय गाढ्यौ ।
कौन उपाय किये करि है ब्रज मे विरहा कुरुखेत को बाढ्यौ ॥२३६॥

शब्दार्थ—गोकुल के बिछुरे को=गोकुल गाँव त्यागने का । दधे पर दाध्यौ=जले हुए को और जलाया । कुरुखेत को बाढ्यौ=कुरुक्षेत्र मे दिये गये दान के समान बढ़ता ही जाता है । (पुराणो मे बताया गया है कि कुरुक्षेत्र मे किया गया दान आदि १३ दिन तक प्रतिदिन १३ गुनी वृद्धि को प्राप्त करता है ।

अर्थ—कोई गोपी अपनी सखी से कहती है कि हे सखि ! अभी तक गोकुल गाँव से बिछुडने का दुख ही अपने मन से नही निकाला गया था कि बहुत दूर से कृष्ण ने आकर अपना सौन्दर्य दिखाकर हमे जले हुए को और जलाया अपने प्रेम-पाश मे बाँधकर वे फिर द्वारिका को चले गये । हमारे मन मे अब यही दुख है कि ब्रज मे कुरुक्षेत्र मे दिये गये दान के समान नित्यप्रति बढ़ते हुए इस विरह-दुख को किस प्रकार मिटाया जा सकता है ।

विशेष—१. रूपक अलकार ।

२. यह सवैया श्री विश्वनाथप्रसाद मिश्र द्वारा सम्पादित रसखान ग्रंथावली मे नही है ।

तुलना—विरह भरेयो कर आँगन कोने ।

दिन दिन बाढत जात सखी री, ज्यों कुरुखेत के डारे सोने ॥”

—सूरदास

सवैया

गोकुल नाथ वियोग प्रलै जिमि गोपिन नद जसोमति जू पर ।

बाहि गयी अँसुवान प्रवाह भयी जल मे ब्रजलोक तिहू पर ॥

तीरथराज सी राधिका प्राण सु तो रसखान मनौ ब्रज भू पर ।

पूरन ब्रह्म ह्वै ध्यान रह्यौ पिय औधि अखैवट पात के ऊपर ॥२४०॥

शब्दार्थ—प्रलै=प्रलय तीरथराज=प्रयाग, प्रयाग के समान पवित्र ।
औधि=अवधि । अखैवट=अक्षयवट, इस वृक्ष का प्रलयकाल में भी नाश
नहीं होता-।

अर्थ—कौई गोपी अपनी सखी से कहती है कि कृष्ण के वियोग का दुख
गोपियो, नद और यशोदा पर प्रलय का रूप धारण कर चुका है । इनके
वियोगजन्य आँसुओं के प्रवाह में ब्रजलोक जल में बह गया है । प्रयाग के
समान पवित्र राधा के प्राण ही समूचे ब्रज में इस धरती पर बच पाये हैं और
वह भी इसलिए कि वह अपने पूर्ण ब्रह्म प्रियतम के ध्यान में उनके आगमन
की अवधि भी गिनती हुई अक्षयवृक्ष के पत्तों पर चढ़ गई है ।

विशेष—१. उपमा, अतिशयोक्ति अलंकार ।

२. ऊहात्माकता के कारण भावों को क्षति ।

३. यह सवैया श्री विश्वनाथप्रसाद मिश्र द्वारा सम्पादित
‘रसखान ग्रन्थावली’ में नहीं है ।

सवैया

ए सजनी जब ते मैं सुनी मथुरा नगरी बरषा रितु आई ।

लै रसखान सनेह की ताननि कोकिल मोर मलार मचाई ॥

साँझ ते भोर लौ भोर ते साँझ लौ गोपिन चातक ज्यौ रट लाई ।

एरी सखी कहिये तो कहाँ लगि बैर अहीर ने पीर न पाई ॥२४१॥

शब्दार्थ—सनेह की ताननि=प्रेमपूर्ण स्वरों में । साँझ ते भोर लौ भोर
ते साँझ लौ—सन्ध्याकाल से प्रातःकाल तक और प्रातःकाल से सन्ध्याकाल
तक । कहाँ लगि=कहाँ तक । बैरी=शत्रु; आत्मीयता=सूचक सम्बोधन ।
पीर न पाई=पीड़ा का अनुभव नहीं हुआ ।

अर्थ—कोई गोपी अपनी सखी से कहती है कि हे सजनी ! जब से मैंने यह सुना है कि मथुरा नगरी में वर्षाऋतु आ गई है और कोयल तथा मोर प्रेम के स्वरो में बोलने लगे हैं, तब से हर समय गोपियाँ चातक की भाँति पी-पी पुकार रही हैं। लेकिन हे सखि ! यह तो बताओ कि उस बैरी अहीर को (कृष्ण को) इन गोपियों की विरह-वेदना का कहाँ तक अनुभव हुआ है; वह तो अत्यन्त निष्ठुर और पापाण-हृदय है।

विशेष—१. प्रकृति का उद्दीपन रूप में परम्परागत वर्णन।

२. उपमा अलंकार।

३ यह सवैया श्री विश्वनाथप्रसाद मिश्र द्वारा सम्पादित 'रसखान-ग्रन्थावली' में नहीं है।

सवैया

मग हेरत धूँधरे नैन भए रसना रट वा गुन गावन की।

अगुरी गनि हार थकी सजनी सगुनौती चलै नहि पावन की।

पथिकी कोउ ऐसो जु नाहि कहै सुधि है रसखान के आवन की।

मनभावन आवन सावन में कही औधि करी डग वावन की ॥२४२॥

शब्दार्थ—मग हेरत=रास्ता देखते हुए। धूँधरे=धुँधले। रसना=जीभ। सगुनौती=शुभ शकुन। औधि=आने की अवधि। डग, वावन की=वामनावतार के डगो की भाँति निरन्तर बढ़ती हुई।

अर्थ—कोई गोपी अपनी सखी से अपनी विरहा 'वस्था का वर्णन करती हुई कहती है कि हे सखि ! प्रियतम कृष्ण का रास्ता देखते हुए मेरे नेत्र धुँधले पड़ गये हैं; उसके गुणों का गान करती-करती जीभ थक गई है। उसके आने के दिनों को गिनती-गिनती अगुलियाँ थक गई हैं, लेकिन उनके आने का कोई भी शुभ शकुन प्राप्त नहीं होता। कोई भी ऐसा पथिक नहीं आता जो कृष्ण के आगमन का समाचार दे। कृष्ण सावन के महीने में आने की कह गये थे, पर अभी तक नहीं आये। उनके आने की अवधि तो वामनावतार की तरह निरन्तर बढ़ती ही जा रही है।

विशेष—१. उपमा अलंकार।

२. विरह का परम्परागत वर्णन।

३ यह सवैया श्री विश्वनाथप्रसाद मिश्र द्वारा सम्पादित 'रसखान-

ग्रन्थावली' में नहीं है ।

तुलना—1 'वीती श्रीधि आवक की लाल मनभावन की,

डग भई बावन की सावन की रतियाँ ।'—सेनापति

2. 'बावन को डग यौ विरहा जु अहो मन भावन सावन आयौ ।'

—अज्ञात

सपत्नी-भाव

सवया

वा रसखानि गुनी सुनि कै हियरा सत दूक ह्वै फाटि गयी है ।

जानति है न कछू हम ह्याँ उनवाँ पढि मत्र कहा धौ दयौ है ।

साँची कहै जिय मै निज जानि कै जानति है जस जैसो लयौ है ।

लोग लुगाई सबै ब्रज माँहि कहै हरि चेरी को चेरो भयी है ॥२४३॥

शब्दार्थ—गुनी=गुणों को । सत=सौ । कहा धौ=न जाने क्या ॥
जस=यश । चेरी को=दासी कुब्जा का । चेरो=सेवक ।

अर्थ—गोपियाँ कुब्जा के प्रति ईर्ष्या भाव दिखाती हुई उद्धव से कहती हैं कि हे उद्धव ! उस आनन्द-सागर कृष्ण के गुणों को सुनकर हमारा हृदय सौ-सौ टुकड़े होकर फट गया है । हम नहीं जानती कि कौन-सा मत्र पढ़कर कुब्जा ने कृष्ण पर चला दिया है । हम अपने मन में विचार कर यह बात सत्य कहती हैं और जानती हैं कि कृष्ण ने इस प्रकार से कितना यश प्राप्त किया है ? अर्थात् वे बहुत बदनाम हो गये हैं, क्योंकि ब्रज के सब नर-नारी यह कहते हैं कि कृष्ण कुब्जा दासी के दास बन गये हैं ।

विशेष—काकुवक्रोक्ति अलंकार ।

सवैया

जानै कहा हम मूढ सबै समझीन तवै जबही बनि आई ।

सोचत है मन ही मन मै अब कीजै कसा बनियाँ जु गँवाई ॥

नीचो भयौ ब्रज को सब सीस मलीन भई रसखानि दुहाई ।

चेरी को चटक देखहु ही हाई चेरो कियौ धौ कहा पढि मोई ॥२४४॥

शब्दार्थ—जबही बनि आई—अवसर था । चेरी को—कुब्जा को ।
चेटक—जादू ।

अर्थ—गोपियाँ उद्धव के निर्गुण ब्रह्म के उपदेश को सुनकर बहुत दुखी होती है और परस्पर कहती है कि हम मूर्ख कुछ भी नहीं जानती, इसीलिए जब अवसर था, तभी हम अपने कर्तव्य को नहीं समझ सकी, अर्थात् जब कृष्ण ब्रज छोड़कर जा रहे थे, तभी उन्हें रोक लेना था । अब मन ही मन यह सोचती है कि जो बातें हो चुकी, उनके विषय में कुछ कहना-सुनना व्यर्थ है । इस घटना से सारे ब्रज-वासियों का सिर झुक गया और सारी प्रार्थनाएँ व्यर्थ सिद्ध हो गईं । हे सखि ! उस कुब्जा का जादू तो देखो जिससे उसने कृष्ण को अपना दास बना लिया है । न जाने वह जादू उसने कहाँ पढ़ा है ।

सवैया

काइ सौ 'माई कहा करियँ सहियँ सोई जो रसखान सहावै ।

नेय कहा जख प्रेम कियौ तव नाचियँ सोई जो नाच नचवै ॥

चाहत है हम और कहा सखि क्यो हूँ कहूँ पिय देखन पावै ।

चेरियँ सौ जु गुपाल रच्यौ तौ भलौ ही सबै मिलि चेरी कहावै ॥२४५॥

शब्दार्थ—नेम—नियम । रूपौ—अनुरूप हो गया ।

अर्थ—गोपियाँ परस्पर कहती है कि हे सखी ! किससे अपने मन की व्यथा कहे । आनन्द-सागर कृष्ण ने जो दुख दिया है, अब तो उसे सहन करने के अतिरिक्त और कोई सहारा नहीं है । जब कृष्ण से प्रेम किया है तो फिर नियम आदि का स्थान भी क्या रह गया है । जिस प्रकार वह नचाये उसी प्रकार नाचना होगा । हे सखि ! हम और नहीं कुछ चाहती । हम तो केवल यही चाहती हैं कि किस प्रकार कृष्ण के दर्शन कर सकें । यदि कृष्ण दासी के वश में ही होते हैं (यों कि वे कुब्जा के वश में हो गये हैं,) तो चलो और सब मिलकर उनकी दासी बन जाओ ।

तुलना—१. 'चेरी ही सो जो पै रुचि रावही बढी है तो तो,

आओ ब्रजनाथ ब्रज हम सब चेरी है ।'

—नाथ

२ 'दासी सो जो साँवरो उद्धव तो हमहूँ चलदासी बनेगी ।'

—रसनायक

सवैया

भेती जु पै कुवरी हृद्याँ सखी भरी लातन मूका बकोटती लेती ।
लेती निकारि हिये की सवै नक छेदि कै कीटी पिराइ कै देती ॥
देती नचाई कै नाच वा राँड की लाल गिधावन को फल सेती ।
सेती सदाँ रसखानि लिये कुवरी के करेजनि सूलसी भेती ॥२४६॥

शब्दार्थ—भेती=होती । बकोटती लेती=चोट लेती ।

अर्थ—कुब्जा के प्रति आक्रोश दिखाती हुई कोई गोपी अपनी मखी से कहती है कि हे सखि ! यदि यहाँ पर वह कुब्जा होती लात-धूँसे मारकर उसे मोह लेती । अपने हृदय का सारा गुस्सा लेती और उसकी नाक को छेद कर उसमें कौड़ी पहिना देती । उस राँड को मैं नाच नचा देती और कृष्ण कोई रिभाने का फल देती । इस प्रकार मैं सदैव आनंद-भागर कृष्ण की सेवा करती जिससे कुब्जा के हृदय में मैं सदैव काँटे की भाँति कसकती रहूँगी ।

विशेष— १. मुक्त पदग्रहय यमक ।

२. नागी-पन के आक्रोश का स्थान का स्वाभाविक चित्रण ।

तुलना—‘नीच जाति लीटी जाको वेसर मो काम कहा,
दोऊ ओर छेद नाक कीटी एक डारती ।
दाँतनि मो काटि काटि लातन मो मारि मारि,
कुब्जा को कुवरी करेजो ही निकारती ।

—अज्ञात

कुवलियापीड-वध

सवैया

कस के क्रोध की फैलि रही सिंगरे ब्रजमंडल माँझ फुकार सी ।
ग्राड गए कछनी कछिकै तबही नट-नागर नंदकुमार-सी ॥
द्वैरद को रद खैचि लियो रसखानि हिये माहि लाइ विमार सी ।
लीनी कुठौर लगी लखि तोरि कलक तमाल ते कीरति-डार सी ॥२४७॥

शब्दार्थ—फुकार=फुफकार । द्वैरद=हाथी, कुवलिया पीड । रद=दाँत

अर्थ—इस सवैया में कवि कुवलयापीड के वध का वर्णन करता हुआ कहता है कि कस के क्रोध की आग सारे ब्रज में फुफकार की तरह फैल रही थी और उसने कृष्ण को मरवाने के लिए कुवलयापीड से उनका युद्ध निश्चित

कर दिया था । उससे युद्ध करने के लिए कृष्ण कछनी बाँध कर आ गये । रसखान कहते हैं कि उन्होंने अपने मन में विचार कर के उस हाथी का दाँत लिया और उन्होंने उसे तमाल की डाली की भाँति तोड़ दिया । कृष्ण का यह कार्य ऐसा प्रतीत हुआ मानो उन्होंने कलकरूपी तमाल वृक्ष जैसे तुच्छ स्थान पर लगी कीर्तिरूपी शाखा को तोड़ दिया हो ।

विशेष—उत्प्रेक्षा अलंकार ।

पाठान्तर—‘इस सबैया की तृतीय पंक्ति का यह रूप भी मिलता है

‘रद्ध दुरद्ध को ऐंच लियौ रसखान यहै, मन आइ विचार सी ।’

उद्धव-उपदेश

सबैया

जोग सिखावत आवत है वह कौन कहावत को है कहाँ को ।

जानति है वर नागर है पर नेकहु भेद लख्यौ नहि ह्यौ को ॥

जानति ना हम और कछू मुख देखि जियै नित नन्दलला को ।

जात नही रसखानि हमै तजि राखनहारी है मोरपखा को ॥२४८॥

शब्दार्थ—वर=श्रेष्ठ । नन्दलला=कृष्ण ।

अर्थ—निर्गुण ब्रह्म का उपदेश देने के लिए आए हुए उद्धव को देख कर गोपियाँ परस्पर कहती हैं कि योग की शिक्षा देता हुआ जो व्यक्ति आ रहा है, यह कौन है ? उसका क्या नाम है ? कहाँ वह रहता है ? यद्यपि हम जानती हैं कि वह कोई श्रेष्ठ आदमी है, तथापि इसका हमको तनिक भी भेद (परिचय) ज्ञात नहीं है । यह चाहे कितना ही योगोपदेश करे, पर हम तो इसके अतिरिक्त और कुछ नहीं जानती कि हम नित्य कृष्ण के दर्शन करके ही जीवित रहती हैं, रसखान कहते हैं कि कृष्ण हमसे नहीं त्यागे जाते, क्योंकि वे मोर मुकुटधारी कृष्ण ही हमारे रक्षक हैं ।

सबैया

अजन मंजन त्यागौ अली अँग धारि भभूत करौ अनुरागै ।

आपुन भाग कर्यौ सजनी इन बावरे ऊधो जू को कहाँ लागै ॥

चाहै सो और सबै करियै जु कहै रसखान सयानप आगै ।

जो मन मोहन ऐसी बसी तो सबै री कही मुख गोरस जागै ॥२४९॥

शब्दार्थ—अंजन मंजन=शृंगार । करौ अनुरागै=प्रेम करो । सयानप=

चतुराई । गोरख जागै = गोरखपंथी 'गोरख जागै' का नाद किया करते हैं ।

अर्थ — गोपियाँ उद्धव के उपदेश का परिहास करती हुई कहती हैं कि हे सखि ! अब श्रृंगार करना छोड़ दो और भस्म से प्रेम करके उसे ही अपने अगों पर धारण करो । हे सजनि ! जब हमारे भाग्य में कृष्ण की प्रीति लिखी हुई है तो इस पागल उद्धव को क्यों ईर्ष्या होती है । इस चतुराई के आगे, और चाहे हम कुछ भी कर ले, पर जब हमारे हृदय में कृष्ण बसा हुआ है तो उसकी प्रीति हमसे नहीं छूट सकती । इस पर भी यह उद्धव कहता है कि हम सब कृष्ण की प्रीति छोड़ कर 'गोरख जागै' का नाद करती रहे ।

विशेष — यह सवैया श्री विश्वनाथ प्रसाद मिश्र द्वारा सम्पादित 'रसखान-ग्रन्थावली' में नहीं है ।

सवैया

लाज के लेप चढाइ कै अंग पची सब सीख को मन्त्र सुनाइ कै ।
गाडरु ह्वै ब्रज लोग भक्यौ करि औपद वेसक सीहै दिखाइ कै ॥
ऊधो सौ रसखानि कहै जिन चित्त घरौ तुम एते उधाइ कै ।
कारे विसारे को चाहैं उतर्यौ अरे विख बावरे राख लगाइ कै ॥२५०॥

शब्दार्थ — पची = कोशिश की । गरुड = साँप का विष उतारने वाला ।

वेसक — उत्तमोत्तम । कारे = कृष्ण को । विख = विष ।

अर्थ — उद्धव से निर्गुण ब्रह्म का उपदेश सुनकर गोपियाँ उससे कहती हैं कि हे उद्धव ! हम सबने लाज का लेप अपने अगों पर लगाने की कोशिश की, सभी प्रकार के मन्त्र सुनाए, ब्रज के लोग गरुड बन कर भी थक गये, सौगन्ध दिला कर उत्तमोत्तम औपधियाँ खाई, पर इतने उपाय करने पर भी हमारा कृष्ण प्रेम रूपी विष नहीं उतर सका, अर्थात् हम कृष्ण को नहीं छोड़ सकी । हे कारे ! तुम उसी विषैले नाग रूपी कृष्ण का विष योग की भस्म से उतारना चाहते हो ?

कहने का भाव यह है कि जब इतने अधिक उपाय करने पर भी हम कृष्ण प्रेमसे वियुक्त नहीं हुई तो तुम्हारा योगोपदेश भी यहाँ पर कोई कार्य नहीं करेगा ।

तुलना — १. सावरे साप डसीहै सबै तिनहै ज्ञान सो मूढि उतारै कहा बिस'

ब्रजनिधि

२ 'स्याम वियोग तै उद्धव जू छतियाँ फटी ता मे मयूप भरो जु ।'

—सोमनाथ

सवैया

सार की सारी सो पारी लगै धरिबे कहँ सीस बघम्बर पैया ।
हॉसी सो दासी सिखाइ लई है वेई जु वेई रसखानि कन्हैया ॥
जोग गयौ कुब्जा की कलानि मै री कब ऐहै जसोमति मैया ।
हाहा न ऊधौ कुढाओ हमे अब ही कहि दै ब्रज बाजै बधैया ॥२५१॥

शब्दार्थ—सार=लोहा । बाघम्बर=बाघ की खाल । पैया=पाया हुआ ।

अर्थ—उद्धव का निर्गुण गुरु का उपदेश सुनकर गोपियाँ उससे कहती हैं कि हे उद्धव ! तुम हमें सीस पर बाघम्बर धारण करने को कहते हो, पर वह बाघम्बर हमें लोटे की साडी से भी भारी लगता है । जिसमें हसी-हँसी में कुब्जा को अपने वश में कर लिया है, वे ही—केवल वे ही हमारे आनन्द सागर ॐण है । तुम्हारा योग तो कुब्जा की चतुरता में दब गया । हे उद्धव ! हमें थहुत दुख है । तुम हमें अधिक दुखी न करो । हम अभी कह देती हैं कि ब्रज में बधाई के बाजे बाजे ।

ब्रज-प्रेम

सवैया

या लकुटी अरु कामरिया पर राज तिहुँ पुर को तजि डारौ ।
आठहु सिद्ध नवौ निधि को सुख नन्द की गाइ चराइ विसारौ ॥
ए रसखानि जबै इन नैनन ते ब्रज के वन बाग तडाग निहारौ ।
कोटिक ये कलधौत के घाम करील की कुन्जन ऊपर वारौ ॥ २५२ ॥

शब्दार्थ—वा=उस । लकुठी=जाठी । तिहुँ पुर को=तीनों लोकों को ।

सिद्ध=अलौकिक शक्ति, सिद्धियाँ आठ मानी गई हैं—अणिमा, महिमा, गरिमा, लघिमा, प्राप्ति, प्राकाम्य, ईशित्व और कशित्व । अणिमा सिद्धि से योगी अणुरूप धारण करके अदृश्य हो जाता है । महिमा सिद्धि से योगी अपने देह का चाहे जितना विस्तार कर सकता है । गरिमा सिद्धि से योगी अपने शरीर का चाहे जितना भार बढ़ा सकता है । लघिमा सिद्धि से योगी चाहे जितना छोटा और हलका हो सकता है । प्राप्ति सिद्धि से प्रत्येक पदार्थ प्राप्त किया जा सकता है । प्राकाम्य सिद्धि से योगी जो चाहता है, वही हो जाता है । ईशित्व सिद्धि के बल पर दूसरों पर प्रभुत्व किया जा सकता है । वाशित्व के सिद्धि के बल पर चाहे जिसको वश में किया जा सकता है । निधि=अपूर्व वैभव,

विधियाँ नौ मानी गई हैं—पद्म, महापद्म, शख, मकर, कच्छप, मुकुन्द, कन्द, नील और खर्व । कोटिक=करोडो । कलघीत के धाम=सोने चाँदी के महल । ये=सासारिक प्रभुता के प्रतीक ।

अर्थ —द्वारिका में रह कर कृष्ण को ब्रज की याद आ गई है । वे व्यथित होकर रुक्मणी से कह रहे हैं कि उस लाठी और कामरी के लिए मैं तीनों लोक का राज्य एक दम छोड़ देने को तैयार हूँ, नन्द की गाय चराने के लिए अणिमा आदि आठो सिद्धियों के तथा पद्म आदि नवो निधियों के सुख का त्याग करने को उद्यत हूँ । जब से मैंने अपनी इन आँखों से ब्रज के वन और तालावों को देखा है अर्थात् मुझे उनकी याद आई है, तब से मैं उसके लिए इतना आतुर हो गया हूँ कि मैं वैभव के प्रतीक इन करोडो सोने चाँदी के महलों को ब्रज के करील कुजों के ऊपर न्योछावर करता हूँ ।

विशेष —‘ब्रज के वन-वाग’ और ‘करील की कुजन’ में छेकाप्रप्रास है ।

पाठान्तर—ए रसखानि कवी इन आँखिन सो ब्रज के वान वाग तडाग निहारो ।’

कोटि कई कलघीत के धाम करील की कुजन ऊपर वारी ।’

कवित्त

ग्वालन सग जैवौ वन ऐवौ सु गायन सग,
हेरि तान गैवो हा हा नैन कहकत हैं ।
ह्याँ के गज मोती माल वारो गुज मालन पै,
कुज सुधि आये हाय प्रान धरकत है ॥
गोवर को गारौ सु तो मोहि लागै प्यारौ कहा,
भयौ मौन सोने के जटित मरकत है ।
मदर ते ऊँचे यह मदिर है द्वाङ्गिका के,
ब्रज के खिरक मेरे हिम खरकत है ॥२५३॥

शब्दार्थ —जैवौ=जाना । ऐवौ=आना । हेरि=देखकर । गैवो=गाना । जटित मरकत=रत्नों से जड़े हुए । मदर=मदराचल । खिरक=गोशाला ।

अर्थ—ब्रज का स्मरण आने पर कृष्ण रुक्मणी से अपने ब्रज प्रेम को व्यक्त करते हुए कहते हैं कि वन में ग्वालों के सग जाना, वहाँ से गायों के साथ लौटना, ब्रज के सुन्दर दृश्यों को देख कर वाँसुरी बजाना आज भी मेरी

आंखों में करकते हैं, अर्थात् उन घटनाओं की स्मृति से मुझे बहुत दुख होता है। यहाँ पर मुझे गज मोतियों की जो मालाये मिली हुई है, इन्हे मैं उन गुन्जमालाओं के ऊपर न्यौछावर कर सकता हूँ। जब भी मुझे ब्रज के कुर्जों की याद आती है तो मेरे अंग घड़कने लगते हैं। वहाँ के गोबर का गारा भी मुझे इतना प्रिय है कि उसके सामने रत्नों से जड़े हुए ये सोने के भव्य भवन भी नगण्य हैं। वह सच है कि द्वारिका के ये राजमहल मदिराचल (पर्वत) से ऊँचे हैं। फिर भी ब्रज की गोशालाओं की याद मेरे हृदय को कुदेरती रहती है।

विशेष—यह कविता श्री विश्वनाथ प्रसाद मिश्र द्वारा सम्पादित 'रसखाना' ग्रन्थावली में नहीं है।

गंगा-महिमा सवैया

इक ओर किरीट लसै दूसरी दिसि नागन के गन गाजत री।

मुरली मधुरी धुनि आधिक ओठ पै आधिक नन्द से बाजत री ॥

रसखानि पितम्बर एक कँधा पर एक बाघम्बर राजत री।

कोउ देखउ सगम लै बुडकी निकसे यहि मेख सो छाजत री ॥२५४॥

शब्दार्थ—किरीट=मुकुट। लसै=सुशोभित है। नागन के गन=सर्पों के समूह। अधिक=आधा। नाद=शृंगी।

अर्थ—कोई गोपी अपनी सखी से गंगा महिमा का वर्णन करती हुई कहती है कि हे सखि ! उसके सिर पर एक ओर तो मुकुट सुशोभित है और दूसरी ओर सर्पों के समूह फुँकार रहे हैं। एक ओर आधे ओठ पर मधुरी मुरली बज रही है और दूसरी ओर आधे ओठ पर शृंगी बज रही है। रसखान कहते हैं कि उनके एक कन्धे पर पीला वस्त्र है और दूसरे पर बाघ की खाल सुशोभित है। ऐसा प्रतीत होता है कि कृष्ण गंगा और यमुना में डुबकी लगाकर इस सुन्दर रूप को धारण करके निकले हो।

विशेष—यह माना जाता है कि गंगा में स्नान करने से शिवरूप की और यमुना में स्नान करने से कृष्णरूप की, तथा सगम (गंगा-यमुना) में स्नान करने से हरिहर (शिव-कृष्ण) रूप की प्राप्ति होती है।

सवैया

वैद की औपध खाइ कछु न करै बहु सजम री सुनि मोसैं ।
तो जल-पान कियौ रसखानि सजीवन जानि लियौ रस तोसैं ।
ए री सुधामई भागीरथी नित पथ्य अपथ्य वनै तोहि पोसैं ।
आक धतूरो चवात फिरै विख खात फिरै सिव तेरे भरोसैं ॥२५५॥

विशेष—औपध=औपधि । सजम=सयम । भागीरथी=गंगा । पथ्य=परहेज । अपथ्य=वद परहेज । पोसैं=प्रसन्न करने पर ।

अर्थ—कवि रसखान गंगा की महिमा का वर्णन करते हुए कहते हैं कि हे गंगे ! जिस व्यक्ति पर तुम्हारी कृपा हो जाती है, उसे न तो वैद्य की औपधि खाने की आवश्यकता है और न किसी प्रकार का संयम करने की हो जरूरत है । रसखान कहते हैं कि तेरे जल को पीने से सजीवन शक्ति और अपार आनन्द प्राप्त होता है । हे अमृत जल से युक्त गंगे ! तेरे प्रसन्न करने पर वदपरहेज भी परहेज के समान लाभदायक बन जाता है । इसीलिए तेरे भरोसे पर शिव आक और धतूरे को चवाते हैं तथा विष को खाते हैं ।

तुलना—'वाँधे जटाजूट वैठि परवत कूट माँहि,
महाकाल कूटे कहीं कैसे के ठहरती ।
पीवै नित भगै रहै प्रेतन के सगै ऐसे,
पूछती को नगै जो न गगै सीस धारती ।'

—पद्माकर

शिव-सहिमा

सवैया

यह देखि धतूरे के पात चवात औ गात सो धूलि लगावत हैं ।
चहुँ ओर जटा अटकै लटके फनि सो कफनी फहरावत हैं ॥
रसखानि जेई चितवै चित दै तिनके दुखदुन्द भजावत हैं ।
गज खाल कमालकी माल विसाल सो गाल वजावत आवत हैं ॥२५६॥

शब्दार्थ—पात=पत्ते । फनि=सर्प । कफनी=एक प्रकार का वस्त्र जिसे साधु पहनते हैं । भजावत है=नष्ट करते हैं ।

अर्थ—कवि रसखान शिव की स्तुति करते हुए कहते हैं कि यह देखो ! शिव धतूरे के पत्ते चवाते हैं तथा शरीर में धूलि लगाते हैं । उनकी जटाएँ

चारों ओर बिखर कर लटक रही है। उनके गले में पड़ा हुआ सर्प साधु-वस्त्र के समान दिखाई दे रहा है। रसखान कहते हैं कि जो मन लगाकर शिव की इस पूति को देखते हैं, शिव उनके दुखों को नष्ट करते हैं। वे गज की खाल ओढ़े, कपालों की माला पहने हुए गाल बजाते हुए आते हैं।

प्रेम-वाटिका

दोहा

प्रेम अयनि श्री राधिका, प्रेम-वरन नदनन्द ।

प्रेम-वाटिका के दोऊ, माली मालिन द्वंद ॥ १ ॥

शब्दार्थ—प्रेम-अयनि=प्रेम-धाम । प्रेम-वरन=प्रेम का साक्षात् रूप ॥

द्वंद=युगल, जोड़ा ।

अर्थ—रसखान कवि राधा और कृष्ण के प्रेम का वर्णन करते हुए कहते हैं कि श्रीराधा प्रेम का धाम है और कृष्ण प्रेम का साक्षात् रूप है । अतः राधा और कृष्ण का जोड़ा प्रेम-वाटिका के मालिन और माली का जोड़ा है ।

विशेष—रूपक अलंकार ।

दोहा

प्रेम प्रेम सब कोउ कहत, प्रेम न जानत कोइ ।

जो जन जानै प्रेम तौ, परै जगत क्यों रोइ ॥ २ ॥

शब्दार्थ—सरल है ।

अर्थ—सब लोग प्रेम-प्रेम चिल्लाते हैं, अर्थात् प्रेमी होने का दावा करते हैं और प्रेम की महत्ता का बखान करते हैं, पर वास्तविकता तो यह है कि वे प्रेम के सच्चे स्वरूप को नहीं जानते । यदि व्यक्ति प्रेम के सच्चे स्वरूप से परिचित हो जाये ससार रो-रोकर न मरे, अर्थात् इसमें कोई क्लेश एवं बाधा न रहे ।

दोहा

प्रेम अगम अनुपम अमित, सागर सरिस बखान ।

जो आवत यहि ठिग बहुरि जात नाहि रसखान ॥ ३ ॥

शब्दार्थ—अगम=अगम्य । अमित=अपार । सरिस=समान । ठिग=समीप । बहुरि=फिर ।

अर्थ—प्रेम की महत्ता का वर्णन करते हुए रसखान कहते हैं कि प्रेम को अगम्य, अनुपम, अपार और सागर के समान गम्भीर समझना चाहिए। जो व्यक्ति इस प्रेम-सागर के पास आ जाता है, वह फिर इसमें दूर नहीं जाता; अर्थात् जो प्रेमी बन जाता है, वह फिर प्रेम के बन्धन से नहीं छूट पाता।

विशेष—उपमा अलंकार।

दोहा

प्रेम-वारुनी छानि कै, बरुन भरा जल घीस।

प्रेमहि तें विष-पान करि, पूजे जात गिरीस ॥४॥

शब्दार्थ—वारुन=शराब। बरुन=वरुण। जलघीस=जल का देवता।

अर्थ—प्रेम की महत्ता का वर्णन करते हुए रसखान कहते हैं कि प्रेम की शराब छानने के कारण वरुण जल के देवता बन गये और प्रेम से ही विष को पी लेने के कारण शिव की पूजा होती है।

दोहा

प्रेम-रूप दर्पन अहो, रचै अजूबो खेल।

या मै अपनो रूप कछु, लखि परिहै अनमेल ॥५॥

शब्दार्थ—दर्पन=दर्पण, शीशा। अजूबो=अजीब, अद्भुत।

अर्थ—प्रेम की महत्ता का वर्णन करते हुए रसखान कहते हैं कि प्रेम रूपी दर्पण में अद्भुत खेल रचा हुआ है, क्योंकि इसमें अपना स्वरूप कुछ-कुछ अनमेल-सा दिखाई देता है।

दोहा

कमल-तन्तु सो छीद अरु, कठिन खड्ग की धार।

अति सूधो टेढ़ो बहुरि, प्रेम-पथ अनिवार ॥६॥

शब्दार्थ—कमल तंतु=कमल का रेशा। छीन=क्षीण, पतला। खड्ग=तलवार। बहुरि=फिर। अनिवार=अनिवार्य।

अर्थ—प्रेम के स्वरूप का वर्णन करते हुए रसखान कवि कहते हैं कि प्रेम पंथ अनिवार्य रूप से विलक्षण है। यह कमल के रेशों के समान पतला और तलवार की धार के समान तीक्ष्ण होता है। यह अत्यन्त सीधा भी है और टेढ़ा भी है।

विशेष—उपमा अलंकार।

क्योंकि प्रेम को अनुकूल बनाये बिना भगवत्प्रेम की ओर उन्मुख हुए बिना, वृद्ध निश्चयात्मिका बुद्धि उत्पन्न नहीं होती ।

दोहा

सास्त्रन पढि पडित भए, कै मौलवी कुरान ।

जु पै प्रेम जान्यौ नही, कहा कियौ रसखान ॥१३॥

शब्दार्थ—सास्त्रन=शास्त्रों को । जु पै=यदि ।

अर्थ—प्रेम के बिना सारा ज्ञान व्यर्थ है, इस बात का प्रतिपादन करते हुए रसखान कहते हैं कि व्यक्ति चाहे शास्त्रों को पढ़कर पंडित बन जाये, या कुरान को पढ़कर मौलवी बन जाये । लेकिन यदि उसने प्रेम-तत्त्व को नहीं जाना है तो उसका यह ज्ञान पूर्णतया व्यर्थ है ।

तुलना—'पोथी पढि पढि जग मुआ, पडित भया न कोय ।

ढाई अच्छर प्रेम का, पढै सो पंडित होय ॥—कवीर

दोहा

काम क्रोध मद मोह भय, लोभ द्रोह मात्सर्य ।

इन सबही तें प्रेम है, परे कहत मुनिवर्य ॥१४॥

शब्दार्थ—काम=काम-भावना । मद=अहंकार । द्रोह=शत्रुता । पत्पर्य ईर्ष्या । परे=दूर । मुनिवर्य=मुनि प्रवर ।

अर्थ—प्रेम सब प्रकार के भावों से श्रेष्ठ है और शुद्ध भावों से दूर है, इसका प्रतिपादन करते हुए रसखान कहते हैं कि काम-भावना, क्रोध, अहंकार, ममता, भय, लोभ, शत्रुता और ईर्ष्या इन सभी भावों से प्रेम दूर होता है, अर्थात् प्रेम में ये भाव नहीं होते । यह मुनिप्रवरों का मत है ।

दोहा

बिन गुन जोवन रूप धन, बिन स्वारथ हित जानि ।

सुद्ध कामना ते रहित, प्रेम सकल रसखानि ॥१५॥

शब्दार्थ—गुन=गुण । जोवन=यौवन । बिन स्वारथ हित=स्वार्थ-लाभ से रहित । कामना=इच्छा । कामना ते रहित=निष्काम । रसखान=आनन्द का धाम ।

अर्थ—प्रेम के महत्त्व का प्रतिपादन करते हुए रसखान कहते हैं कि जो प्रेम बिना गुण के, यौवन के, रूप के, धन के, स्वार्थ-लाभ से रहित, शुद्ध और निष्काम होता है, वही सच्चा प्रेम है और ऐसा ही प्रेम सुख का धाम होता

है, अर्थात् सहज प्रेम ही सच्चा एव सुखकारक प्रेम होता है ।

दोहा

अति सूक्ष्म कोमल अतिहि, अति पतरो अति दूर ।

प्रेम कठिन सब ते सदा, नित इकरस भरपूर ॥१६॥

शब्दार्थ—सूक्ष्म=सूक्ष्म । पतरो=पतला, क्षीण । अति दूर=अगम्य ।
इकरस=एक-सा रहने वाला ।

अर्थ—प्रेम के स्वरूप का प्रतिपादन करते हुए रसखान कहते हैं कि सच्चा प्रेम अत्यन्त सूक्ष्म, कोमल, क्षीण और अगम्य होता है । यह सदैव एक-सा रहने वाला और परिपूर्ण होता है । ऐसा प्रेम सबसे कठिन होता है ।

दोहा

जग मै सब जान्यौ परै, अरु सब कहै कहाइ ।

मै जगदीस 'रु प्रेम यह, दोऊ अकथ लखाइ ॥१७॥

शब्दार्थ—जान्यौ परै=जाना जासकता है । कहै कहार=कहा जा सकता है । अकथ=अकथ्य ।

अर्थ—प्रेम और ईश्वर की समानता का प्रतिपादन करते हुए रसखान कहते हैं कि इस ससार की सारी वस्तुएँ जानी जा सकती हैं, अर्थात् सारी वस्तुएँ बोधगम्य हैं और सारी वस्तुएँ कही जा सकती हैं, अर्थात् वर्णनीय हैं, किन्तु ईश्वर और प्रेम ये दोनों अकथ्य एव प्रदर्शनीय हैं । अर्थात् इन दोनों का न तो वर्णन ही किया जा सकता है और न ये दोनों देखे ही जा सकते हैं । कहने का भाव यह है कि प्रेम ईश्वर की भाँति सूक्ष्म एव दुर्बोध है ।

दोहा

जेहि बिनु जाने कछुहि नहि, जात्यौ जात बिसेष ।

सोइ प्रेम, जेहि जानिकै, रहि न जात कछु सेष ॥१८॥

शब्दार्थ—सरल है ।

अर्थ—प्रेम की महत्ता का प्रतिपादन करते हुए रसखान कहते हैं कि जिस प्रेम को जाने बिना और किसी वस्तु का बोध नहीं होता और जिसे जानने पर विशेष ज्ञान हो जाता है वही प्रेम है जिसका बोध होने पर और कुछ जानने के लिए शेष नहीं रह जाता । कहने का भाव यह है कि प्रेम सब ज्ञानों का मूल आधार है ।

दोहा

दम्पति-सुख अरु विषम-रस, पूजा निष्ठा ध्यान ।

इन ते परे बखानियै, शुद्ध प्रेम रसखान ॥१९॥

शब्दार्थ—दम्पति-सुख=गृहस्थ जीवन का आनन्द । विषय-रस=सासारिक पदार्थों से प्राप्त आनन्द । निष्ठा=धार्मिक विश्वास । ध्यान=ध्यान धारणा आदि । परे=दूर, रहित ।

अर्थ—शुद्ध प्रेम के स्वरूप का प्रतिपादन करते हुए रसखान कहते हैं कि गृहस्थ जीवन के आनन्द से, सासारिक पदार्थों से प्राप्त आनन्द से, पूजा से धार्मिक विश्वास से, ध्यान धारणा आदि से रहित शुद्ध प्रेम होता है जो आनन्द का सागर है ।

दोहा

मित्र कलत्र सुबन्धु सुत, इनमे सहज सनेह ।

शुद्ध प्रेम इनमे नही, अकथ कथा सविसेह ॥२०॥

शब्दार्थ—कलत्र=स्त्री । सुबन्धु=हितैषी भाई । सुत=पुत्र । सहज=स्वाभाविक । सविसेह=विशेष रूप से ।

अर्थ—शुद्ध प्रेम के स्वरूप का वर्णन करते हुए रसखान कहते हैं कि यद्यपि स्त्री में हितैषी भाई में और पुत्र में स्वाभाविक रूप से प्रेम होता है, परन्तु इस प्रेम को शुद्ध प्रेम नहीं कहा जा सकता, क्योंकि शुद्ध प्रेम तो विशेष रूप से अवर्णनीय कथावाला होता है, अर्थात् उसका वर्णन नहीं हो सकता ।

दोहा

इक अगी विनु कारनहि, इक रस सदा समान ।

गनै प्रियहि सर्वस्व जो, सोई प्रेम प्रमान ॥२१॥

शब्दार्थ—इक अगी=एकांगी । इक रस=एक ही प्रकार का आनन्द । सोई प्रेम प्रमान=वही शुद्ध प्रेम है ।

अर्थ—शुद्ध प्रेम के स्वरूप का वर्णन करते हुए रसखान कहते हैं कि जो प्रेम एकांगी हो, अर्थात् प्रत्युत्तर की भावना से परे हो, बिना स्वार्थ आदि कारणों के उत्पन्न हुआ हो और सदैव एक ही प्रकार के आनन्द में समान रहता हो, अर्थात् जिसमें आनन्द की मात्रा घटती न हो; जिसके होने पर प्रिय को ही सर्वस्व माना जाता हो, वही शुद्ध प्रेम कहलाता है ।

दोहा

डरै सदा चाहे न कछु, सहै सबै जो होय ।

रहै एक रस चाहि कै, प्रेम बखानो सोय ॥२२॥

शब्दार्थ—चाहि कै=इच्छा करके ।

अर्थ—शुद्ध प्रेम के स्वरूप का वर्णन करते हुए रसखान कहते हैं कि जो प्रेमी सदैव इस भावना को लेकर डरता रहे कि कहीं उसके प्रेम में चूक न हो जाये, जो किसी भी प्रकार की स्वार्थ-भावना से रहित हो, जो सब प्रकार की विपत्तियों को सहने के लिए तैयार हो, जो सदैव इच्छा करके एक ही रस में डूबा हुआ हो, ऐसे ही व्यक्ति को सच्चा प्रेमी कहा जाता है और उसी का प्रेम शुद्ध प्रेम कहलाता है ।

दोहा

प्रेम प्रेम सब कोउ कहै, कठिन प्रेम की फाँस ।

प्राण तरफि निकरै नही, केवल चलत उसाँस ॥२३॥

शब्दार्थ—फाँस=चुभने वाला काँटा । तरफि=तडप कर ।

अर्थ—प्रेम वेदना का वर्णन करते हुए रसखान कहते हैं कि सभी लोग प्रेम-प्रेम चिल्लाते हैं; अर्थात् प्रेमी होने का दावा करते हैं, पर वे यह नहीं जानते कि प्रेम की फाँस बड़ी दुखदाई होती है । इसमें प्राण तडपते ही रहते हैं, पर निकलते नहीं इसके आघात से मनुष्य मृतप्राय हो जाता है और उसके केवल उच्छ्वास चलते रहते हैं ।

दोहा

प्रेम हरी को रूप है, त्यों हरि प्रेम स्वरूप ।

एक होइ द्वै यो लसै, ज्यौ सूरज अठ धूप ॥२४॥

शब्दार्थ—द्वै=दो होकर । लसै=सुशोभित होते हैं ।

अर्थ—प्रेम और परमात्मा के एक स्वरूप का वर्णन करते हुए रसखान कहते हैं कि जिस प्रकार प्रेम परमात्मा का रूप है, उसी प्रकार परमात्मा भी प्रेम का स्वरूप है । एक होकर भी दोनों दो रूपों में इस प्रकार सुशोभित हैं जैसे सूरज और उसकी धूप ।

विशेष—उदाहरण अलंकार ।

दोहा

ग्यान ध्यान विद्या मती, मत-विस्वास विवेक ।

बिना प्रेम सब धूरि हैं, अगजग एक अनेक ॥२५॥

शब्दार्थ—मती=मति, बुद्धि । विवेक=ज्ञान । अगजग एक अनेक= इस चराचर सृष्टि में प्रेम एक होकर भी अनेक है ।

अर्थ—प्रेम की महत्ता का वर्णन करते हुए रसखान कहते हैं कि ज्ञान, ध्यान, विद्या, विविध मतों का विश्वास और विवेक सब बिना प्रेम के धूलि के समान निरर्थक है, क्योंकि प्रेम ही वह तत्त्व है जो ब्रह्म की भाँति इस संसार में एक होते हुए ही अनेक रूपों में दिखाई देता है ।

विशेष—रूपक अलंकार ।

दोहा

प्रेम फाँस में फाँसि मरै, सोई जिए सदाहि ।

प्रेम परम जाने बिना, मरि कोई जीवत नाहि ॥२६॥

शब्दार्थ—फाँस=फन्दा । परम=रहस्य ।

अर्थ—प्रेम की महत्ता का वर्णन करते हुए रसखान कहते हैं कि जो व्यक्ति प्रेम के वन्वन में बँध कर मर जाता है, कह सदैव जीवित रहता है; अर्थात् प्रेम के वन्वन में बँधकर व्यक्ति अमर हो जाता है । कोई भी व्यक्ति जो प्रेम के रहस्य को नहीं जानता, वह मर कर जीवित नहीं रहता ।

विशेष—विरोधाभास अलंकार ।

दोहा

जग में सब तै अधिक अति, ममता तनहि लखाय ।

पै या तरहूँ तै अधिक, प्यारो प्रेम कहाय ॥२७॥

शब्दार्थ—सरल है ।

अर्थ—प्रेम की महत्ता का वर्णन करते हुए रसखान कहते हैं कि हम संसार में सबसे अधिकम मत्त्व शरीर के प्रति देखा जाता है, परन्तु प्रेम इस शरीर से भी अधिक प्यारा होता है ।

दोहा

जेहि पाएँ वैकुंठ अरु, हरिहूँ की नहि चाहि ।

सोह अलौकिक सुद्ध सुभ, सरस सुप्रेम कहाहि ॥२८॥

शब्दार्थ—सरल है ।

अर्थ—प्रेम की महत्ता का वर्णन करते हुए रसखान कहते हैं कि जिस प्रेम को प्राप्त करके वैकुंठ की ओर भगवान की भी इच्छा नहीं रहती, उसे ही अलौकिक, शुद्ध, शुभ और सरस प्रेम कहा जाता है ।

दोहा

कोउ याहि फाँसी कहत, कोउ कहत तरवार ।

नेजा भाला तीर कोउ, कहत अनोखी ढार ॥२९॥

शब्दार्थ—नेजा=वरछी ।

अर्थ—प्रेम के विविध रूप हैं, इसी बात का वर्णन करते हुए रसखान कहते हैं कि कोई व्यक्ति तो इस प्रेम को फाँसी बताता है, कोई तलवार, कोई वरछी, भाला और तीर; तथा कोई इसे अनोखी ढाल बताता है ।

दोहा

पै मिठास या मार के, रोम-रोम भरपूर ।

मरत जियै भुकतौ थिरै, बनै सु चकनाचूर ॥३०॥

शब्दार्थ—भुकतौ=गिरना । थिरै=स्थिर होना, सभलना ।

अर्थ—प्रेम की महत्ता का वर्णन करते हुए रसखान कहते हैं कि प्रेम की चोट गहरी होते हुए भी मधुर होती है । इसकी चोट से मनुष्य का रोम-रोम माधुर्यपूर्ण आनन्द से भरपूर हो जाता है, प्रेम में मरने वाला व्यक्ति ही जीवित रहता है प्रेम में गिरता हुआ व्यक्ति ही सम्भलता है । जो व्यक्ति अपना अहंकार पूर्णतया नष्ट करके प्रेम की ओर उन्मुख होता है, उसी का जीवन सुधर जाता है ।

विशेष—विरोधाभास अलंकार ।

दोहा

पै एतोहूँ रम सुन्यौ, प्रेम अजूबो खेल ।

जाँबाजी बाजी जहाँ, दिल का दिल से मेल ॥३१॥

शब्दार्थ—अजूबो=अजीब, अद्भुत । जाँबाजी=प्राणों की बाजा ।

अर्थ—प्रेम की विलक्षणता का वर्णन करते हुए रसखान कहते हैं कि हमने केवल इतना सुना है कि प्रेम अद्भुत खेल है यह वही खेल है जिसमें प्राणों की बाजी लगाकर दिल से मेल किया जाता है ।

दोहा

सिर काटौ छेदौ हियो, टूक टूक करि देहु ।

पै याके बदले जिहंसि, वाह वाह ही लेहु ॥३२॥

शब्दार्थ—सरल है ।

अर्थ—प्रेम की कठिनता का वर्णन करते हुए रसखान कहते हैं कि जब व्यक्ति अपने सिर को काट लेता है और हृदय को छेद कर टूक-टूक कर लेता है, तब उसके बदले में उसे प्रशसा मिलती है, अर्थात् वही व्यक्ति प्रेमी होकर प्रशसा का पात्र बनता है ।

दोहा

अकथ कहानी प्रेम की, जानत लैली खूब ।

दो तनहूँ जहँ एक ये, मन मिलाइ महबूब ॥३३॥

शब्दार्थ—अकथ=अकथ्य । लैली=लैला, मजनूँ की प्रेमिका । महबूब=प्रेमी ।

अर्थ—प्रेम की कहानी अकथनीय है जिसे मजनू की प्रेमिका लैला अच्छी तरह जानती है । प्रेम वह वरदान है जो दो प्रेमियों के तन को तथा मन को मिलाकर एक कर देता है ।

दोहा

दो मन हक होते सुन्यौ, पै वह प्रेम न आहि

होइ जबै द्वै तनहूँ इक, सोई प्रेम कहाहि ॥३४॥

शब्दार्थ—आहि=है ।

अर्थ—प्रेम के स्वरूप का प्रतिपादन करते हुए रसखान कहते हैं कि यद्यपि मैंने प्रेम में दो मनो को एक होते हुए सुना है, लेकिन यह वास्तविक प्रेम नहीं है । जब दो शरीर एक हो जाते हैं, तो उसे ही प्रेम कहते हैं ।

‘प्रैमानन्द प्रकारेण द्वैत विस्मरणं गतम् ।’

तुलना—१. ‘आसिक-मासुक त्वै गया, इस्क कहावै सोय ।

दाद उस मासुक का, अल्ला आसिक होय ॥’—दादूदयाल

दोहा

याही तें सब मुक्ति ते, लही बडाई प्रेम ।

प्रेम भए नसि जाहि सब, बँधे जगत के नेम ॥३५॥

शब्दार्थ—याही ते=इसी कारण से । लही=प्राप्त की । नसि जाहि=नष्ट हो जाते हैं । नेम=नियम ।

अर्थ—प्रेम में दो शरीरों को एक करने की शक्ति होती है, इसी कारण से प्रेम ने मुक्ति से भी अधिक प्रशसा प्राप्त की है, अर्थात् प्रेम का स्थान मुक्ति

से भी ऊँचा है । प्रेम के होने पर संसार के सारे बँधे हुए नियम नष्ट हो जाते हैं, अर्थात् प्रेमी संसार के किसी भी नियम को नहीं मानता ।

दोहा

हरि के सब आधीन पै, हरी प्रेम-अधीन ।

याही ते हरि आपुही, याहि बडप्पन दीन ॥३६॥

शब्दार्थ—सरल है ।

अर्थ—प्रेम भगवान से भी बड़ा है, इसी बात का प्रतिपादन करते हुए रसखान कहते हैं कि संसार के सब प्राणी भगवान के वश में हैं, पर भगवान प्रेम के वश में होते हैं । इसीलिए स्वयं भगवान् से अपने-से अधिक प्रेम को महत्ता प्रदान की है ।

तुलना—१. 'हरि ब्रज जन आधीन है, ब्रजजन हरि आधीन ।'—नागरीदास

२. 'स्वामी ते सेवक बडो, जो निज धर्म सुजान ।

राम बाँधि उतरे उदधि, लाँघि गए हनुमान ॥'—तुलसी

दोहा

वेद मूल सब धर्म यह, कहैं सबै स्नुतिसार ।

परम धर्म है ताहु ते, प्रेम एक अनिवार ॥३७॥

शब्दार्थ—स्नुतिसार=वेदों का तत्व । अनिवार=अनिवार्य ।

अर्थ—प्रेम की महत्ता का वर्णन करते हुए रसखान कहते हैं कि वेद सब धर्मों का मूल है, परन्तु प्रेम को श्रुतियों का तत्व कहा जाता है । इसलिए प्रेम परम धर्म और अनिवार्य तत्त्व है ।

जदपि जसोदानन्दन अरु ग्वाल-बाल सब धन्य ।

पै या जग मैं प्रेम कौ गोपी भई अनन्य ॥३८॥

शब्दार्थ—जसोदानन्दन=कृष्ण । अनन्य=अद्वितीय ।

अर्थ—प्रेम की महत्ता का प्रतिपादन करते हुए रसखान कहते हैं कि यद्यपि कृष्ण का प्रेम पाने से कृष्ण, ग्वाल-बाल आदि सब धन्य है, किन्तु इस संसार में अत्यधिक प्रेमिका होने के कारण गोपियाँ अद्वितीय बन गई हैं; अर्थात् उनके समान कोई नहीं है ।

तुलना—'कविरा कविरा क्या कहै, जा जमुना के तीर ।

इक इक गोपी प्रेम पै, बहिगे कोटि कवीर ॥'—कबीर

दोहा

वा रस की कछु माधुरी, ऊवो लही सराहि ।

पावै वहुरि मिठास अरु, अव दूजो को आहि ॥३६॥

शब्दार्थ—वा रस की=प्रेमानन्द की । वहुरि=फिर ।

अर्थ—प्रेम की महत्ता का वर्णन करते हुए रसखान कहते हैं कि प्रेमानन्द का कुछ माधुर्य उद्धव ने सगृह कर ग्रहण किया था । जो माधुर्य उद्धव को प्राप्त हो गया है, अब उस माधुर्य को फिर से कौन प्राप्त कर सकता है ?

दोहा

स्रवन कीरतन दरसनहि, जो उपजत सोइ प्रेम ।

सुद्धासुद्ध विभेद तें, द्वैविध ताके नेम ॥४०॥

शब्दार्थ—स्रवन=श्रवण, सुनना । सुद्धासुद्ध=शुद्ध और अशुद्ध । द्वैविध=दो प्रकार के । नेम=नियम ।

अर्थ—प्रेम के भेदों का निरूपण करते हुए रसखान कहते हैं कि जो प्रेम श्रवण, कीर्तन और दर्शन से उत्पन्न होता है, वही शुद्ध और अशुद्ध, निष्काम और सकाम, ये दो प्रकार के प्रेम होते हैं ।

दोहा

स्वारथमूल असुद्ध त्यौ, सुद्ध स्वभावऽनुकूल ।

नारदादि प्रस्तार करि, कियौ जाहि को तूल ॥४१॥

शब्दार्थ—स्वारथमूल=स्वार्थ-भावना से युक्त । स्वभावऽनुकूल=सहज भाव से । प्रस्तार करि=विस्तार से । तूल=विस्तार ।

अर्थ—प्रेम के दो भेद होते हैं—शुद्ध और अशुद्ध । शुद्ध और अशुद्ध प्रेम के स्वरूप का प्रतिपादन करते हुए रसखान कहते हैं कि जो प्रेम स्वार्थ-भावना से युक्त होता है, उसे अशुद्ध प्रेम कहते हैं और जो सहज भाव से होता है, उसे शुद्ध प्रेम कहते हैं । नारद आदि महर्षियों ने इन दोनों प्रकार के प्रेमों का वर्णन विस्तार से किया है ।

दोहा

रसमय स्वाभाविक विना, स्वारथ अचल महान ।

सदा एकरस सुद्ध सोइ, प्रेम अहै रसखान ॥४२॥

शब्दार्थ—रसमय=आनन्द से पूर्ण । स्वाभाविक=सहज । एकरस=निरन्तर समान रहने वाला ।

अर्थ—शुद्ध प्रेम के स्वरूप का प्रतिपादन करते हुए रसखान कहते हैं कि- जो प्रेम आनन्द से पूर्ण, सहज, निष्काम, अचल, महान् और निरन्तर समान- रहने वाला होता है, जो कभी घटता नहीं है, वह शुद्ध प्रेम कहलाता है।

दोहा

जाते उपजत प्रेम सोह, बीज कहावत प्रेम ।

जामैं उपजत प्रेम सोइ, क्षेत्र कहावत प्रेम ॥४३॥

शब्दार्थ—सरल है।

अर्थ—प्रेम के स्वरूप का प्रतिपादन करते हुए रसखान कहते हैं कि जिस कारण से प्रेम उत्पन्न होता है, उसे प्रेम का बीज कहते हैं और जो प्रेम का आश्रय होता है, उसे प्रेम का क्षेत्र कहते हैं।

दोहा

जाते पनपत बढ़त अरु, फूलत फलत महान ।

सो सब प्रेमहि प्रेम यह, कहत रसिक रसखान ॥४४॥

शब्दार्थ—सरल है।

अर्थ—प्रेम के स्वरूप का प्रतिपादन करते हुए रसखान कहते हैं कि- जिससे प्रेम उत्पन्न होता है, बढ़ता है, फूलता तथा बढ़ता है और महान् बनता है, यह सब प्रेम ही होता है।

दोहा ✓

वही बीज अकुर वही, सेक वही आधार ।

डाल पात फल फूल सब, वही प्रेम सुखसार ॥४५॥

शब्दार्थ—सेक=सिंचन ।

अर्थ—प्रेम की महत्ता का वर्णन करते हुए रसखान कहते हैं कि प्रेम ही- बीज है, वही अकुर है, वही सिंचन है, वही आधार है, वही डाल, पात, फल, फूल और सुख का सार है।

दोहा ✓

जो जाते जामैं बहुरि, जा हित कहियत वेष ।

सो सब प्रेमहि प्रेम है, जग रसखानि असेष ॥४६॥

शब्दार्थ—बहुरि=फिर । वेष=श्रेष्ठ । असेष=पूर्णरूप से ।

अर्थ—प्रेम की महत्ता का प्रतिपादन करते हुए रसखान कहते हैं कि जो, जिससे और फिर जिसमें जगत् का सौन्दर्य, श्रेयता, महत्ता, उत्कृष्टता आदि- गुण विद्यमान है, वे सब इस चराचर सृष्टि में प्रेम- रूप से भासित हैं।

दोहा

कारज कारन रूप मर, प्रेम से रमलान ।

कारा कर्म विना कारन, सापदि प्रेम नमान ॥६३॥

शब्दार्थ—कारज—कारण । कारन—कारण, कारण ।

अर्थ—प्रेम की महत्ता का स्थापना का उद्देश्य यह है कि प्रेम ही जगत् का कारण है; अर्थात् जगत् की उत्पत्ति प्रेम से ही हुई है और जगत् की रचना एवं कार्य भी प्रेममय है । प्रेम ही कर्म, कर्म, क्रिया और भगवान् का रूप है ।

दोहा

देवि मरु दिनादिही, दिवि नमर ममान ।

दिनि वादमा-यन की, दमक छानि रमलान ॥६४॥

शब्दार्थ—दिनादिही—प्रभु के लिए । दमक—भूत दम ।

अर्थ—मनुष्य जीवन की मर भटना का उद्देश्य यह है कि दिवि में प्रभु के लिए दिवि देवालय मनुष्य दिवि की उद्देश्य देवालय, पदान वादमाही के जगत् का भूत दम मनुष्य ही देवालय में दिवि छोड़ दी ।

दोहा

प्रेम-निर्जन श्रीवर्ग, छाद मोक्ष-मान ।

कारा मरु विना कारन, सापदि प्रेम नमान ॥६५॥

शब्दार्थ—प्रेम-निर्जन—प्रेम मान । श्रीवर्ग—सुन्दरान में । मोक्ष-मान—मनुष्य का प्रभु मान । मोक्ष मान—मनुष्य का प्रभु मान । मोक्ष मान—मनुष्य का प्रभु मान ।

अर्थ—अपने सुन्दरान-निर्जन की महत्ता की स्थापना करने के लिए प्रेम मान में प्रेम मान सुन्दरान में आकर मोक्ष मान मान पर गम गया और प्रेम मान मान के सुन्दरान में प्रेम मान मान मान मान की; अर्थात् प्रेम मान प्रेम की भाँति है प्रेम मान मान ।

दोहा

मोक्ष मानिनी ने दिवि, मोक्ष मोक्ष-मान ।

प्रेम-निर्जन की भाँति, प्रेम मान मान मान मान ।

शब्दार्थ—प्रेमदेव=कृष्ण । छविहि=शोभा को ।

अर्थ—कृष्ण-भक्ति की ओर अपना प्रेम प्रदर्शित करते हुए रसखान कहते हैं कि मान करने वाली नारी का हृदय तोड़कर, अर्थात् उसके प्रेम के बंधनों को छोड़कर और मन को मोहित करने वाली स्त्रियों के गर्व को चूर्ण करके तथा कृष्ण की शोभा को देखकर मुसलमान-धर्मावलम्बी रसखान कृष्ण-भक्ति में तन्मय हो गये ।

दोहा

बिधु सागर रस इन्दु सुभ, वरस सरस रसखान ।

प्रेम वाटिका रचि रुचिर, चिर हिय हरषि बखान ॥५१॥

शब्दार्थ—बिधु सागर रस इन्दु=सवत् १६७१ । रुचिर=सुन्दर ।

अर्थ—रसखान कहते हैं कि मैंने उल्लसित होकर इस सरस और सुन्दर प्रेम वाटिका की रचना शुभ वर्ष में सवत् १६७१ वि० में की ।

दोहा ✓

अरपी श्री हरि चरन जुग पुहुप पराग निहार ।

विचरहि या मैं रसिकवर, मधुकर निकर अपार ॥५२॥

शब्दार्थ—अरपी=अर्पित की । पुहुप पराग=कमल-केसर । मधुकर-निकर=भौरो का समूह ।

अर्थ—रसखान कहते हैं कि मैंने यह प्रेम-वाटिका श्रीकृष्ण के दोनों चरणों के कमल-केसर को देखकर उनको अर्पित की । आशा है कि अपार भौरो के समूह-रूपी रसिकवर इसमें विचरण करेंगे; अर्थात् इससे आनन्द प्राप्त करेंगे ।

दोहा ✓

(शेष पूरणा)

राधा-माधव सखिन सग, विरहत कुज-कुटीर ।

रसिकराज रसखानि तहँ, कूजत कोइल कीर ॥५३॥

शब्दार्थ—माधव=कृष्ण । कोइल=कोयल । कीर=तोता ।

अर्थ—रसखान कहते हैं कि राधा और कृष्ण अन्य सखियों के साथ कुज-कुटीरों में विचरण करें और वहाँ पर रसिकराज रसखान कोयल तथा तोते के रूप में कूजता रहे ।

दानलीला

सवैया

आवत हो रस के चसके तुम जानत हो रस होत कहा हो ।
नैसक वै रस भीजन दैहो दिना दस के अलवेले लला हो ।
अत वही दिन आवेगे भूमि गुवालिन ही के जु संग सखा हो ।
ल्यौगे कहा इन वातन तै घर जाव लला अब ही लरका हो ॥१०॥

शब्दार्थ—चसके=लोभ से । नैसक=थोड़ा-सा । लरका=प्रबोध ।

अर्थ—कोई गोपी कृष्ण की भर्त्सना करती हुई कहती है कि हे कृष्ण ! तुम मेरे पास रस के लोभ से आये हो, लेकिन तुम यह नहीं जानते कि रस क्या होता है ? अभी तो तुम दस दिन के अलवेले लडके हो; अर्थात् अल्पायु के हो, अतः स्वयं को थोड़ा-सा रस में तो भीगने दो; अर्थात् वह अवस्था तो आने दो, जब रसास्वादन का बोध हो जाता है । अंत में वे ही दिन आ जायेंगे जब तुम ग्वालिनो के साथ भूमकर रस का आनन्द लोगे । अतः तुम अभी से इन बातों से क्या लोगे । तुम अभी प्रबोध हो, इसलिए अपने घर चले जाओ ।

सवैया

आई हो आज नई ब्रज में कछु नैन नचाइ कै रार मचैही ।
मानति हो हमही छलि कै दधि बेचन जाव सो जान न पैही ।
लैहो चुकाह सबै तुम सो रसखानि भले मन में पछतैही ।
जो तुम होहु बड़े घर की अइलात कहा हो जगात न दैहो ॥११॥

शब्दार्थ—रार=भगड़ा । अइलात=गर्व करना । जगात=कर, टैक्स ।

अर्थ—गोपी की बातें सुनकर कृष्ण कहते हैं कि तुम अभी ब्रज में नई-नई आई हो, इसीलिए आँखें नचाकर भगड़ा कर रही हो, अर्थात् तुम्हारा यह भगड़ा केवल दिखावे के लिए है, वास्तविक नहीं है । तुम चाहती हो कि हमें धोखा देकर तुम दही बेचने के लिए निकल जाओ, पर हम तुम्हें इस प्रकार नहीं जानें देंगे । रसखान कहते हैं कि चाहे तुम अपने मन में जितना पछतावा करो, पर हम तुमसे सब कर वसूल कर लेंगे । यदि तुम किसी बड़े घर की हो तो इसमें गर्व करने की भी कोई बात नहीं है, क्योंकि तुम्हारा कर न देने का आग्रह व्यर्थ है; अर्थात् चाहे तुम जितने बड़े घर की हो, हम बिना कर लिए तुम्हें नहीं छोड़ेंगे ।

सवैया

सुनिकै यह बात हिये गुनि कै तव बोलि उठि वृषभान-लली ।

कहौ कान्ह अजान भए वन मे कहूँ माँगत दान कि छेकि गली ॥

मग आइ कै जाइ रिसाइ कहा तुम एकऊ बात कही न भली ।

हम है वृषभानपुरा की लली अब गोरस बेचन जात चली ॥३॥

शब्दार्थ—गुनि कै=सोचकर । वृषभान-लली=राधा । गोरस=दही ।

अर्थ—कृष्ण की बातें सुनकर और उन्हें अपने हृदय में सोचकर राधा कहती है कि हे कृष्ण ! आज तुम अजान बन गये हो, जो वन में हमारा मार्ग रोकते हो । तुम हमारा मार्ग ही रोकना चाहते हो, अथवा कुछ माँगना चाहते हो । मार्ग में आकर और अपनी इच्छा पूरी न हो सकने के कारण तुम क्रोधित होकर बयो जाते हो ? तुमने तो एक भी बात ठीक नहीं कही । हम राजा वृषभानु की पुत्री हैं और अब दही बेचने के लिए जा रही हैं । तुम्हारे रोके से हम नहीं रुक सकती ।

सवैया

एरी कहा वृषभानुपुरा की तौ दान दिये विन जान न पैहौ ।

जौ दधि-माखन देव जू चाखन भूमत लाखन या मग ऐहौ ।

नाहि तौ जो रस सो रस लैहो जु गोरस बेचन फेरि न जैहौ ।

नाहक नारि तू रारि बढावति गारि दिये फिरि आपहि दैहौ ॥४॥

शब्दार्थ—लाखन=लाखों बार । नाटक=व्यर्थ में । आपहि दैहौ=आप भी खाओगी ।

अर्थ—राधा की चुनौती सुनकर कृष्ण कहते हैं कि तुम मुझे वृषभानु की पुत्री होने का क्या भय दिखाती हो ? मैं विना कर दिये तुम्हें यहाँ से जाने न दूँगा । यदि तुम मुझे खाने के लिए दही और मक्खन दे दोगी, तो इस मार्ग से लाखों बार निशक होकर निकल जाओ, कोई तुम्हें कुछ न कहेगा । यदि तुम अपनी मरजी से मुझे गोरस नहीं दोगी तो जो तुम्हारे पास गोरस है, वह तो मैं छीन ही लूँगा, और फिर तुम्हें इस मार्ग से कभी भी जाने नहीं दूँगा । हे नारी ! तुम व्यर्थ में ही भगड़ा बढाती हो । यदि तुम मुझको गाली दोगी तो उनके बदले में स्वयं भी गाली खाओगी ।

कवित्त

गारी के देवैया बनवारी तुम कहो कौन,
 हम तौ वृषभान की कुमारी सब जानो है ।
 जोर तौ करौगे जाड जासो हरि पार पाइ,
 भुरही ते आज मो सो कैसो हठ ठानो है ।
 बूझि देखी मन माहि अरुभत मग जात,
 बूझिहौ निदान कान्ह जौन कहो मानो है ।
 मेरे जान कोऊ मीरखान आवै दही छीनै,
 तू तौ है अहीर मोहि नाहि पहिचानो है ॥५॥

शब्दार्थ—गारी=गाली । जोर=बल-प्रयोग । पार पाइ=पार पाना,
 कार्य की सिद्धि पाना । भुरही ते=प्रातःकाल से ही । अरुभत=भगड़ना ।
 मीरखान=राज्य ; उच्च अधिकारी ।

अर्थ—कृष्ण की बातें सुनकर राधा कहती है कि हे कृष्ण ! तुम गाली देने वाले कौन होते हो, अर्थात् तुम्हें गाली देने का क्या अधिकार है । सब लोग इस बात को जानते हैं कि हम राजा वृषभानु की पुत्री हैं और इसलिए हमें गाली देना आसान नहीं है । हे कृष्ण ! यदि बल-प्रयोग करना ही है तो उससे करो जिससे तुम्हारी कार्य-सिद्धि हो जाये । आज न जाने तुमने क्यों प्रातःकाल से ही मेरे साथ भगड़ा शुरू कर दिया है । तुम अपने मन में सोचकर देख लो कि रास्ते में किसी से भी भगड़ा करना उचित नहीं है । यदि तुम्हें मेरा विश्वास न हो तो जिसका तुम्हें विश्वास है, उसी से बात को पूछकर देख लो । मैं तो यह जानती हूँ कि राज्य का कोई उच्च अधिकारी ही दही छीनने के लिए आ सकता है । पर तुम तो केवल अहीर हो; अर्थात् साधारण-सी जाति के पुत्र हो और तुम मुझे को नहीं पहिचान रहे हो ।

विशेष—व्यग्यात्मकता के द्वारा प्रभावोत्कर्ष ।

कवित्त

तोहूँ पहचानौ वृषभान हूँ को जानौ नेकु,
 काहू की न शका मानौँ ही अहीर ऐसो ही ।
 मीरन को मारि मान तोरिहो गुमान लैहो,
 आज तोसो दान लैहो देखियै जु जैसो हो ।

फोरिहो मटूकी माट लै दही करौगो लूट,
जैहो कोने सु तौ घाट बाट रोके बैसौ ही ।
कहा कहौ राघे तोहि अजहूँ न चीन्है मोहिं,
मेरी ओर देखि नेकु दानी कान्ह कैसो हौ ॥ ६ ॥

शब्दार्थ — नेकु = तनिक भी । संका = डर । मीरन को = सरदारो को ।
गुमान = गर्व । मटूकी = मटकी, छोटा घडा । माट = घडा । बैसो हौं = बैठ
गया हूँ । चीन्है = पहिचानना । दानी = कर (टैक्स) लेने वाला ।

अर्थ — राधा की बातें सुनकर कृष्ण कहते हैं कि हे राधा ! मैं तुम्हें भी
जानता हूँ और तेरे पिता वृषभानु को भी जानता हूँ, लेकिन मैं ऐसा अहीर
हूँ कि किसी का भी डर नहीं मानता । राज्य के सरदारो को मार कर जिनका
तुम घमण्ड करती हो, तुम्हारा गर्व चूर्ण कर दूँगा । आज मैं तुमसे दान लेकर
ही रहूँगा और फिर तुम्हें मेरी शक्ति का पता चलेगा । मैं तुम्हारे छोटे और
बड़े घडो को फोड़कर तुम्हारी दही को लूट लूँगा और फिर तुम चाहे जिससे
शिकायत करो, मैं इसी रास्ते पर बैठा हुआ हूँ, डर कर कहीं भागूँगा नहीं ।
हे राधा ! मैं तुमसे क्या कहूँ ? तुम आज भी मुझे नहीं पहिचान रही हो ।
मेरी ओर तो देखो, तुम्हें पता चलेगा कि तुमसे कर लेने वाला कृष्ण कैसा है ।

कवित्त

जोहौ मैं तिहारी ओर नन्दगाव के किसोर,
माखन के चोर तुम गोकुल के वासी हौ ।
जसुदा तिहारी माड ऊखल सो बाँधो जाड,
दानी पै कहाए आइ भए कामरासी हौ ।
कस सो कहौगी जाड माँगिहौ तुमै घराइ,
रहौगे कहाँ छिपाइ जो बडे मवासी हौ ।
गोरस को दान हम आजहु न सुने काम,
काहे लाल हम सो करत रोज रासी हौ ॥ ७ ॥

शब्दार्थ — जोहे = देखती हूँ । कामरासी = काम भावना से युक्त । तुमै
घराइ = तुमको वन्दी बनाने के लिए । मवासी = सुरक्षित दुर्ग ।

अर्थ — कृष्ण की बातें सुनकर राधा कहती है कि हे कृष्ण ! मैं तुम्हारी
ओर देखती हूँ और तुम्हें पहिचानती भी हूँ । तुम नन्द गाँव के युवक हो,
माखन के चोर हो और गोकुल के निवासी हो । यशोदा, जिसने तुम्हें ऊखल

से बाँध दिया था, तुम्हारी माँ है। आज तुम यहाँ आकर कर लेने वाले बन गये हो और काम भावना से युक्त हो गये हो। मैं कस से तुम्हें बन्दी बनाने के लिए विनती करूँगी और फिर तुम सुरक्षित दुर्गों में भी नहीं छिप सकोगे, क्योंकि कस तुम्हें बन्दी बनाकर ही रहेगा। हमने कभी यह नहीं सुना कि दही पर भी कर लगता है, अतः हमारे साथ प्रतिदिन परिहास करना ठीक नहीं है।

कवित्त

दान पै न कान सुने लैहो सो गुमान भजि,
हासी पर हासी परहासी आज करौंगो।
जेती तुम ग्वालिन तितेक सब रोकि राखी,
जमुना की ओटि पै जु सबै काम सरौंगो।
जाको तूँ कहति कस ताहि को करौ विधस,
हौ तौ जदुवस वीर काहू सो न डरौंगो।
भूपन उत्तारि चीर फारिचीर डारि दैहौ,
नन्द की दुहाई खात टेक सों न टरौंगो ॥८॥

शब्दार्थ—भजि=चूर्ण करना। सरौंगो=पूर्ण करूँगा। विधस=विध्वंस।
टेक सो=प्रण से।

अर्थ—राधा की बातें सुनकर कृष्ण कहते हैं कि यदि तुम दान देने की बात को नहीं सुनोगी तो मैं तुम्हारा गर्व चूर्ण कर दूँगा और तुम्हारी विविध प्रकार से हाँसी करूँगा। जितनी तुम ग्वालिन हो, उन सबको मैं रोक लूँगा और यमुना की ओट में अपने सब कार्यों को पूर्ण करूँगा। जिस कस की तुम मुझे बमकी दिखलाती हो, उसका नाश कर दूँगा। मैं यदुवस का वीर हूँ, डगीलिए किसी से भी नहीं डरूँगा। तुम्हारे भूषणों को उतार कर तुम्हारे चीर के टुकड़े टुकड़े कर डालूँगा। मैं नन्द बाबा की सौगन्ध खाकर कहता हूँ कि अपने प्रण से तनिक भी नहीं हटूँगा, अर्थात् प्रण पूरा करके रहूँगा।

कवित्त

नन्द की न दासी हम जातिहू मैं नाही कम,
एक गाँव वसौ स्याम भोर भए बादी हो।
जमुना के तीर तुम चीर हू चुराड रहौ,
ताहू की न लाज आई ओर के फसादी हो।

रोकत हौ टोकत हौ वाट माहि साट खाह,

माट फोरि चाटौ दही यही गुन आदी हौ ।

जौ कहूँ बैठारिहौ न पारिहौ रुआव माहि,

नोन की न गोन ली है आदी हूँ न लादी हौ ॥६॥

शब्दार्थ—भोर भए=भोले होकर । वादी=भगडालू । ओर के=भारी । फसादी=भगडा करने वाले । साट खाह=दूसरो का धन लूटना । आदी=स्वभाव वाले । रुआव=रौब । नोन=नमक । गोन=माल लादने की बोरी । आदी=आदक, अदरक ।

अर्थ—कृष्ण की बातें सुनकर राधा कहती है कि हे कृष्ण, न तो हम नन्द की दासी है, जिस प्रकार तुम हो और न तुमसे जाति में ही कम है । हम सब एक ही गाँव के रहने वाले हैं, लेकिन तुम भोले बनकर भी भगडालू हो, अर्थात् केवल देखने में ही भोले दिखाई देते हो, अन्यथा तुम तो स्वभाव से भगडालू हो । तुमने यमुना के किनारे पर जाकर स्नान करती हुई गोपियों के वस्त्र चुरा लिये थे । इस अधम कार्य को करके भी तुम्हें लज्जा नहीं आई । तुम तो भारी भगडा करने वाले हो । दूसरो का धन लूटने के लिए तुम उनका रास्ता रोकते हो, उन्हें टोकते हो । तुम्हारा अब यह स्वभाव बन गया है कि तुम षडा फोडकर दही खाने वाले बन गये हो । जो तुम्हें कही बैठाया जाये तो तुम रौब भी नहीं दिखा सकते, अर्थात् तुम्हारा व्यक्तित्व भी प्रभावशाली नहीं है । फिर यह भी समझ लो कि हम गोन में नमक और अदरक भरकर लादने के आदी नहीं हैं, अर्थात् हम कोई साधारण व्यापारी नहीं हैं, यदि तुम हमें छेड़ोगे तो तुम्हें इसका बहुत मूल्य देना पड़ेगा ।

कवित्त

मेरो को करै नियाव हौ तो तीनि लोक राव,

हमै घेरौ माँटी चाव दाव भलो पायौ है ।

चूँदावन कुज माँह कदम की छाँह चलौ,

अक भरि भेटि लैहो जैसो मन भायौ है ।

हीरा मनि मानिक की काँच और पोतिन की ।

मोतिन की गात की जगात हौ लगायौ है ।

गोरस तौ ढेर ढेर खाहु पीयौ बेर बेर,

देखहु सलोनो रूप दानी कान्ह आयौ है ॥१०॥

शब्दार्थ—नियाव=न्याय । राव=राजा । अ क भरि=बाहुपाश में बाँध कर । मोतिन की=माला के मनकों की । जगात=कर ।

अर्थ—राधा की बातें सुनकर कृष्ण कहते हैं कि मेरा न्याय कौन कर सकता है, क्योंकि मैं तीनों लोकों का राजा हूँ अर्थात् मैं तो स्वयं ही सबसे बड़ा हूँ । तुम इसी कारण उत्लसित होकर यही दाव देखकर फेर लेती हो । तुम वृन्दावन के कुजों में उत्पन्न कदम्ब के रथों की छाया में चलो और जैसा मैं चाहता हूँ, वहाँ तुम्हें बाहुपाश में लूँगा । मैंने हीरा, मणि, मानिक, बाँध, पनके और मोती जैसे तुम्हारे शरीर पर कर लगाना है । गोरस तो मैंने अनेक बार अत्यधिक मात्रा में खाया-पिया है, अब तुम यह समझ लो कि मैं तुम्हारे सुन्दर शरीर से कर वसूल करने आया हूँ ।

सवैया

नौ लख गाय सुनी हम नन्द के तापर दूध दही न अघाने ।

माँगत भीख फिरौ बन ही बन भूठि ही वातन के पन पाने ॥

और की नारिन के मुख जोवत लाज गहौ कछु होहु सयाने ।

जाहु भले जु चले घर जाहु चले बस जाउ वृन्दावन जाने ॥११॥

शब्दार्थ—नौ लख=नौ लाख । अघाने=तृप्त हुए । जोवत=देखना । होहु सयाने=होश में आकर । जाने=जानती है ।

अर्थ—कृष्ण की बातें सुनकर राधा कहती है कि हे कृष्ण ! मैंने सुना है कि नद के नौ लाख गायें हैं, फिर भी तुम उनकी दूध दही खाकर तृप्त नहीं हुए । तुम बन-बन में भूठी बातें बनाकर भीख माँगते फिरते हो । तुम दूसरों की स्त्रियों के मुँह देखते फिरते हो । तुम्हारा यह कार्य नहीं है, अतः होश में आकर कुछ शरम करो । अच्छा यही है कि तुम वृन्दावन अपने घर चले जाओ, क्योंकि हम तुम्हें भली प्रकार जानते हैं ।

स्फुट पद

तू ऐसी चतुराई ठानै, काहे को निकसत या गैल ।

गैल कहा तेरे बाबा की, हम निकसी का पहिल पहैल ।

यह पैडो सवहिंन चलिबे को, काहे को तू रोकत छैल ।

रसखान के प्रभु सूधो चलि जा, देहुँ उरहनौ नद महैल ॥१॥

शब्दार्थ—गैल=रास्ता । पहिल पहैल=प्रथम रास्ता । पैडो रास्ता ।
उरहनौ=उपालम्भ, शिकायत । नंद महैल=नन्दमिहिर ।

अर्थ—मार्ग में जाते हुए किसी गोपी को कृष्ण ने छेड़ दिया । वह कृष्ण को बुरा-भला कहने लगी । इस पर कृष्ण ने कहा कि यदि अपने मन में इतनी होशियार बनती है तो इस रास्ते से निकलती ही क्यों हैं ? इस पर गोपी कहती है कि यह रास्ता न तो तेरे बाबा का है और न हम प्रथम बार ही इससे जा रही हैं, पहले भी इस रास्ते से निकल चुकी हैं । रास्ता तो सभी के चलने के लिए है अतः हे छैला ! तुम रास्ता क्यों रोकते हो ? हैं रसखान के प्रभु ! हमें छोड़कर या तो सीधे-सीधे यहाँ से चले जाओ, वरना तुम्हारी शिकायत नन्दमिहिर से कर देगी ।

गारी खायगौ अरे गँवार ?

ऐसी कौन सिखाई तोहै, पकरत आप पराई नार ?

जा जा गोरस ले पिबैया, कौन है तू मग रोकनहार ?

एती बरजोरी ना कीजै, मोहन सीख दई सत बार ।

खीजि मटुकिया भटकि सुपटकी, गोरस बहि-बहि चलयौ पनार ?

रसखान के प्रभु आज जान दै, कल आऊगी यहै करार ॥२॥

शब्दार्थ—गँवार=धृष्ट । गोरस=दही । बरजोरी=छीना-भपटी ।
सीख=शिक्षा । सतबार=सैकड़ों बार । खीजि=क्रोधित होकर ।
पनार=नाली ।

अर्थ—कोई गोपी दही देखने के लिए जा रही थी । रास्ते में कृष्ण मिल गये और उससे छेड़खानी करने लगे । इस पर गोपी ने कहा कि हे

धूर्त कृष्ण ! तुम मुझ से छेड़खानी क्यों करते हो ? क्या तुम मुझ से गाली खाना चाहते हो ? तुम्हें पराई स्त्री को छेड़ने की शिक्षा किसने दी है ? जाओ यहाँ से चले जाओ । तुम जैसे दही खाने वाले अनेक देखे हैं । मेरा रास्ता रोकने वाले होते कौन हो । हे मोहन मैं तुमको सैंकड़ों बार समझा चुकी हूँ कि तुम्हारी ऐसी छोना-भपटी करनी ठीक नहीं है । यह सुनकर कृष्ण को क्रोध आ गया और क्रोधित होकर उन्होंने उस गोपी की दही की मटकी भटक कर पृथ्वी पर फेंक दी जिससे वह फूट गई और दही नाली में बढ-बढकर चलने लगी । तब गोपी ने उनसे प्रार्थना की कि हे रसखान के भ्रभु ! आज तो मुझे जाने दो । मैं वचन देती हूँ कि कल अवश्य आऊँगी ।

वाही दिन वारी वानक वनि, आयौ सखि आज ।

गावत तेरी रभि भावती, सग लिये मुघर समाज ।

सासु ननद की कानि करौ जनि, उठ किन खेलौ फाग ।

अखियाँ सखियाँ मुफल करौ किन, इन नैनन के भाग ॥

कान परी जब तान मोहिनी, तबहुँ तजी कुल कानि ॥

इतरु हमी वृषभान-नदिनी, उतरु हँसे रसखानि ॥ ३ ॥

शब्दार्थ-वाही दिन वारी=उसी दिन की तरह । वानक वनि=वेपभूषा सजाकर । मुघर=सुन्दर । कानि=भय जनि=मत । किन=क्यों नहीं । इतरु=डवर । वृषभान-नदिनी =राधा । रसखानि=कृष्ण ।

अर्थ-कोई गोपी अपनी सखियों को फाग खेलने के लिए प्रेरित करती हुई कहती है कि हे सखियों ! कृष्ण ने आज फिर उसी दिन वाली वेग-भूषा धारण करके अपने गरीर को सजाया है । वह अपने साथ अपने साथियों का सुन्दर समाज लेकर तेरे प्रेम के गीत गाता है । अब तुम अपनी सास और ननदों का भय मत करो और उठकर फाग खेलो । हे सखियों ! यह अवसर बड़े सौभाग्य से मिला है, अतः कृष्ण के साथ फाग खेलकर अपनी आँखों को सफल करो । जब कृष्ण की मनोहरतान हमने सुनी थी तभी हमने अपने कुल की मर्यादा को छोड़ दिया था । डवर राधा कृष्ण को देखकर हँसी और डवर कृष्ण राधा को देखकर हँसे ।

आज होरी रे मोहन होरी ।

कालि हमारे आँगन गारी, दे आयौ सो को री ॥

अब का दुरि बैठे मैया ढिंग, निकसो कुन्ज विहारी ।

उमँगि-उमँगि आई गोकुल की, सकल मही धनधारी ।
जब ललना ललकारि निकासे, रूप सुधा की प्यारी ।
लिपटि गई घनस्याम लाल सो, चमक चमक चपला सी ॥
काजर देउ जु परि भरवा के, सबै देहु मिलि गारी ।
कहि रसखान एक गारी पै, सौ आदर वलिहारी ॥ ४ ॥

शब्दार्थ—कालि=कल । दुरि=छिपकर । ललना=गोपी । चपला=विजली । भरवा =भड्डवा, विभिन्न वेशधारी ।

अर्थ—गोपियाँ कृष्ण के घर जाती हैं और कृष्ण को होली खेलने के लिए ललकारती हुई कहती हैं कि हे मोहन ! आज होली है, कल तुम हमारे घर जाकर गालीदे आये थे और आज अपनी माँ के पास छिपकर बैठ गये हो । हे कुन्ज-बिहारी ! बाहर निकलो । देखो, गोकुल की समस्त वैभव वाली पृथ्वी उमग गई है, अर्थात् चारों ओर मादक वातावरण छाया हुआ है । जब कृष्ण के सौन्दर्य-अमृत की प्यासी गोपियो ने कृष्ण को बाहर निकाल लिया तो वे उससे निजयी की तहर लिपट गई । तब वे कहने लगी कि सब मिलकर डम भड्डवा को (कृष्ण को) काला कर दो और इसे गाली दो । रसखान कहते हैं कि उनकी एक गाली पर सौ आदरों को निछावर किया जा सकता है ।

विशेष—उपमा अलंकार ।

मैं कैसे निकसो मोहन खेलै फाग ।
मेरे सँग की सब गयी, मोहि प्रगट्यौ अनुराग ॥
एक रैन सुपनो भयौ, नन्द-नदन मिल्यौ आइ ।
मैं सकुचन घूँघट कर्यौ, (उन) भुज भेरी लपटाइ ॥
अपनौ रस मो को दयौ, मेरो लीनो घूँटि ।
वैरिन पलकै खुल गयी, (मेरी) गई आस सब टूटि ।
फिरि मैं बहुतेरी करी, नेकु न लागी आँखि ।
पलक मूँदि परिचौ लियौ, (मैं) जाम एक लाँ राखि ।
मेरे ता दिन ह्वँ गयौ, होरी डाडो रोपि ।
सास ननद देखन गई, मोहि घर वासौ सोपि ॥
सास उसासन भारुई ननद खरी अनखाय ।
देवर डग धरिवो गनै, (मेरो) बोलत नाहु रिसाय ॥
तिखने चढि ठाडी रहूँ, लैन करु कनहेर ।

राति द्यौस हौसे रहे, का मुरली की टेर ॥
 क्यो करि मन धीरज धरू, उठति अतिहि अकुलाय ।
 कठिन हियौ फाटै नही, तिल भर दुख न समाय ॥
 ऐसी मन मे आवई, छाँडि लाज कुल कानि ।
 जाय मिलो वृज ईस सो, रति नायक रसखानि ॥५॥

शब्दार्थ -अनुराग =प्रेम । रस=आनन्द । परिची=परिचय, प्रतीक्षा ।
 जाम=काल, प्रहर । डाडो रोपि=ड डा गाड दिया । वासौ=घर, सामान ।
 अनखाय=क्रोधित होता है । तिखने=तिमजिले पर । कनहेर=दर्शन की
 उत्सुकता ।

अर्थ-कोई गोपी अपनी सखी से कहती है कि हे सखि ! मैं घर से बाहर कैसे निकलूँ, क्योंकि बाहर कृष्ण फाग खेल रहे हैं । मेरे साथ की सारी सखियाँ चली गई है, पर मैं नहीं गयी, क्योंकि मेरे मन में कृष्ण के प्रति प्रेम उत्पन्न हो गया है । हे सखि ! एक दिन स्वप्न में मैं कृष्ण से मिली । उस मिलन वेल में मैंने तो सकोच से घूँघट कर लिया, पर उन्होंने अपनी भुजाएँ फैलाकर मुझे अपने बाहु-पास में बाँध लिया । उन्होंने अपना आनन्द मुझे दिया और मेरा स्वयं ले लिया । तभी मेरी आँखें खुल गयी और सब आशा टूट गई । फिर मैंने सोने का बहुत प्रयत्न किया पर फिर मुझे नीद न आई । एक प्रहर तक आँखें मूँदकर मैं नीद की प्रतीक्षा करती रही और देखे हुए दृश्य को आँखों में झुलाती रही । उसी दिन से कृष्ण के साथ होली खेलने का मेरे ऊपर प्रतिवध लग गया । मुझे घर और घर का सामान सौंप कर सास ननद स्वयं तो होली खेलने चली गयी, पर मुझे नहीं जाने दिया । कृष्ण के प्रति मेरे प्रेम को जानकर सास तो मुझे दुख देती रहती है, और ननद अत्यन्त अप्रसन्न रहती है । देवर मेरे आने-जाने की पूरी चौकसी करता रहता है, पति क्रोधित होकर बातें करता है । कृष्ण का तनिक सा दर्शन पाने के लिए मैं तिमजिले पर खड़ी रहती हूँ और रात-दिन उनकी मुरली की ध्वनि सुनकर प्रसन्न रहती हूँ । मैं अपने मन में किस प्रकार धैर्य धारण कर सकती हूँ, क्योंकि कृष्ण की याद आते ही मेरा मन अत्यधिक व्याकुल हो जाता है । मेरा हृदय इतना कठोर है कि वह वियोग-दुख से फटता भी तो नहीं है और इतना कोमल है कि इसमें तिल भर दुख भी नहीं समा पाता । मेरे मन में तो यह बात आती है कि मैं लज्जा और कुल-मर्यादा छोड़कर रति-नायक, ब्रज के अधिपति कृष्ण से जा मिलूँ ।

संदिग्ध छंद

सवैया

हेरत कुँज भुजा धरे स्याम सो नैक तवै हँसती न लुगार्ई ।
लाज न कानि हुती जिय माँझ सु मेटत जौ मग माँह कन्हार्ई ।
हेरे परै न गुपाल सखी इन जोवन आनि कुचाल चलाई ।
होय कहा अब के पछिताएँ जौ हाथ ते छुटि गई लहिकार्ई ॥१॥

शब्दार्थ—हेरत=देखते हुए । कानि=मर्यादा । लरिकार्ई=लडकपन,
बचपन ।

अर्थ—कोई गोपी अपनी सखी से कृष्ण के प्रति अपने प्रेम को व्यक्त करती हुई कहती है कि हे सखि ! बचपन में जब मैं कृष्ण के ऊपर कुँज में अपनी भुजाओं को रख लेती थी, अर्थात् उसे बाहु-पाश में बाँध लेती थी तो उस घटना को देखते हुए भी अन्य स्त्रियाँ तनिक भी नहीं हँसती थी, मेरा परिहास नहीं करती थी । यदि कृष्ण मार्ग में मिल जाता था तो मैं निस्संकोच भाव से उससे मिलती थी । तब मेरे मन में न तो लज्जा होती और न कुल की मर्यादा का कोई भाव होता था । हे सखि अब मोहन के आने पर मैं चाहते हुए भी कृष्ण को नहीं देख पाती । यह मोहन तो मेरे लिए इतना कटु अपिशाप बन गया है । लेकिन अब बचपन बीत गया तो अब पछिताने से क्या होता है ।

विशेष—गोपी के सरल भाव का स्वाभाविक वर्णन है ।

कवित्त

चीर की चटक औ लटक नव कुंडल की,
भौह की मटक नेह अँखिन दिखाउ रे ॥
मोहन सुजान गुरु-रूप के निधान फेरि,
वाँसुरी बजाई तनु-तपन सिराउ रे ॥

एहो वनवारी वलिहारी जाउँ तेरी अजु,
मेरी कुंज आड नेक मीठी तान गाउ रे ।
नंद के किसोर चितचोर मोर पखवारे,
वसीवारे सावरे पियारे इत आउ रे ॥२॥

शब्दार्थ—चटक=शोभा । नेह=स्नेह, प्रेम । निधान=भंडार । तनु-
त्तपन=शरीर का दुख । सिराउ=ठंडा करना । नेक=ननिक ।

अर्थ—कोई गोपी कृष्ण से प्रार्थना कर रही है कि हे कृष्ण ! अपने
वस्त्रों की गोभा और नवीन कुडलो के डधर-उधर हिलने की गोभा, भोंहो
की मटक और अपनी आँखों में भरा हुआ प्रेम मुझे दिखाओ । हे मोहन ! तुम
मुजान हो, गुण और सौन्दर्य के भण्डार हो, फिर से वाँसुरी बजाकर मेरे
शरीर के दुख को ठंडा करो । हे वनवारी ! मैं आज तुम पर वलिहारि होती
हूँ । मेरे कुंज में आकर तनिक वाँसुरी की मीठी तान सुनाओ । हे नदनदन,
चित्त को चुराने वाले, मोर-मुकुट धारण करने वाले, वगी वाले व्यामवर्ण
प्रियतम, डधर आओ, अर्थात् मेरे पास आकर मेरा वियोग-दुख दूर करो ।

तट की न घट भरै मग की न पग धरे,
घर की न कछु करै बैठी भरै साँसु री ।
एकै सुनि लौट गई एकै लोट पोट भई,
एकनि के दृगनि निकसि आए आँसु री ।
कहै रसखान सो सवै ब्रज वनिता बधि,
वधिक कहाय हाय भई कुल हाँसुरी ।
करिये उपाय बाँस डारियै कटाय, नाहिं,
उपजैगौ बाँस नाहिं वजै फेरि बाँसुरी ॥ ३ ॥

शब्दार्थ—घट=घडा । मग=मार्ग । दृगनि=आँखों में । हाँसु=हसी ।

अर्थ—कृष्ण की बाँसुरी के प्रभाव का वर्णन करती हुई कोई गोपी
अपनी सखी से कहती है कि हे सखि ! जब कृष्ण ने बाँसुरी बजाई तो ब्रज की
समस्त गोपियाँ किंकर्तव्यविमूढ़ हो गई । जो गोपी जल भरने के लिए गई थी,
वह यमुना के किनारे पर ही खड़ी रह गई । जो मार्ग में जा रही थी, उसके
आगे पैर चले नहीं । जो घर में थी वह अपना कार्य छोड़कर केवल लम्बे-लम्बे
साँस लेने लगी । एक गोपी बाँसुरी की ध्वनि को सुनकर पृथ्वी पर अचेत

होकर लौट गई, एक लोट-पोट हो गई एक की आखों से आँसू निकल आए । रसखान कहते हैं इस प्रकार ब्रज की गोपियों की भी हँसी हुई क्योंकि उन्होंने अपनी कुल की मर्यादा का कोई ध्यान नहीं रखा वाँसुरी के इस भयकर प्रभाव से वचने का तो केवल यही उपाय है कि इस ससार के सारे वाँसों का कटवा दिया जाये, क्योंकि न वाँस होगा और न वाँसुरी बजेगी !

विशेष—लोकोक्ति अलंकार ।

कवित्त

भिक्षुक तिहारो कहाँ बलि मख शाला जहाँ,
सर्पन का सगी कहाँ हूँ है छीरनिधि मे !
ऐरी बहुरंगी बैल वारौ कहाँ नाचत है,
कीने तिरभग, कही हूँ है ग्वालन मे ।
चाउर चवैया कहाँ है सुदामा पास,
विष को अहारी कहाँ पूतना के घर मे ।
सिंधु-सुता आन मिली तर्क सो तरक करी,
गिरिजा मुसकाति जाति भारी लिए कर मे ॥४॥

शब्दार्थ—वयि मख-शाला जहाँ=जहाँ पर राजा बलि की यज्ञशाला है । छीरनिधि=क्षीरसागर, विष्णु का निवास-स्थान, कृष्ण को विष्णु का अवतार माना जाता है । तिरभगा=त्रिभगी होकर । पूतना=एक राक्षसी, जिसे कृष्ण ने वचपन में मारा था । सिंधु-सुता=लक्ष्मी । तर्क से तर्क करी=तर्क के द्वारा पराजित कर दिया । गिरिजा=पार्वती भारी=जलपात्र ।

अर्थ—पार्वती जल का पात्र लेकर जा रही थी । मार्ग में उन्हें लक्ष्मी मिली । उसने शिव का परिहास करने के लिए पार्वती से कुछ प्रश्न किये, परन्तु पार्वती ने उनके उत्तर कृष्ण से (विष्णु के अवतार से) सम्बद्ध कर दिये । इस प्रकार पार्वती ने अपने पति के गौरव की भी रक्षा की और लक्ष्मी को अपने तर्कों से पराजित कर दिया । प्रश्न और उत्तर इस प्रकार हैं !

प्रश्न—तुम्हा भिक्षुक कहाँ है ? (गोपी का शिव से तात्पर्य है ।)

उत्तर—जहाँ राजा बलि की यज्ञशाला है । (कृष्ण राजा बलि के पास वामन का रूप धारण करके दान माँगने गये थे ।)

प्रश्न—सर्पों का साथी कहाँ है ? (शिव के गले में सर्प है ।)

उत्तर—क्षीर सागर में । (विष्णु क्षीर सागर में शेषनाग की शैया बनाकर निवास करते हैं । कृष्ण को विष्णु का अवतार माना गया है ।)

प्रश्न—अरी, मैं पूछती हूँ कि वह बहुरंगी बैल वाला कहाँ नाच रहा है । (शिव की सवारी नाँदी बैल है और शिव का ताण्डव नृत्य लोक प्रसिद्ध है ।)

उत्तर—तीन भगिमाएँ बनाकर ग्वाल-समूह के मध्य ।

प्रश्न—चावलो को चावने वाला कहाँ है ? (शिव वैभव से दूर रहकर कठोर योगी का जीवन बिताते हैं ।)

उत्तर—सुदामा के पास । (कृष्ण ने सुदामा के चावल खाये थे ।)

प्रश्न—वह विष खाने वाला कहाँ है ? (शिव ने देवताओं की रक्षा के लिए क्षीर सागर से निकले हुए विष का पान किया था ।)

उत्तर—पूतना के घर में । (पूतना राक्षसी अपने स्तनों से विष लगाकर बालक कृष्ण को मारने आई थी ।)

इस प्रकार जल-पात्र लेकर जाती हुई पार्वती ने अपने तर्कों से लक्ष्मी को पराजित कर दिया ।

सवैया

खोलिये फाग निसक ह्वै आज मयक मुखी कहै भाग हमारो ।

लेहु गुलाल दुआँ कर मे पित्र काटिक रग हिये महं डारो ।

भावै सु मोहि करो रसखान जू पाँव परौ जनि घूँघट टारो ॥

वीर की सौ ह हौं देखिहौं कैते अवीर तो आँख बचाय के डारो ॥५॥

शब्दार्थ—निसक ह्वै = निडर होकर । मयकमुखी = चन्द्रमुखी । दुआँ = दोनों । भावै = जो अच्छा लगे । पाव परौ जनि घूँघट टारो = मैं तुम्हारे पैरों में पड़कर प्रार्थना करती हूँ कि मेरा घूँघट मत खोलो । वीर = भाई । सौ ह = सौ गध ।

अर्थ—फाग खेलते समय कोई चन्द्रमुखी गोपी कृष्ण से कहती है कि हे कृष्ण ! हम दोनों को फाग खेलने का अवसर मिला है, यह हमारा सौभाग्य है, अतः तुम निडर होकर फाग खेलो । दोनों हाथों में गुलाल लेकर और पिचकारी में रग भरकर मेरे ऊपर डालो । जो अच्छा लगे, उसी प्रकार मेरे साथ फाग खेलो, पर मैं तुमसे पैरों में पड़कर प्रार्थना करती हूँ कि मेरा घूँघट मत खोलो । मैं भाई की सौगन्ध खाकर कहती हूँ कि मेरी आँखों को बचाकर मेरे ऊपर अवीर डालो, वरना आँखों में अवीर पड़ जाने से मैं किस प्रकार तुम्हारे सौन्दर्य को देख सकूँगी ?

दोहा

नन्द महर कै वगर तन, ऊव मेरे को जाय ।

नाहक कहूँ गढि जायगो, हित काँटो मन पाय ॥ ६ ॥

शब्दार्थ—वगर = आँगन । मेरे को जाये = मेरी बलाय जाये । = नाहक व्यर्थ में ही । हित = प्रेम । मन-पाय = मन रूपी चरण में ।

अर्थ—कोई गोपी अपनी सखी से कहती है कि नन्द मिहिर के आँगन

मे अव मेरी बलाय जाय अर्थात् मैं वहाँ बिल्कुल नहीं जाऊंगी वयो वहाँ व्यर्थ
ही मन रूपी चरण मे प्रेम रूपा काँटा गड़ जायेगा अर्थात् कृष्ण से प्रेम
हो जायेगा ।

विशेष—रूपक अलंकार ।

कवित्त

सुरतर लतानि भार फल है ललित कैधो,
कामधेनु धारा सम नेह उपजावनी ।
कैधो चिन्तामनिन की माल उर सोभित,
बिसाल कठ मे धरै है जोति भलकावनी ॥
प्रभु की कहानी ते गुसाई की मधुरबानी,
मुक्ति सुखदानी रसखानि मनभावनी ।
खाड की खिजावनी सी कठ की कुढावनी सी,
सिता को सतावनी सी सुधा सकुचावनी ॥ ७ ॥

शब्दार्थ—सुरतर=कल्पवृक्ष । चार फल=धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष ।
ललित=सुन्दर । नेह=स्नेह । सिता=शर्करा, चीनी ।

अर्थ—इस कवित्त मे राम-कथा के महत्व का वर्णन किया गया है । यह
राम कथा कल्पवृक्ष की शाखाओं की भाँति धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष के
चार सुन्दर फल देने वाली है या कामधेनु की दुग्ध धारा के समान पवित्र
और निर्मल प्रेम को उत्पन्न करने वाली है या हृदय पर चिन्तामणि माला के
समान सुशोभित होने वाली है या विशाल कण्ठ मे दिव्य ज्योति के समान
भलकने वाली है राम की कथा से गोस्वामी तुलसीदास की वाणी मुक्ति
सुख आनन्द देने वाली बनकर मनोहर हो गई । राम-कथा खाँड कन्द शरीर
की भाँति मीठी और अमृत के समान अलौकिक आनन्द प्रदान करने वाली है ।

विशेष—सन्देह, उल्लेख अलंकार ।

अग भभूत लगाय महा सुख है कोउ ऐसौ सो प्रेमहु पागै ।
नाथ को नाम सुनै बिगसै हियो कान्हू को नाम सुनै अनुरागे ।
जोग लिये हरि प्यारौ मिलैतो मै कान फटायै कहा दुख लागै ।
मोहन के मन मानी यही तो सबै री कहो मिलि गोरख जागै ॥ ८ ॥

शब्दार्थ—भभूत=भस्म । नाथ=गोरखनाथ । बिगसैहियौ=हृदय प्रसन्न
हो जाता है । अनुरागै=प्रेम पूर्ण हो जाता है ।

अर्थ—उद्धव के निर्गुण ब्रह्म उपदेश को सुनकर कोई गोपी उद्धव से
कहती है कि कृष्ण के प्रेम मे निमग्न हुआ क्या कोई ऐसा प्राणी है जो यह
कहे कि अगो मे भस्म लगाने से महासुख की प्राप्ति होती है । गोरखनाथ
का नाम सुनकर हृदय प्रसन्न हो जाता है परन्तु कृष्ण का नाम सुनने पर

मन प्रेमपूर्ण हो जाता है । यदि योग धारण करने से प्यारा कृष्ण मिल जाय तो हमें अपने कान फटवा लेने से भी कोई दुख नहीं अर्थात् हम सहर्ष अपने कान फटवा सकती हैं । यदि कृष्ण की यही इच्छा है कि हम उन्हें छोड़कर योग साधना गुरु कर दें तो हे सखि ! सब आजाग्रो और मिलकर गोरखनाथ का अलख जगाओ ।

कैसा यह देस निगोरा, जग होरी ब्रज होरा ।
मैं जल जमना भरन जात रही, देखि वडन मेरा गोरा ।
मोसो कहै चलो कुंजन मे, तनक-तनक से छोरा ।
परे आँखिन मे डोरा ॥

जिमरा देखि डरात सखी री, लाज भरम को ओरा ।
का बूढे का लौग लुगाई, एक ते एक ठिठोरा ।
न काहू सो काहू को जोरा ।
मन मेरो हर्यो नद के ने सखि, चलत लगावत चोरा ।
कहै रसखान सिखाइ सखन सो, सब मेरा अग टटोरा ।

न मानत कहत निहोरा ॥ ६ ॥

शब्दार्थ—निहोरा=निगोडा तनक तनक सो=छोटे छोटे । डोरा=काजल ।
ठिठोरा=धृष्ट । निहोरा=विनय ।

अर्थ—कोई गोपी अपनी सखी से कह रही है कि हे सखि ! यह निगोडा देश कैसा है और ब्रज तो सारे जग से चढकर है । मैं यमुना में पानी भरने के लिए जा रही थी कि मेरे गोरे गरीर को देखकर मेरे सोन्दर्य पर रीझ कर, छोटे-छोटे बच्चे भी जो आँखों में काजल लगाए हुए थे, मुझ से कहने लगे कि कुन्जो में चलो । उन्हें देखकर मेरा मन डर गया, लज्जा सकट में पड गई । क्या बूढे, क्या लौग और स्त्रियाँ, यहाँ ब्रज में तो सब एक-दूसरे से बढ-चढकर धृष्ट हैं, कोई किसी से के जोड़े में नहीं आता, अर्थात् सभी अनुपमेय हैं । हे सखि ! मेरा मन कृष्ण ने हर लिया है, वह चोरी-चोरी मेरे पीछे चलता है और अपने सब साथियों को सिखा कर मेरी तलाशी लिवा लेता है । उससे चाहे कितनी विनय करो, पर वह किसी की कोई बात नहीं सुनता ।

दोहा

परम चतुर पुनि रसिकवर, कैसो हू नर होय ।
विना प्रेम रूखो लगँ , वादि चतुरई सोम ॥ १० ॥

शब्दार्थ—सिकवर=भावुक । वादि=व्यर्थ । चतुराई=चतुरता ।

अर्थ—इस दोहे में कृष्ण-प्रेम की महत्व का वर्णन किया गया गया है । चाहे मनुष्य कितना ही चतुर और भावुक हो परन्तु यदि उसमें कृष्ण के प्रति प्रेम नहीं है तो वह नीरस है और उसकी सारी चतुराई व्यर्थ है ।

